प्रकाशक

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर ३३४००३

प्रकाशन सौजन्य

श्रीयुत झूमरमलजी सायरचदजी छलाणी परिवार , दिल्ली

सस्करण

चतुर्थ १००० सन् १९७६
पचम २२०० सन् १९८५
षष्ठम् ११०० सन् १९९४
सप्तम ५०० सन् २००६

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक

कल्याणी प्रिन्टर्स

अलख सागर रोड, बीकानेर

दूरभाष २५२६९८०

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठम् युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे। अपने युग के क्रातदर्शी सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नहीं, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम, नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उदबोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा में आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही, प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन वृत्तान्तों को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानव जाति उनके उदबोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम में अजना/सकडाल पुत्र/सुदर्शन चरित्र' किरणावली का यह अक पाठकों के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेंगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण, कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से

श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर साहित्य को लागत मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व में सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियों का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद में सस्था की स्वर्ण जयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियो की सख्या बढकार 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ ने यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओं के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार और विक्रय प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं अपितु विश्व धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ में समस्त जवाहर साहित्य प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्रीमान् हजारीमलजी सेठिया ट्रस्ट करीमगज, भीनासर, श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर एव श्रीमान् सुगनचन्दजी धोका मद्रास के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 10 (अजना / सकडाल पुत्र / सुदर्शन चरित्र) के अर्थ सहयोगी श्री झूमरमलजी सायरचन्दजी छल्लाणी परिवार दिल्ली हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला मध्यपदेश
जन्म तिथि	वि स 1932 कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948 माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976 आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

अर्थ–सहयोगी परिचय

उदारमना गुरुभक्त सुश्रावक श्रीयुत सायरचंदजी छल्लाणी

गुरुभक्त सुश्रावक श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी राजस्थान के नागौर जिले के आसावरी ग्राम निवासी, धर्मनिष्ठ सरलमना, स्वाध्याय के साधक श्रावकवर्य श्री झुमरमलजी छल्लाणी के ज्येष्ठ पुत्र हैं।

गुरुभक्ति समर्पणा, सेवा के सस्कार आपको विरासत मे मिले हैं। ब्यावर (राज) मे रहकर आपने बी कॉम किया। इन्होने अपनी अथक लगन श्रमशीलता व पखर पतिभा से व्यावसायिक सोपान तय किये तो सामाजिक धार्मिक शैक्षणिक जनकल्याणकारी क्षेत्र मे भी अपनी अमिट छाप अकित की है। सन 1978 मे आपने हस्तशिल्प के निर्यात व्यवसाय मे पवेश किया ओर अपनी विश्वसनीयता व पुरुषार्थ से विदेशो मे अतुल ख्याति अर्जित की। 25 वर्षो के अन्तराल मे 60–70 बार विदेश यात्रा कर आपने भारतीय हस्तशिल्प की विदेशो मे प्रतिष्ठा बढाई।

सन् 1985 मे कृत्रिम आभूषणो का व्यवसाय आरम्भ किया। इस क्षेत्र मे भी आपको महती ख्याति मिली। सन् 1993 व सन् 1999 मे दो बार दिल्ली राज्य से पुरस्कृत हुए और अखिल भारतीय स्तर का पुरस्कार प्राप्त करके आप Hand Crafted Jewellery क्षेत्र की अग्रिम पक्ति मे आ गये।

आचार्यपवर श्री नानालालजी म सा के सम्पर्क से नवीन दृष्टि का सचार हुआ जो आपके जीवन का विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण मोड था। आपने सामायिक और स्वाध्याय की धाराओ से स्वय को आप्लावित किया। आप प्रतिदिन दो सामायिक करते हैं और आपने लघुदण्डक जीवधडा गति–अगति गुणस्थान स्वरूप जीव–अजीव पर्याय गम्मा, काय स्थिति, प्रतिक्रमण, भक्तामर पच्चीस बोल 67 बोल एव अनेक थोकडे कठस्थ कर लिये हैं। अनेक सूत्रो जवाहर किरणावली जैन धर्म के मौलिक इतिहास आदि ग्रथो का स्वाध्याय किया हे।

आपने अपने अर्जित धन से अशदान का नियम धारण किया है। सघ की हर पवृत्ति– छात्रवृत्ति जीवदया समता शिक्षा निकेतन साहित्य प्रकाशन, धर्मपाल पवृत्ति सिरीवाल प्रवृत्ति तथ भगवान महावीर समता चिकित्सालय मे आप मुक्तहस्त से दान देते रहते हैं। आचार्य भगवन नानेश के पट्टधर

वर्तमान आचार्यश्री रामलालजी म सा के प्रति आप अत्यन्त श्रद्धानिष्ठ हैं। अपनी व्यस्ततम दिनचर्या के उपरान्त भी आप सन्त–सतियाजी म सा के दर्शन व प्रवचन श्रवण का अवसर निकाल लेते हैं। बालक–बालिकाओ, युवक–युवतियो का आप आध्यात्मिक सस्कारो की ओर प्रेरित करते रहते हैं। सामायिक की नियमितता के लिये आपने श्रावको को सेकडो सामायिक उपकरण भेट किये हैं। आपने आचार्य भगवन् से मात्र 44 वर्ष मे सजोडे शीलव्रत ग्रहण किया। जेन स्तोक भाग एक से चार तक की परीक्षा भी उत्तीर्ण की है। आप वर्तमान मे श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के महामत्री है।

आपके भ्राता द्वय श्री कैलाशचन्दजी छल्लाणी और श्री सुमेरचन्दजी छल्लाणी, उनकी धर्मपत्निया, बच्चे सभी धमनिष्ठ हैं। धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पाजी प्रतिदिन नियमित सामायिक करती हैं। उदयपुर मे सम्पन्न अखिल भारतीय पदाधिकारी नवतत्त्व (जीवतत्त्व) परीक्षा मे 37 परीक्षार्थियो मे श्रीमती पुष्पाजी ने अपनी लगन और अध्ययनशीलता का परिचय देते हुए द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

छल्लाणी परिवार ने धन को धर्म से जोडा है। पूर्ण विश्वास है कि भविष्य मे भी प्रवृत्तियो के विकास, सव्द्धन और सातत्य मे श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

अनुक्रम

सदर्शन चरित्र

अंजना

जन्म

पाचीन काल मे इसी भव्य भारतवर्ष मे महेन्द्रपुर नामक एक सुन्दर नगर था। जिस समय की यह कथा है उस समय महेन्द्रपुर का राजा महेन्द्र था। राजा महेन्द्र की पत्नी का नाम रानी मनोवेगा था। राजा महेन्द्र के यहा कई पुत्रो का जन्म होने के पश्चात् एक कन्या का जन्म हुआ। आजकल की भाति उस समय कन्या का जन्म विपत्ति का अवतार नही समझा जाता था। अतएव कन्यारत्न का जन्म होने पर माता–पिता ने बडे चाव से जन्मोत्सव मनाया और कन्या का नाम रखा–अजना।

अजना विकार–युक्त दृष्टि वालो को भी सुधारने वाली थी। विकृत दृष्टि वालो की आखो मे सदाचार रूपी अजन आजने वाली अजना थी। वह परमात्मा के स्वरूप को पहचानने वाली थी और साथ ही साथ सुन्दरी भी थी।

ससार मे सोने मे सुगन्ध नहीं देखा जाता। इसी प्रकार ससार मे गुण और सौन्दर्य का एक ही स्थान पर मिलना भी कठिन माना जाता है। जहा रूप है–सौन्दर्य है वहा प्राय गुणो की न्यूनता दिखाई देती है। जहा गुण है, वहा सोन्दर्य पाय नही होता। परन्तु अजना मे सौन्दर्य के साथ सद्गुणो का भी सुन्दर समन्वय था। इस प्रकार उसने सोने मे सुगन्ध की कहावत चरितार्थ की थी।

राजा महेन्द्र अजना को देखते तो उनकी प्रसन्नता का पार न रहता। वे मन ही मन सोचते–यह कन्या अवश्य ही हमारे कुल की प्रतिष्ठा बढायेगी। अजना को सुयोग्य बनाने के लिए राजा महेन्द्र ने उसकी शिक्षा आदि की उचित व्यवस्था की।

क्या आजकल के माता–पिता अपनी कन्या को कन्योचित शिक्षा देने की ओर ध्यान देते है? आज के लोग कन्या को लाड भले ही लडा ले परन्तु कन्योचित शिक्षा देने की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं।

अजना पढ–लिखकर होशियार बनी। कुमारी अवस्था मे अजना ने विद्या का अभ्यास किया। अब वह विवाह के योग्य हो गई।

विवाह की चिन्ता

कन्या जब विवाह के योग्य हो जाती है, तो उसके विवाह की चिन्ता माता–पिता को स्वभावत होती ही है। अजना को विवाह के योग्य जानकर राजा महेन्द्र विचार करने लगे–"यद्यपि अजना को सुयोग्य ही वर मिलेगा परन्तु इस विषय मे मैं अपनी प्रजा की सम्मति ले लू तो क्या हर्ज है? इससे प्रजा को यह भी विदित हो जायेगा कि किस उम्र मे विवाह करना योग्य है और कैसे वर के साथ सबध करना चाहिए? मैं बालविवाह का विरोधी हू। अतएव प्रजाजनो के सामने अपनी ही कन्या का आदर्श उदाहरण उपस्थित करके मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि मैं बालविवाह का विरोध करता हू। कन्या को प्रजाजनो के सामने बुलाकर मुझे यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि अब कन्या वास्तव मे ही विवाह के योग्य हो गई है। किस प्रकार के वर के साथ कन्या का विवाह करना चाहिए, इस सबध मे भी प्रजाजनो की राय लेना उचित होगा।"

राजा महेन्द्र ने इस प्रकार विचार करके रानी से कहा– 'अजना को तैयार करके कल राज सभा मे भेज देना।"

राजा महेन्द्र का कार्य उचित था या अनुचित? क्या उसे अपनी कन्या का विवाह करने के विषय मे प्रजा की सम्मति लेना आवश्यक था? इस प्रश्न के उत्तर मे अनेक बाते कही जा सकती हैं, कहा जा सकता है कि राजा होने पर भी किसी मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तो कायम रहनी ही चाहिए। यह कहना सही भी है। परन्तु जो राजा अपने व्यक्तित्व को अपनी प्रजा मे स्वेच्छापूर्वक बिखेर देता है, उसके पास व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नाम की कोई चीज रह ही नही जाती। वह प्रजा के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है अर्थात् प्रजा के रूप मे ही अपने को पाता है। ऐसी स्थिति मे राजा और प्रजा का द्वैत ही समाप्त हो जाता है। वास्तव मे जो राजा अपनी कन्या के विवाह के विषय मे भी प्रजा की सम्मति मागता हे, वह दूसरे काम बिना उसकी सम्मति के कैसे करेगा?

राजा–प्रजा का यह अनोखा और मधुर सबध प्राचीन काल मे भारतवर्ष मे पाया जाता था। उस समय राजा और प्रजा के बीच किसी प्रकार के सघर्ष के लिए अवकाश नही था। न राजा अपने अधिकारो के लिए प्रजा का दमन करता था और न प्रजा अपनी स्वाधीनता के लिए युद्ध छेडती थी। राजा प्रजा की शक्ति का केन्द्र था। प्रजा के समस्त अधिकार राजा म केन्द्रित

थे और राजा, प्रजा की भलाई के लिए ही उनका उपभोग करता था। मगर देश के दुर्भाग्य से आज क्या स्थिति है? आज सर्वत्र राजा प्रजा मे घोर सघर्ष चल रहा है। राजा समझता है कि पजा का शोषण करने के लिए ही विधाता ने हमारा निर्माण किया है। ऐसी स्थिति मे किसी कार्य के लिए प्रजा की सम्मति लेने की उन्हे आवश्यकता ही महसूस नही होती। उन्हे यह भी नही सूझता कि हम तो प्रजा का शोषण कर रहे हैं परन्तु जब शोषण करने के लिये कुछ शेष ही नही रहेगा, तब क्या होगा?

इस प्रकार अजना के चरित्र से जहा राजा और प्रजा के सबध पर सुन्दर पकाश पडता है, वहा अहकार को जीतने की भी शिक्षा मिलती हे।

आज लोग किसी अच्छे काम के सबध मे भी दूसरो की सलाह लेने मे अपना अपमान समझते हैं। परन्तु पुराने जमाने के लोग दूसरो की सलाह–सूचना लेकर कार्य आरम्भ करने मे अपना हित समझते थे।

राजा महेन्द्र अपनी कन्या अजना का विवाह करने के सबध मे अगर दूसरो की सम्मति न लेते तो उनका कोई काम रुक नही सकता था। परन्तु राजा ने विचार किया कि मैं जिस मार्ग पर चलूगा, प्रजा भी उसी मार्ग पर चलेगी। अतएव राजा की हैसियत से प्रजा के सामने ऊचा आदर्श उपस्थित करना मेरा कर्त्तव्य है। सर्व प्रथम मैं वही आदर्श क्यो न उपस्थित करू कि कन्या का विवाह कब करना चाहिए? और प्रजा की दृष्टि मे कन्या विवाह के योग्य हुई हे या नही यह बात भी प्रजा से जान लेना चाहिए।

आज भी बाल विवाह की प्रथा बहुत से प्रान्तो मे प्रचलित है। गुजरात जैसे कुछ प्रान्तो मे यद्यपि यह प्रथा कुछ कम हो गई है, फिर भी मारवाड आदि प्रान्तो मे अब भी इसका बहुत जोर है। शायद माता–पिता यह सोचते हैं कि पुत्र–पुत्री हमारे ही हैं और इस कारण हम जब चाहे तभी उनका विवाह कर देने का हमे अधिकार है। इस सबध मे किसी को कुछ कहने का हक ही क्या है और हमे क्या आवश्यकता है कि हम दूसरो की सम्मति मागते फिरे?

इस प्रकार अपनी सन्तान की उन्नति के विषय मे विचार विनिमय करने की भावना बदल गई है और अभिमान ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है। माता–पिता धनाध सत्ताध और प्रेमाध होकर अपनी सतति का बालविवाह करके अभिमान करते है। मगर इस बालविवाह के कारण सन्तान का भावी जीवन कितना दु खमय बन जाता है यह कहना कठिन हे।

राजा महेन्द्र की आज्ञा के अनुसार अजना राजसभा मे गई। राजसभा मे राजा, मत्रीगण और प्रजाजन उपस्थित थे। राजा महेन्द्र ने अपनी कन्या को राजसभा मे बुलाया। इस बुलाने के कार्य को आप कदाचित् बुरा समझेगे मगर वास्तव मे राजा का यह कार्य उचित ही था, अनुचित नहीं। कन्या भले ही अपनी हो, पर उसके विवाह के विषय मे दूसरो की सलाह लेने मे कोई बुराई नही है। राजा का कार्य अगर अनुचित होता तो क्या उस राजसभा मे कोई चतुर आदमी मौजूद न था, जो स्पष्ट कह देता—महाराज आपकी कन्या के विवाह के विषय मे हमारी सलाह लेने की क्या आवश्यकता है? यह तो आपके घर का काम है। आप अपने घर मे ही विचार कर लीजिए। किन्तु दूसरो की सलाह लेने की पद्धति अच्छी थी। और इस कारण किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया। दूसरी बात यह है कि आप स्वय इस पद्धति को बुरा नही कह सकते। जो लोग इस पद्धति को अच्छी समझते हैं, वे भी क्या इसे अपनाते हैं? अच्छाई को अपनी ही समझकर उसे अपनाने की भावना होनी चाहिए। इस भावना का परित्याग कर देना चाहिए कि जो मेरा हे वही अच्छा है। अच्छाई कही भी क्यो न हो, उसे अपना लेने मे ही मनुष्य का कल्याण है। शास्त्र का कथन है कि आत्मा अपना कल्याण आप कर सकती है।

कहा जा सकता है कि हम किस प्रकार यह निर्णय करे कि अमुक बात अच्छी है या बुरी? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस वस्तु को तुम अच्छी समझ रहे हो उस सत्य वस्तु को निष्कपटभाव से अपनाओ। इसी मे तुम्हारा कल्याण है। हा, बात सत्य होने पर भी यदि उसके विषय मे, तुम्हारे हृदय मे कपट है, तो वह सत्य बात भी तुम्हारे लिए असत्य ही हे। कहने का तात्पर्य यह हे कि जिस वस्तु के प्रति तुम्हारा हृदय सरल हे वह तुम्हारे लिए सत्य रूप ही है।

जिस बात मे सच्चाई होती है उसके प्रकट करने मे किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता। भय तो खोटी बात कहने या प्रकट करने मे ही होता हे। अगर तुम्हारा सोना सच्चा हे तो किसी के भी सामने उसे प्रकट करने मे तुम्हे सकोच नहीं होगा। तुम सभी जगह उसे दिखलाने को तैयार रहोगे। हा सोना अगर नकली हुआ तो उसे दिखलाने मे तुम्हे भय तथा सकोच होगा।

राजा महेन्द्र ने विचार किया— 'जब मेरी कन्या विवाह क योग्य हो गई है तो दूसरो को बतलाने मे हानि ही क्या हे? मुझे डर किस बात का हे?

इसके अतिरिक्त मेरे लिए यह दुराग्रह रखना भी ठीक नही कि कन्या मेरी हे तो उसके विवाह के विषय मे मैं स्वय अकेला ही विचार करू। मुझे तो सभाजनो की सम्मति लेना ही उचित जान पडता है।

इस प्रकार विचार करके राजा ने सभाजनो से प्रश्न किया–इस कन्या का विवाह किसके साथ करना उचित है? राजा ने अपने मन मे दृढ निर्णय कर लिया था कि अगर सभाजनो की दृष्टि मे यह कन्या किसी गरीब को देने योग्य जचे और कन्या भी यह बात स्वीकार करे तो ऐसा भी करने मे मुझे तनिक भी उज्र–ऐतराज नहीं होगा।

राजा महेन्द्र का कथन सुनकर सभाजन प्रसन्न हुए। वे मन ही मन विचारने लगे–जब राजा अपनी कन्या के विषय मे हमारी सलाह लेते हैं, तो हमे भी अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए। जब राजा भी हमारे वचन की कद्र करते हैं तो हमे भी राजा की सलाह लेनी और माननी चाहिए।

'यथा राजा तथा प्रजा" यह एक तथ्य है। परन्तु इस कहावत के साथ दूसरी कहावत यह भी है कि "यथा प्रजा तथा राजा" अर्थात् जैसी प्रजा होती है वैसा ही राजा भी होता है। इससे राजा और प्रजा के सबध की घनिष्ठता का पता चलता है।

राजा महेन्द्र ने उपस्थित सभाजनो से कन्या के योग्य वर की पसन्दगी करने के विषय मे प्रश्न किया। सभाजनो ने प्रधान को सम्बोधित करके कहा– 'आप हम सब मे अधिक बुद्धिमान और अनुभवी हैं। अत आप ही कन्या के योग्य वर बतलाइए।'

प्रधान बोला–राजा रावण बडा राजा है और बलवान भी है। अगर राजा रावण के साथ कन्या का विवाह हो सके तो अपना बल भी कई गुणा बढ जायेगा। रावण अपना दामाद बनेगा तो उसका राज्यबल भी अपने राज्यबल की वृद्धि करेगा। अतएव मेरी सम्मति के अनुसार कन्या का विवाह राजा रावण के साथ करना उचित होगा।

प्रधान के इस कथन के उत्तर मे दूसरे सभासद ने कहा–"आप अपना या राज्य का ही भला सोचते हैं या कन्या का भी? राजा रावण कितना घमडी और कितना उन्मत्त हे यह बात आप सभी जानते हैं। वह अहकार एव अभिमान के नशे मे चूर रहा है और दूसरो को टके सेर तक नहीं पूछता। ऐसे घमडी पुरुष मे सद्‌गुणो का वास कैसे हो सकता हे? ऐसे घमडी को कन्या देना तो विष की बेल बढाने के समान है। विष की बेल मे सदा विष फल ही

लगते है। इसी भाति अभिमान रूपी बेल का फल भी कटुक ही होता है। राजा रावण अहकारी और अभिमानी होने के साथ उम्र मे भी बडा है। ऐसी स्थिति मे उसके साथ राजकुमारी का सबध जोडना योग्य नही है। इसके अतिरिक्त रावण पहले ही विवाहित है और उसकी पत्नी मौजूद भी है। एक पत्नी की मौजूदगी मे अपनी कन्या देना अनुचित है।

जिसके एक पत्नी मौजूद हो, उसे अपनी कन्या नही देना चाहिए यह कथन क्या आप युक्तिसगत समझते हैं? आज तो लोगो को यह बात कटुक जान पडती है। मगर वह समय दूर नही, जब आज जो बहुविवाह की प्रथा प्रचलित है यह समूल नष्ट हो जायेगी। जो प्रथा कानून से मजबूर होकर छोडनी पडे, उसको स्वेच्छा से त्याग देना ही योग्य है।

सभाजनो मे से दूसरे सदस्य ने पूर्वोक्त सदस्य का समर्थन करते हुए कहा—वास्तव मे राजा रावण के साथ राजकन्या का विवाह करना उचित नहीं है। हा, रावण की अपेक्षा उसके पुत्र मेघनाद के साथ सबध करना ठीक होगा।

तीसरे सदस्य बोले जब बाप ही योग्य नही है तो बेटा कैसे योग्य हो सकता है? जैसा बाप वैसा बेटा, यह लोकोक्ति तो प्रसिद्ध ही है। जब बाप अहकारी है, तो उसका बेटा भी अहकारी हो, यह स्वाभाविक है। अतएव मेघनाद के साथ विवाह—सबध करना भी मुझे ठीक नही जॅचता। विद्युत्प्रभ के साथ सबध करना मेरी सम्मति मे ठीक होगा। विद्युत्प्रभ त्यागशील ओर सदाचारी है।

चौथे सदस्य ने कहा विद्युत्प्रभ अल्पजीवी है। उसके विषय मे यह भविष्य वाणी है कि वह अठारह वर्ष की उम्र मे सयम धारण करेगा और 26 वर्ष की उम्र मे मुक्तिलाभ कर लेगा। ऐसी हालत मे उसके साथ भी विवाह सबध जोडना कैसे उचित कहा जा सकता है?

सभासद आपस मे इस प्रकार विचार विनिमय कर रहे थे। राजा ने सभासदो से कहा—''इस प्रकार बाते करते रहने से प्रस्तुत प्रश्न का निर्णय कैसे होगा? तब सभासदो ने कहा—हम लोग परस्पर विचार—विनिमय करके आपको निश्चित उत्तर देगे।

राजकुमारी का विवाह—सबध किसके साथ करना चाहिए इस विषय को लेकर प्रजाजन आपस मे विचार— विनिमय करने लगे। एक ने कहा— 'राजा प्रह्लाद के पुत्र पवनजी राजकुमारी के लिए सभी तरह से

उपयुक्त वर है। वे अभी तक अविवाहित है और सदाचारी है। वे इस पकार से निष्कलक हैं। अतएव पवनजी के साथ ही राजकुमारी का सबध जोडना उचित होगा। अन्य पजाजनो ने भी इस कथन का समर्थन किया। तब सर्वसम्मत निर्णय करके पजाजन राजा के पास पहुचे। राजा को भी उनका निर्णय पसन्द आया। पजाजनो ने राजा से कहा– आप लोगो ने तो यह निर्णय किया है मगर राजकुमारी की इच्छा का भी पता लगा लेना चाहिए। यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हे यह सबध पसन्द है या नही?

इस पकार विचार करके राजा ने अजना से पूछा–हम लोगो ने पवन के साथ तुम्हारा विवाह करना निश्चित किया है। इस विषय मे तुम्हारी क्या इच्छा है?

पिता के पश्न से अजना लजा गई और सभा मे से उठकर अन्त पुर की ओर चली गई।

कन्या के विवाह के विषय मे कन्या से ही इस पकार प्रश्न करना क्या उचित है? आज तो अपनी इच्छा के अनुसार ही सरक्षक अपनी सन्तान का विवाह कर देते हैं। अतएव विवाह के विषय मे कन्या की इच्छा जानने का विचार ही उत्पन्न नही होता। कन्या वयस्क और समझदार हो तो उससे विवाह सबधी प्रश्न पूछा जा सकता है पर जहा बपचन मे ही कन्या का विवाह कर दिया जाता हो वहा इस विषय मे पूछताछ करने का सवाल ही खडा नही होता। जो कन्या इतनी अनजान होती है कि उसे यह भी मालूम नही होता कि विवाह क्या वस्तु है वह अपने विवाह के विषय मे क्या सम्मति दे सकती है। प्राचीन काल मे छुटपन मे विवाह नही किया जाता था। उस समय 'सरिसवया सरिसतया' इस शास्त्र पाठ के अनुसार कन्या और वर मे सब प्रकार की अनुरूपता देखी जाती थी। तभी वर और कन्या दोनो की स्वीकृति से विवाह किया जाता था।

पिता का प्रश्न सुनकर अजना लज्जित हो गई और राजसभा मे से उठकर चली गई। लज्जा के कारण वह न 'हा' कह सकी और न 'नही' कह सकी। प्रजाजनो ने राजा से कहा–राजकुमारी ने लज्जा के वश विवाह के विषय मे कुछ भी नही कहा है उन्होने निषेध भी नहीं किया है। इससे यह नतीजा निकलता है कि पवनजी के साथ विवाह करना उन्हे स्वीकार है।

अपने विवाह के विषय मे अजना के हा या ना न कहने के कारण राजा महेन्द्र ने भी यही समझा कि कन्या को पवन के साथ विवाह करना स्वीकार है। अतएव उन्होने पवन के साथ अजना की सगाई और साथ ही विवाह भी कर देने का निर्णय कर लिया।

सगाई के उपलक्ष्य मे राजा ने किसी भी प्रकार का बाह्य आडम्बर नही किया। उन्होने राजा प्रह्लाद के पास एक आमन्त्रण पत्र भेजा कि मैं अपनी कन्या अजना का विवाह आपके चिरजीवी पवनकुमार के साथ करना चाहता हू अतएव आप अमुक तिथि एव दिन को पवनकुमार को लेकर मानसरोवर पर पधारे। हम निश्चित समय पर वहीं मिलेगे।

राजा महेन्द्र का आमन्त्रण पत्र राजा प्रह्लाद को मिला। यह शुभ समाचार जानकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अजना बहुत अच्छी कन्या हे। वह कुल का गौरव बढायेगी, इस प्रकार कहकर सभी लोग अजना की प्रशसा करने लगे।

रंग मे भग

पवन को भी मालूम हुआ कि अजना के साथ मेरे विवाह की बातचीत हो रही है। उसने लोगो से अजना की प्रशसा सुनी। पवनकुमार ने किस उद्देश्य से अजना को देखने का निश्चय किया, यह बात ग्रथो मे दूसरे रूप मे वर्णित की गई है, परन्तु पवनकुमार जैसे महापुरुष का स्त्री के प्रति इस प्रकार आकर्षित होना सगत नहीं जान पडता। अतएव यही कहना उचित प्रतीत होता है कि जब पवनकुमार ने अजना की बहुत प्रशसा सुनी तो उसने सोचा–जिसकी इतनी अधिक प्रशसा सुनी जा रही है, देखना चाहिए वह वास्तव मे कैसी है? जिसके साथ हमारा विवाह किया जा रहा है, उसके साथ जीवन व्यवहार भलीभाति निभ सकेगा या नही? इस विचार से प्रेरित होकर प्राचीन काल मे वर वधू को और वधू वर को देख लिया करते थे। इसी विचार को सामने रखकर पवनकुमार ने भी अजना को देख लेने का विचार किया। उसने अपना यह विचार अपने मित्र प्रहस्त के सम्मुख प्रकट किया। पवनकुमार का यह विचार जानकर प्रहस्त ने कहा–अगर आप यही चाहते हैं तो हानि क्या है? हम लोग चलकर अजना को देख आएगे।

पवनकुमार विद्याधर थे। विद्याधरो के पास विमान होते हैं। आज तो भौतिक विज्ञान से विमान चलते हैं, इस कारण विमान की बात पर लोगो को विश्वास हो जाता हे। मगर पहले जब विमान की बात कही जाती थी तो सुनने वालो को आश्चर्य होता था। लोगो को भौतिक विज्ञान पर जितना विश्वास है उतना आध्यात्मिकता पर नहीं है। यह खेद की बात है।

एक दिन पवनकुमार अपने मित्र पहस्त के साथ विमान मे बैठकर महेन्द्रपुर आये। अब उनके सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि अजना को किस प्रकार देखा जाय? प्रकट रूप मे अजना के पास पहुचना उन्हे अनुचित पतीत हुआ। प्रहस्त ने पवनकुमार से कहा–धीरज रखो। तुम्हारा मन स्वच्छ होगा तो तुम्हारी मनोकामना भी पूरी हो जायेगी।

अजना के विवाह की बात महेन्द्रपुर मे सब जगह फैल चुकी थी। अजना की सखिया एक बगीचे मे बैठी इसी विषय मे बाते कर रही थीं। प्रहस्त ने पवनकुमार से उन स्त्रियो की तरफ इशारा करते कहा–"पवनकुमार, देखो उन कन्याओ मे जो ताराओ मे चन्द्रमा की भाति दिखाई देती है वही अजनाकुमारी जान पडती है।' दोनो चुपके से उनकी बाते सुनने लगे।

उस समय अजना की एक सखी, जिसका नाम बसन्तमाला था अजना से कह रही थी–सखी बडे ही आनन्द की बात है कि तुम्हारा विवाह पवनकुमार के साथ हो रहा है। पवनकुमार युवक है, सुन्दर है और तुम्हारे ही समान धर्माभिमानी है। ऐसे सुन्दर पति का मिलना सौभाग्य की बात है।

बसन्तमाला ने यह कहकर पवनकुमार की प्रशसा की। पवनकुमार की प्रशसा सुनकर अजना ने मुह से कुछ कहा तो नही पर वह हसने लगी। अजना को प्रसन्न देखकर उसकी सखिया समझ गई कि हमारी सखी पवनकुमार के साथ विवाह करने मे अत्यन्त प्रसन्न है।

बसन्तमाला की बात पूरी होने पर दूसरी सखी कहने लगी–सखी अजना! अब तुम्हे पतिव्रत धर्म का पालन करना पडेगा। पतिव्रत धर्म सगाई होते ही प्रारम्भ हो जाता है। तुम्हारी सगाई हो चुकी है, अतएव अब तुम्हारे लिए यह पवित्र धर्म उत्पन्न हो चुका।

पतिव्रत धर्म का महत्व बहुत अधिक है। जो स्त्रिया पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकती, वे पतिव्रत धर्म का पालन करके भी आत्महित की साधना कर सकती हैं। सीता पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करती थी, परन्तु पतिव्रत धर्म का पालन करती थी।

जैसे स्त्रियो के लिए पतिव्रत धर्म है, उसी प्रकार पुरुषो के लिए भी पत्नीव्रत है। जिसमे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने की शक्ति नही है, उसे पतिव्रत या पत्नीव्रत का पालन अवश्य करना चाहिए।

अजना और उसकी सखिया बगीचे मे बैठकर नि सकोच भाव से आनन्दपूर्वक वार्तालाप कर रहीं थी। वार्तालाप मे प्राय दो पक्ष पैदा हो जाते

हैं। तदनुसार अजना के विवाह सबध मे भी उसकी सखियो मे दो पक्ष खडे हो गये। दूसरे पक्ष मे मिश्रकेशी नाम की सखी थी। उसने कहा—हमारी सखी का विवाह विद्युत्प्रभ के साथ न होकर पवनकुमार के साथ हो रहा है यह कोई सौभाग्य की बात नहीं है। विद्युत्प्रभ जैसा महापुरुष है, पवनकुमार उसका मुकाबिला नहीं कर सकते। समुद्र और जल की बूद मे जितना अन्तर है, उतना ही अन्तर विद्युत्प्रभ और पवनकुमार मे है।

मिश्रकेशी के इस कथन के उत्तर मे तीसरी सखी ने कहा—विद्युत्प्रभ कैसा ही क्यो न हो, वह अल्पायुष्य है। उसके विषय मे भविष्यवाणी सुनी जाती है कि वह अठारह वर्ष की उम्र मे दीक्षा धारण करेगा ओर 26 वर्ष की उम्र मे मुक्ति प्राप्त करेगा। ऐसे अल्पायु पुरुष के साथ विवाह करने वाली को वैधव्य की यातना ही भुगतनी पडेगी।

चौथी सखी ने प्रतिवाद करते हुए कहा—जिसने मोक्ष प्राप्त किया हो उस मुक्त पुरुष की विधवा होने मे हर्ज ही क्या हे? मोक्षगामी महापुरुष की पत्नी बनकर थोडे ही दिन तक सुहागिन और अधिक समय तक विधवा रहना अच्छा ही है। चन्दन की लकडी का एक टुकडा भी अच्छा ही होता है। दूसरी एक गाडी भर लकडी क्या उस टुकडे की बराबरी कर सकती है? इसी प्रकार विद्युत्प्रभ भले ही अल्पायुष्य हो, अगर वह मोक्षगामी है, तो ऐसे महापुरुष की थोडे दिनो की सेवा भी हितकर ही कहलाएगी।

अजना सखियो की बातचीत चुपचाप सुन रही थी। उसने किसी की बात मे भाग नहीं लिया न किसी तरफ रुचि प्रदर्शित की। अजना को मोन देखकर पवनकुमार उस पर क्रुद्ध हुए। वह मन ही मन सोचने लगे—केसी है यह अजना जो पर—पुरुष की प्रशसा और जिस के साथ सगाई हो चुकी हे उसकी निन्दा सुनकर भी चुपचाप बैठी है। जो स्त्री अपने पति की निन्दा सुनकर भी चुपचाप बैठी रहती हे, वह स्त्री किस काम की?

पवनकुमार इस विचार से सहसा उत्तेजित हो उठा। वह परिस्थिति को भूल गया और अपने आपको सम्भालने मे असमर्थ हो गया। उत्तेजना के वश होकर वह अजना ओर निन्दा करने वाली उसकी सखी पर तलवार का प्रहार करने के लिए तत्पर हो गया।

पवनकुमार आपे से बाहर हो म्यान मे से तलवार निकाल कर जब अजना और उसकी सखी पर वार करने चला तब प्रहस्त ने कहा— अरे करते क्या हो? कहा जा रहे हो? जरा खडे रहो और विचार करो।

पवनकुमार—सुनते नहीं हो किस प्रकार मेरी निन्दा की जा रही है? फिर भी अजना चुपचाप बैठी हे। वह शाति के साथ मेरी निन्दा ओर पर—पुरुष

की प्रशसा सुन रही है। मैं अजना को और उस निन्दा करने वाली स्त्री को दण्ड दिए बिना नहीं रहूगा।

प्रहस्त–जरा शाति रखो। इतने उतावले मत होओ। पहली बात तो यह है कि स्त्री अवध्य है। कोई स्त्री कैसा ही अपराध क्यो न करे फिर भी उसे मार डालना योग्य नही है, क्योकि स्त्री अबला होती है। इसके अतिरिक्त अजना तो निर्दोष भी है। उसने अपनी सखी की बात का समर्थन नहीं किया है। अजना की सखी सिर्फ बोली है और तुम वीर पुरुष होकर अबला स्त्री पर प्रहार करने को तैयार हो गए हो। यह क्या उचित है? जरा शातिपूर्वक विचार करो। इस प्रकार उच्छखल बन जाना तुम्हे शोभा नही देता।

सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र को अनुचित कार्य करने से रोकता है। खराब मार्ग पर ले जाने वाला मित्र नही, शत्रु है। प्रहस्त पवनकुमार का सच्चा शुभचिन्तक मित्र था। उसने पवनकुमार को समझाकर शात किया ओर दोनो विमान मे बैठकर अपने स्थान पर चले गये।

पवनकुमार के मन से यह बात नहीं निकलती थी कि जो स्त्री मेरी निदा और पर पुरुष की प्रशसा सुनकर चुप बैठी रहती है, वह मेरे लिए किस काम की? ऐसी स्त्री के साथ विवाह करने से क्या लाभ होगा? 'प्रथमग्रासे मक्षिकापात वाली बात हुई।

पवनकुमार ने अपने हृदय के विचार अपने मित्र प्रहस्त के सामने प्रकट किये। प्रहस्त ने कहा–भाई! ऐसा विचार करोगे तो प्रत्येक स्त्री मे कोई न कोई दोष नजर आएगा। अगर तुम्हे ऐसी मामूली बातो से ही असन्तुष्ट होना है तो तुम्हारे लिए सयम धारण करना ही योग्य है।

पवन–अभी सयम धारण करने की योग्यता मुझ मे नही।

प्रहस्त–अगर सयम धारण करने की क्षमता तुम्हारे भीतर नहीं है तो फिर अजनाकुमारी के साथ ही विवाह करना योग्य है। किसी दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना उचित नही है। तुम्हारी स्वीकृति लेने के बाद ही पिताजी ने अजना के साथ सबध करना स्वीकार किया है। माता–पिता जो वचन दे चुके है उसका पूरी तरह निर्वाह करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

इस प्रकार प्रहस्त के बहुत कुछ समझाने–बुझाने पर पवनकुमार ने अजना के साथ विवाह करना स्वीकार किया। परन्तु उसके दिल मे यह भावना बनी ही रही कि विवाह के बाद जब अजना मेरी हो जाएगी तब उससे बदला लिये बिना नही रहूगा।

पवनकुमार के मन मे इस प्रकार कपटभाव आ जाने के कारण इतनी हानि हुई और जब सरलता आ गई तो कितना लाभ हुआ, विषय पर फिर प्रकाश डाला जाएगा।

जो व्यक्ति माथे आई हुई विपत्तियो को भी सम्पत्ति बना लेता है वह आत्मोद्धार करने के साथ–साथ जगत् के समक्ष एक उच्चादर्श भी उपस्थित कर जाता है। कीडो मकोडो की तरह जीवन व्यतीत करने वाले तो जगत् मे बहुत मिलेगे पर उन्ही का जीवन उच्चादर्श तथा सफल गिना जाता है जिनका जीवन दूसरो के लिए अनुकरणीय बनता है। जिनके जीवन प्रसगो से आत्मविकास के तत्त्व फूट निकलते हैं, उनका जीवन धन्य है। ऐसे जीवन का बखान करना और सुनना लाभप्रद ही है। सती अजना का जीवन चरित्र भी आत्मविकास के तत्त्वो से ओतप्रोत है। अतएव उसके जीवन चरित को एकाग्रचित होकर सुनने वालो और थोडे–बहुत अशो मे भी अनुकरण करने वाली को अवश्य ही आत्म लाभ होगा।

सती अजना मे कितना अथाह धीरज था, यह बात उसके जीवन की घटनाओ से भलीभाति जानी जा सकती है।

मिश्रकेशी द्वारा की गई विद्युत्प्रभ की प्रशसा सुनकर अजना चुप क्यो रही? इसका कारण यह था कि अजना महापुरुषो की प्रशसा मे विघ्न बाधा उपस्थित नहीं करना चाहती थी। लेकिन बेचारी अजना को क्या पता था कि उसके मौन का क्या दुष्परिणाम होने वाला है?

मिश्रकेशी द्वारा की गई विद्युत्प्रभ की प्रशसा सुनकर भी मौन रहने के कारण ही पवनकुमार अजना पर क्रोधित हुआ था। यहा तक कि क्रोध के आवेश मे वह दोनो के प्राण ले लेने के लिए भी उद्यत हो गया था। परन्तु प्रहस्त ने उसे समझा बुझाकर शान्त कर दिया। पवनकुमार उस समय शात हो गया पर उसके हृदय का डक दूर नही हुआ। अजना के साथ विवाह न करने का उसने विचार किया था पर प्रहस्त के कहने से उसे विवाह के लिए भी राजी होना पडा। राजी तो वह हो गया मगर अन्त करण की प्रेरणा या

से नहीं, बल्कि अजना से उसके मौन का बदला लेने के उद्देश्य से।

किए बिना अजना को वह उसके अपराध का दड नहीं दे सकता था और विवाह करने पर दण्ड देना सरल हो जायेगा। कुछ–कुछ पिताजी के वचन का निर्वाह करना भी उसके लिए आवश्यक था। इन्ही सब कारणो से उसने इस विवाह का विरोध नहीं किया। उसने सोचा–मे अजना के साथ विवाह कर लूगा तो मित्र के आग्रह की रक्षा हो जायेगी माता–पिता की आज्ञा

का पालन हो जायेगा और अजना को उसके अपराध की सजा भी दी जा सकेगी।

पवनकुमार की यह भावना यद्यपि प्रशस्त नही कही जा सकती परन्तु विवाह कर लेने के बाद उसमे जो दृढता रही उस दृढता के कारण उसका यह दुर्भाव गौण हो गया।

विवाह

पवनकुमार के विवाह की तैयारी होने लगी। राजा पह्लाद ने बडे चाव से उसे दूल्हा बनाया और साथ लेकर मानसरोवर पर पहुचा। इधर महेन्द्र भी अजना के साथ वहा आ पहुचा। पवन के साथ अजना का विवाह सबध आनन्द के साथ स्थापित हो गया। पवनकुमार ने विवाह तो कर लिया लेकिन विवाह के समय वर मे जो प्रसन्नता और पमोद दिखाई देता है उसका कोई भी चिन्ह उसके चेहरे पर दिखाई न दिया।

राजा महेन्द्र और पह्लाद दोनो साधारण राजा नही थे। उनकी सन्तानो का यह पहला विवाह हो रहा था। फिर भी उन्होने तीन ही दिनो मे विवाह का सारा काम–काज अत्यन्त सादगी के साथ निबटा दिया। आज विवाह के नाम पर कितना समय नष्ट किया जाता है। एक विवाह के लिये लोग अपना और अपने सबधियो का महीना भर बिगाड देते हैं। यह सब समय की कीमत न समझने का परिणाम है। पहले के लोग समय का मूल्य समझते थे। और इसी कारण राजा जैसे असाधारण लोग भी तीन दिन मे विवाह कार्य निपटा लेते थे। विवाह के नाम पर जो समय वृथा नष्ट किया जाता है, वह अगर बचा लिया जाय और धर्म कार्य मे उसे व्यय किया जाय तो क्या विवाह का काम रुक जायेगा? क्या थोडे समय मे विवाह नही हो सकता? अगर हो सकता है तो फिर समय को निरर्थक नष्ट करना कौनसी बुद्धिमत्ता है?

गृहस्थ चाहे तो पग–पग पर धर्म का आराधन कर सकते हैं पर लोगो की समझ तो यह हो गई है कि जब तक उपाश्रय या धर्मस्थान मे रहे तभी तक धर्म हो सकता है। धर्मस्थान से बाहर निकलने के बाद तो पाप ही पाप करना शेष रह जाता है। इस भ्रमपूर्ण मान्यता के कारण कितनी हानि हो रही है इसका वर्णन करना कठिन है। तुम समझते हो कि धर्म सिर्फ उपाश्रय मे ही हो सकता है तो क्या दुकान पर बैठने से श्रावक, श्रावक नही रहता? अहिसा सत्य आदि श्रावक के जो स्थूल व्रत हैं उनका पालन तो व्यवहार मे ही हो सकता है। ऐसी स्थिति मे यह समझना कि धर्म सिर्फ उपाश्रय मे ही हो सकता है कितना भमपूर्ण है।

राजा महेन्द्र ने सादगी के साथ पवनकुमार व अजना का विवाह कर दिया। उसने अपनी शक्ति के अनुसार दहेज भी दिया। राजा प्रह्लाद अपने पुत्र और अपनी पुत्रवधू को लेकर घर आया। प्रह्लाद और उनकी रानी केतुमति अजना को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अजना अपने नये घर मे आई। उसने सास और ससुर के चरणो मे यथोचित नम्रता के साथ सिर झुकाया।

पतिगृह मे

अजना के शील–स्वभाव मे कोई त्रुटि नहीं थी। उसके सभी व्यवहार वैसे ही थे जेसे एक उच्चकुल की आदर्श गृहिणी के होने चाहिए। अतएव अजना पर सभी प्रसन्न थे। अप्रसन्न था तो केवल पवनकुमार, जो पूर्व वैर से प्रेरित था। राजा प्रह्लाद ने अजना के लिए एक सुन्दर महल बनवा दिया था। पवनकुमार को यह बात रुचिकर नहीं हुई। वह सोचता–पिताजी ने इसके लिए इतना सुन्दर महल क्यो बनवा दिया है? इसकी आवश्यकता ही क्या थी? फिर उसने विचार किया–मगर पिताजी को क्या पता है कि मुझे यह पत्नी पसन्द नही है अथवा इसके प्रति मेरे हृदय मे वैर भाव छिपा है। यह बात मालूम न होने के कारण वे अजना का आदर करे उस पर स्नेह रखे यह स्वाभाविक है। परन्तु मैं किसी अवस्था मे अजना को प्रेम नही कर सकता। मैं अजना को अन्त करण से त्याग चुका हू। पवनकुमार अजना का मुह तक नही देखते थे। अजना की समझ मे नही आता था कि आखिर पति की अप्रसन्नता का क्या कारण है? फिर भी वह स्वभाव से गम्भीर, कुलीन, विवेकशील ओर धेर्यवाली थी। वह धीरज के साथ अपना समय व्यतीत कर रही थी, कभी–कभी वह सोचा करती–ऐसा क्या अपराध मेंने किया हे कि मेरे पतिदेव मुझ पर इतने अधिक रुष्ट रहते हैं? इस जन्म मे तो मेंने कोई अपराध नही किया हे। हा, पहले के जन्म मे कोई अपराध अवश्य किया होगा जिसका फल मुझे इस समय भुगतना पड रहा हे। किये हुए कर्मो का फल भोगना ही पडता हे, बिना भोगे छुटकारा कहा।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा हे–

कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि

अर्थात् किए हुए कर्मो को भोगे बिना छुटकारा नहीं। इसी प्रकार श्री भगवती सूत्र मे भी कहा हे–

प्रश्न–भगव! सकडा कम्मा वेदन्ति परकडा?

उत्तर–गोयमा! सकडा कम्मा वेदन्ति नो परकडा।

अर्थात् गौतम स्वामी ने प्रश्न किया–भगवन्! स्वकृत कर्म भोगने पडते हैं या परकृत? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने फरमाया–हे गौतम अपने किए कर्म ही भोगने पडते है, दूसरे के किये कर्म नही भोगने पडते।

इस प्रकार अजना यह विचार करके धैर्य धारण करती थी कि मैंने पूर्व जन्म मे कोई अपराध किया है और उसके फलस्वरूप ही मेरे पतिदेव मुझ पर अप्रसन्न रहते हैं।" इस तरह के विचार से अजना को धीरज वधता था फिर भी स्त्री का हृदय जो ठहरा। कभी–कभी उसके हृदय मे वेदना होती ओर वह उदास हो जाती थी।

एक बार अजना विचार मग्न उदासीन बैठी थी। उसी समय उसकी सखी बसन्तमाला उसके पास आकर कहने लगी– सखी! तुम इतनी ज्यादा उदास क्यो रहती हो? तुमने कोई अपराध तो किया नहीं है फिर भी राजकुमार तुमसे इतने अप्रसन्न क्यो रहते हैं? यह तो पुरुष का साफ अन्याय ही कहा जा सकता है। राजकुमार तुम्हारे प्रति जो अन्याय कर रहे हैं, उसका परिणाम उनके हक मे भी अच्छा नहीं होगा–वरन् बुरा ही होगा।

सखी के इस कथन के उत्तर मे अजना ने कहा– बहिन! ऐसा मत कहो। पति के अनिष्ट का विचार भी मैं नही कर सकती। उनका अनिष्ट चाहने मे मेरा ही अनिष्ट है। मैंने अवश्य ही पूर्वजन्म मे कोई अपराध किया होगा, इसी कारण तो पतिदेव मुझ पर नाराज रहते हैं। अपने किये कर्मो का फल मुझे भोगना ही चाहिए। अगर मैं पवित्र हू तो मुझे पवित्र ही रहना चाहिए। कैसी भी परिस्थिति क्यो न उपस्थित हो, मुझे अपने अन्त करण मे अपवित्रता का प्रवेश नही होने देना चाहिए। कचन आग मे तपाया जाता है और फिर पीटा जाता है फिर भी वह कचन ही बना रहता है। ईख कोल्हू मे पील दी जाती है फिर भी मिठास ही देती है, कटुवास नही। इसी प्रकार मुझ पर चाहे जैसी विपदा आ जाए फिर भी मुझे पति का अनिष्ट नही सोचना है। मैं तो पतिदेव की कुशल– कामना ही करती हू और स्वय पवित्र रहना चाहती हू। कष्टो से घबरा कर पति का अनिष्ट चाहूगी तो मेरा ही अनिष्ट होगा। मैं पति पर स्वप्न मे भी क्रोध नहीं करना चाहती। मेरे इस भव के पतिदेव तो वही है–दूसरा कोई नही हो सकता। मैंने अपना यह जीवन उन्ही के चरणो मे समर्पित कर दिया है। ऐसी स्थिति मे स्वप्न मे भी मैं उनका अनिष्ट नही चाहती।

अजना इस प्रकार के सद्‌विचारो द्वारा पतिदेव की कुशल कामना करती और अपनी उदासीनता मिटाती थी। अजना के महल मे एक ऐसी खिडकी थी, जिसके द्वारा वह प्रतिदिन पतिदेव के दर्शन कर लेती थी। एक बार राजकुमार ने अजना को अपने दर्शन करते देख लिया। खिडकी द्वारा अपने दर्शन करते देखकर पवन सोचने लगा–'यह स्त्री तो मेरा पिण्ड ही नहीं छोडती।' और उसने वह खिडकी बन्द करवा दी।

यह एक ऐसी घटना थी कि अजना के हृदय मे क्रोध उत्पन्न हो सकता था। परन्तु उसने हिम्मत के साथ अपने दिल पर काबू किया और तनिक भी क्रोध न उत्पन्न होने दिया। वह सोचने लगी–यह तो मेरी परीक्षा हो रही है। मुझे साहस नहीं खोना चाहिए और इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होना चाहिए।

राजकुमार का घोर अन्याय देखकर बसन्तमाला से फिर न रहा गया। वह अजना से कहने लगी–सखी! तुम धर्म का विचार करके राजकुमार के अपराधो को क्षमा कर रही हो और उनकी मगल–कामना करती हो, मगर राजकुमार के अन्याय की हद हो गई है। उन्होने महल की खिडकी भी बन्द करा दी है। उनका यह व्यवहार कितना अनुचित है।

शाति के साथ अजना बोली–सखी! उन्होने जो किया सो ठीक ही किया है। अगर मेरे हृदय मे पति के प्रति सच्चा प्रेम है–अगर मेरे पति मेरे अन्त करण मे मौजूद हैं तो फिर खिडकी के द्वारा उनका चेहरा देखने की आवश्यकता ही क्या है? मैं अपने हृदय मे विराजमान हृदयदेव के दर्शन बिना खिडकी ही कर लूगी। अतएव उन्होने अगर खिडकी बन्द करवा दी हे तो भी कोई हर्ज की बात नहीं।

इस प्रकार पति द्वारा परित्यक्ता अजना धैर्य के साथ विपत्ति को भी सम्पत्ति मान रही है। जो व्यक्ति विपत्ति और सम्पत्ति के समय अपना मन शान्त रखता है, हर्ष और विषाद से अपने मन को अभिभूत नहीं होने देता, वह अवश्य ही कल्याण का भागी होता है। अतएव सती अजना का यह चरित्र अनुकरणीय है।

बिना किसी उचित कारण के अजना का परित्याग करने के लिये पवनकुमार को दोषी और निन्दा पात्र कहा जा सकता हे। किन्तु अजना का तिरस्कार करने के साथ उसने एक प्रशसनीय कार्य भी किया। उस कार्य से पवनकुमार को प्रशसा का पात्र भी माना जा सकता है। हमे दूसरो के दोप ही नहीं देखने चाहिये।

पवन राजकुमार थे। उन्हे अनायास ही दूसरी कन्या मिल सकती थी। अजना के प्रति रुष्ट और असन्तुष्ट होने के कारण दूसरी कन्या के साथ विवाह कर लेना उनके लिए कोई बडी बात नही थी। उनके मित्रो ने दूसरा विवाह कर लेने के लिए पवनकुमार को प्रेरित भी किया होगा लेकिन उन्होने यही उत्तर दिया होगा--जब मैं एक स्त्री का चरित्र देख चुका हू तो फिर दूसरा विवाह करके अजना की तरह दूसरी स्त्री का भी जीवन क्यो नष्ट करू? ऐसा करने का मुझे क्या अधिकार है? किसी स्त्री को सकट मे डालने की अपेक्षा क्या यही अधिक हितकर नही होगा कि मै स्वय शुद्ध बनू?

हम पुरुष है और वह स्त्री है, इस पकार अभिमान से प्रेरित होकर आज बहुत से पुरुष स्त्रियो पर अत्याचार करते हैं। किन्तु जैनधर्म के अनुसार स्त्री और पुरुष के अधिकार समान हैं। किसी को किसी का अधिकार छीन लेने का हक नही है।

पवनकुमार अजना पर रुष्ट तो थे फिर भी क्रोध के आवेश मे आकर उन्होने दूसरा विवाह नही किया। वह ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने लगे। वास्तव मे यह कितना ऊचा आदर्श है। आज के पुरुष तो यह कहने को तेयार हो जाते हैं कि पुरुष होने के कारण हमे चाहे जितनी बार विवाह करने का अधिकार पाप्त है। इस प्रकार कहने वाले सिर्फ स्त्री को ही पवित्र रखना चाहते हैं। उन्हे स्वय पवित्र रहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मगर जो स्वय पवित्र नही है उसे दूसरो को पवित्र रखने का अधिकारी कैसे माना जा सकता है?

मै आपको सदाचार के पालन का उपदेश देता हू। लेकिन खुद का ही जीवन पवित्र सयममय न हो तो ऐसी दशा मे आप मुझे क्या कहेगे? आप यही कहेगे– महाराज! पहले अपना आचरण तो सम्भालो। तात्पर्य यह है कि जो स्वय पवित्र नही है वह दूसरो को पवित्र नही रख सकता। इस कथन का आशय यह नही कि आप हमारे सयम का बराबर ध्यान न रखे। आप साधुवर्ग के सयम का बराबर ध्यान रखे और साथ ही साथ अपनी पवित्रता का सरक्षण और पालन करे। आपको अपने गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए। साधु को श्रावक का और श्रावक को साधु का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा करने से दोनो के धर्म का यथा योग्य पालन होगा। अलबत्ता इस कथन का आशय यह नही समझना चाहिए कि दोनो मे से एक वर्ग अगर अपने धर्म का यथोचित पालन न करे तो दूसरे वर्ग को भी नही पालना चाहिए। दूसरे अपने धर्म का पालन करे या न करे फिर भी हमे तो अपने धर्म का पालन करना ही चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य हे कि वह केवल स्वार्थ का ही साधन न करे वरन् परमार्थ का भी आराधन करे। पवनकुमार सोच सकते थे कि मैं पुरुष हू और पुरुषो मे भी राजकुमार हू। अजना अपने कर्मो का फल भुगत रही है तो भुगते। मैं स्त्री सुख से वचित क्यो रहू? लेकिन पवनकुमार ने ऐसा स्वार्थपूर्ण विचार न करके ब्रह्मचर्य का ही शुद्ध रूप से पालन किया।

साधारणतया लोग अपने विषय मे जो बात सोचते हैं वही दूसरो के विषय मे नही सोचते। इसी कारण घोर अन्याय हो जाता है। आज पुरुषो मे यह पद्धति प्रचलित हो गई है कि वे अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हे लेशमात्र भी यह विचार नहीं आता कि जो काम स्वय उन्हे पसद नहीं है वह स्त्रियो को कैसे पसन्द आता होगा? इस विषय मे गुलिश्ता मे एक कथा कही गई है। उसमे कहा है–

एक अमीर की स्त्री मर गई। अमीर के मित्रो ने उससे कहा–तुम्हारे पास अखूट धन सम्पत्ति है। तुम दूसरा विवाह करलो।

अमीर ने कहा–मुझे बूढी स्त्री पसन्द नहीं है।

मित्र–यह कौन कहता है कि तुम बुढिया के साथ विवाह करो। किसी नवयुवती के साथ शादी करलो। तुम्हे किस चीज की कमी हे?

अमीर–तुम मेरे कहने का मतलब नहीं समझे। मेरे कहने का आशय यह है जब मुझे बूढी स्त्री पसन्द नहीं है तो नवयुवती स्त्री को मुझ जैसा बूढा क्यो पसद आने लगा। में अपना ही मतलब समझू और दूसरो के हिताहित का विचार न करू, यह किस प्रकार उचित कहा जा सकता हे?

क्या आपको अमीर की बात युक्तिसगत जान पडती हे? अगर वास्तव मे आप अमीर के कथन को सत्य ओर न्यायसगत समझते हें तो आपको विवाह सबधी अन्यायपूर्ण कार्यों मे कदापि भाग नहीं लेना चाहिए। जहा किसी वृद्ध का तरुणी के साथ विवाह होता हो वहा आपको सम्मिलित नहीं होना चाहिए। वृद्ध विवाह मे भाग लेने से तुम पाप के भागी होते हो ओर उसमे अपना सहयोग न देकर अपने आपको पाप से बचा सकते हो।

पवनकुमार के मित्र जब दूसरा विवाह करने का आग्रह करते तव वह इस आशय का उत्तर देते–पर पुरुष की प्रशसा सुनकर कुछ भी न बोलना–मोन रहना, यह अजना का व्यवहार मे सहन नही कर सका तो अजना यह केरा सहन कर सकेगी कि में दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लू। एसी दशा म दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना मेरे लिए उचित नही हे।

दूसरा विवाह न करने की पवनकुमार की दृढ़ता से अजना को भी पर्याप्त आश्वासन मिलता था—कहना चाहिए कि एक प्रकार से वह प्रसन्न रहती थी। वह सोचती भले ही राजकुमार मुझ पर रुष्ट है फिर भी शील का पालन करने मे तो वह दृढ ही हैं। अजना दिन भर इसी प्रकार सोचती—सोचती अपना समय व्यतीत करती थी। रात्रि मे वह आत्मालोचना करती। वह सोचती रहती है कि मुझसे ऐसा कौनसा अपराध बन गया है जिसके कारण पतिदेव मुझसे रुष्ट रहते है? बहुत कुछ सोचने विचारने पर भी पति के रोष का कोई कारण वह खोज नहीं पाती थी। अन्त मे वह इसी नतीजे पर पहुचती थी कि पूर्वजन्म मे किये हुए किसी पापकर्म के कारण ही मुझे यह कटुक फल भोगना पड रहा है। और वह सत्कार्य एव सद्विचार मे ही प्रवृत्त रहती थी।

कभी—कभी अजना की सखी बसन्तमाला पवनकुमार की अप्रसन्नता के विषय मे कुछ कहती अथवा पवनकुमार की निन्दा करने लगती तो वह उसे ऐसा कहने से रोक देती और कहती—सखी! पति की निन्दा मत करो। भले ही वे मुझ से रुष्ट हैं, फिर भी वे मेरे पतिदेव हैं। मैंने अपना जीवन उनकी सेवा मे समर्पित किया है। तू कहती है कि ऐसा दु खमय जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा तो पिता के घर अविवाहित रहना ही अच्छा था। मगर तेरा यह कथन भ्रमपूर्ण है क्योकि पिता के घर से यहा आने की भावना मैंने ही की थी। पिताजी ने जबरदस्ती से मुझे घर से नहीं निकाला है। जब मैने विवाह करने की स्वीकृति दी तभी मेरा विवाह किया गया था। पिताजी ने मेरे जीवन को पवित्र और सुखी बनाने की दृष्टि से ही मेरा विवाह किया था। अब अगर मुझे पति द्वारा परित्यक्त होकर रहना पडता है तो इसमे किसी का अपराध नही है। मुझे यह अपने ही पाप कर्म का फल जान पडता है। मुझे तो पति के रुष्ट होने के कारण ही ब्रह्मचर्य का पालन करना पडता है। परन्तु वे महासतिया कितनी पवित्र और सुशील थी जो स्वेच्छापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करके अपना जीवन धन्य मानती थीं।

ब्राह्मी चन्दनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता सुभद्रा शिवा।।
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि
पद्मावत्यऽपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु नो मगलम्।।

इन महासतियो ने स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य का विशुद्ध पालन किया था। यही कारण है कि प्रात काल इनका स्मरण किया जाता है।

अजना ने बसन्तमाला को समझाते हुए कहा–बहिन! पतिदेव मुझ पर रुष्ट हैं और इस कारण मेरा जीवन दुखी है, यह बात सच हे। लेकिन पति के रुष्ट होने के कारण मैं ब्रह्मचर्य का पालन कर रही हू, यह भी क्या बुरा है? पति चाहे तो दूसरी कुमारी के साथ विवाह कर सकते हैं, लेकिन जैसे भगवान् नेमिनाथ ने राजमती का त्याग करके अन्य स्त्री के साथ विवाह नहीं किया था, उसी प्रकार मेरे पति ने भी किसी दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने का विचार नहीं किया है तो फिर मैं भी राजमती के समान ब्रह्मचर्य का पालन क्यो न करू?

अजना इस प्रकार अपनी सखी को समझाकर शात करती और आप स्वय भली भाति ब्रह्मचर्य का पालन करती एव परमात्मा के ध्यान मे जीवन व्यतीत करती। अजना चाहती तो पिता के घर जा सकती थी। पर उसने ऐसा नही किया। वह एक दो वर्ष नहीं, बाईस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन करती रहीं।

अजना की सखिया उससे कहतीं–आपकी भावना इतनी ऊची है कि यह दुख अधिक समय तक बना नहीं रह सकता। थोडे ही समय मे आपके दुख का अन्त अवश्य होगा।

सखियों के इस सान्त्वनापूर्ण कथन के उत्तर में अजना कहती–सखियों! तुम्हारे ऐसे वचनो से मुझे धैर्य प्राप्त हो, यही मैं चाहती हू।

इस प्रकार पवनकुमार और अजना–दोनों ही ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे। पवनकुमार ने सुविधा होते हुए भी विवाह नहीं किया और अजना ने इस परिस्थिति के लिए अपने कृत कर्मों को उत्तरदायी समझा।

वास्तव मे कर्मों का नियम इतना अटल है कि उसमे जरा भी फेरफार नही हो सकता। कर्मों के विषय मे यह नियम है कि जो कर्म किए जा चुके हैं, उन्हे प्रदेश अथवा विपाक से भोगना ही पडता हे। शास्त्र मे कहा हे–

कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि।

अर्थात्–किये हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं।

इस प्रकार जब किये कर्म भुगतने ही पडते हैं तो हायतोबा मचाते हुए क्यो भोगना चाहिए? दुख के समय आर्त्तध्यान करने से क्या लाभ है? बिजली के लट्टू मे जो प्रकाश आता है वह 'पावर हाऊस' अर्थात् बिजली घर स ही आता है। "पावर हाऊस' मे से प्रकाश न आता तो लटटू मे वह कहा से होता? इसी प्रकार जो भी सुख या दुख आता हे वह अपने किये कर्मों के कारण ही आता है। जो अज्ञानी हैं वे सुख आने से प्रसन्न होते हैं और दुख आ पडने पर विषाद से घिर जाते हैं। परन्तु ज्ञानी पुरुष सुख और

दु ख मे समभाव रखते हैं। वे मानते हैं कि यह सुख या दु ख मेरे कर्म रूपी 'पावर हाऊस' मे से ही आया है। इस विचार के पभाव से ज्ञानी पुरुष सुख के समय फूल नही जाते और दु ख के समय घबराते नही हैं।

अजना भी इस पकार कर्मफल का विचार करके धैर्यपूर्वक वियोग को सहन कर रही थीं। उसका धैर्य और उच्च भावना देखकर उसकी सखियां कहा करती थी कि– सखी! तुम धन्य हो, पवित्र हो। तुम्हारा धैर्य और पवित्र भाव शीघ्र ही इस दु ख को समाप्त कर देगा।

इस पकार जीवन व्यतीत करते–करते बाईस वर्ष व्यतीत हो गये। इन बाईस वर्षो मे उसके मन मे न तो दुर्भावना उत्पन्न हुई और न पवनकुमार के ऊपर उसे क्रोध ही चढा। कहा जा सकता है कि लगातार बाईस वर्षो तक अजना ने इतना दु ख कैसे सहन किया होगा? लोगो को इतने लम्बे समय तक ऐसा कष्ट भोगना बहुत कठिन जान पडता है पर नरक मे रहकर कितने समय तक और कैसा कष्ट भोगा है, यह बात क्यो भूल जाते हो? लम्बे सागरोपम वर्षो तक घोरतर वेदना सहन की है तो थोडे दिनो तक इतना कष्ट सहना कौनसी बडी बात हुई?

इस प्रकार का विचार करके ज्ञानी जन दु ख आ पडने पर धैर्य धारण करते हैं और घबराते नहीं हैं। अजना विचारशील रमणी थी अत उसने बाईस वर्ष तक धैर्य के साथ दु ख सहन किया। अब ऐसा जान पडता था कि उसके दु ख का अन्त आ रहा है। परन्तु प्रत्येक काम निमित्त कारण से ही पूरा होता है–बिना निमित्त मिले कोई काम नही होता। इस नियम के अनुसार यहा भी निमित्त मिलने की देरी थी। सयोगवश एक ऐसा निमित्त मिल गया जिससे अजना का दु ख दूर हो गया।

घोर अपमान

राजा रावण के मन मे एक बार विचार आया कि और तो सभी राजा मेरे सामने झुकते हैं सिर्फ एक वरुण राजा ही ऐसा है जो अपना सिर ऊचा उठाये हैं। जब तक वरुण को मैं अपने सामने नहीं नमाता, तब तक मैं सर्वोपरि राजा कैसे कहला सकता हू।

यह विचार आते ही रावण ने वरुण के पास दूत भेज दिया। दूत से कहला भेजा–या तो तुम राजा रावण के सामने झुको या युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ। दूत ने वरुण को रावण का सवाद कह दिया।

वरुण ने उत्तर दिया–रावण राक्षस है और मैं दैवी प्रकृतिवाला हू। इस कारण मैं रावण के सामने नम नहीं सकता।

वरुण का उत्तर पाकर दूत रवाना हो गया। उसके रवाना होने के बाद वरुण ने अपने पुत्रो को बुलाया और कहा–रावण राक्षस तो है परन्तु वह पराक्रमी और बलवान है। ऐसी स्थिति मे हमे क्या करना चाहिए?

पुत्रो ने वरुण से कहा–पिताजी! आप इस बात की चिता न करे। हम रावण को समझाने का प्रयत्न करेगे।

वरुण के पुत्र राजा रावण को समझाने गये। उन्होने रावण से कहा–आप वरुणराज को किस उद्देश्य से बुलाना चाहते हैं?

रावण–मैं महाराज हू। सभी राजा मुझे नमन करते हैं, सिर्फ वरुण ही मुझे नमन नहीं करता। नमन करने के लिए ही उन्हे बुलाया था।

पुत्रो ने कहा–वरुण भी बडे राजा हैं। आपको सब के साथ एक ही तरीके से पेश नहीं आना चाहिए।

रावण–वरुण बडा राजा कैसे? वह तो मेरे सारथी के समान है। मैं इतना शक्तिशाली हू कि उसे जरासी देर मे ही पराजित कर सकता हू।

पुत्रो ने कहा–आप वरुण को साधारण व्यक्ति समझते हैं परन्तु एक ओर वरुण अपने हाथ मे शस्त्र ले और दूसरी ओर आप अपने हाथ मे शस्त्र ग्रहण करके लडे, तो ऐसा करने मे आपका क्या बडप्पन रहा?

रावण ने गर्व के साथ कहा–मेरे सामने वरुण की शक्ति की बिसात ही क्या है? उसे पराजित करना मेरे बाये हाथ का काम है और मैं प्रतिज्ञा करता हू कि उसके सामने मैं शस्त्र नहीं उठाऊगा। इतना ही नहीं अगर उसने शस्त्रग्रहण किया होगा तो भी मैं बिना शस्त्र के लडूगा।

वरुणपुत्रो ने पिता से आकर कहा–पिताजी! रावण मानता नही है। आप युद्ध करने के लिए तैयार रहिए। हमने उसे नि शस्त्र होकर लडने को वचनबद्ध कर लिया है। वह शस्त्र रहित होकर ही आपके साथ लडेगा।

रावण ने खरदूषण नामक सेनापति को वरुण के साथ युद्ध करने के लिए भेज दिया। खरदूषण रावण का बहनोई था। वरुण के पुत्रो ने खरदूषण के साथ युद्ध किया। रावण के वचन के अनुसार खरदूषण नि शस्त्र था। अतएव वरुण के पुत्रो ने उसे पराजित कर दिया।

खरदूषण के पराजित होने के समाचार पाकर रावण सोचने लगा–अब क्या करना चाहिए? मेरे पास कोन आया था जिसने मुझे युद्ध मे शस्त्रविहीन होकर लडने के लिए वचन बद्ध कर लिया है? अब वरुण को किस भाति पराजित किया जाय? मैंने युद्ध मे नि शस्त्र होकर लडने की प्रतिज्ञा करके भारी भूल कर डाली है।

रावण चिता मे पड गया। उसे चिन्तातुर देखकर एक मत्री ने कहा—आपने नि शस्त्र होकर लडने की जो पतिज्ञा की है वह आप ओर आपके भाइयो तक ही सीमित रखनी चाहिए। आपके अधीन दूसरे जो राजा हैं उन्होने ऐसी कोई पतिज्ञा नही की है। आप किसी चतुर ओर पराकमी सामन्त को वरुण के साथ युद्ध करने के लिए सशस्त्र सेना के साथ भेजिए। पह्लाद जैसे चतुर सामन्त के रहते आपको चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है?

राजा रावण को सलाह पसन्द आ गई। उसने तुरन्त ही पह्लाद राजा के पास एक पत्र भेजकर कहलाया—वरुण को जीतने के लिए तुम्हारी आवश्यकता है। अत तैयार होकर वरुण के साथ युद्ध करने जाओ।

पत्र पढकर राजा पह्लाद ने विचार किया—इस समय स्वामी पर सकट आ पडा है। सकट के समय स्वामी की सेवा करना आवश्यक हे। इस तरह विचारकर वह युद्ध की तैयारी करने लगे। पिता को युद्ध की तैयारी करते देख पवनकुमार ने अपने मित्र से पूछा— पिताजी कहा जाने की तेयारी कर रहे हैं? मित्र ने सारी बात पवनकुमार को बतलाई। पवनकुमार ने कहा—वरुण के साथ युद्ध करना कोई निजी काम नही है फिर पिताजी निष्कारण ही लडने क्यो जा रहे हैं?

पवनकुमार का मित्र बोला—स्वामी सेवक का सबध ऐसा ही होता हे। इस सबध के कारण पिताजी को सकट दूर करने के उद्देश्य से लडने जाना पडेगा।

पवनकुमार—अगर स्वामी सेवक का सबध ऐसा होता है तो पिता—पुत्र का सबध भी ऐसा ही होना चाहिए। पिता और पुत्र का सबध पवित्र सबध है। इस सबध की दृष्टि से पिता के बदले मुझे युद्ध मे जाना चाहिए।

पवनकुमार ने अपने मित्र से फिर कहा—जब बलवान और योग्य हू तो यह कैसे हो सकता है कि पिताजी युद्ध मे जाए और मैं घर पर पडा रहू।

पवनकुमार अपने पिता के पास पहुचे और यथोचित अभिवादन करके कहने लगे—पिताजी आप कहा जाने की तैयारी कर रहे हैं?

राजा प्रह्लाद ने सब समाचार सुनाकर कहा—मैं राजा रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने जा रहा हू।

पवनकुमार बोला—मेरे रहते आप युद्ध मे जाए यह मुझे शोभा नही देता। कृपा कर आप यहीं रहिए ओर मुझे युद्ध करने जाने दीजिये।

प्रह्लाद—बेटा! युद्ध करना सहज काम नही है। वरुण राजा और उसकी सेना युद्ध कुशल है और इसी कारण उसके साथ युद्ध करने की रावण ने मुझे आज्ञा दी हे। ऐसी स्थिति मे में तुझे केसे भेज सकता हू?

पवनकुमार–पिताजी! क्या मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र नहीं हू कि आप मुझे युद्ध मे जाने की मनाई कर रहे है? क्या आप मुझे कायर समझते हैं? अगर सचमुच ही आप मुझे कायर नही समझते हैं तो फिर किस कारण से युद्ध मे जाने का निषेध करते हैं। जब राजा रावण अपनी ओर से आपको युद्ध करने के लिए भेज रहा है तो फिर आपकी ओर से आपके बदले मैं युद्ध करने क्यो नही जा सकता? इसमे अनुचित क्या है? क्या मैं आपका पुत्र नहीं हू, जो आपकी तरफ से युद्ध मे न जा सकू?

प्रह्लाद पुत्र! यह कैसे कहा जा सकता है कि तू मेरा पुत्र नहीं है? तू मेरा प्यारा पुत्र है। फिर भी जो काम मुझे ही करना चाहिए उसके लिए तुझे कैसे भेज सकता हू? अभी तक तुझे युद्ध सबधी पूरा अनुभव भी नहीं है।

पवनकुमार–क्या यह काम मुझसे नही हो सकेगा? क्या मैं इतना अधिक कायर हू? मै कायर हू या वीर हू, यह जानने के लिए ही मुझे युद्ध के लिए जाने दीजिए। अगर मैं वरुण को पराजित कर आऊगा तो आपकी प्रशसा होगी और मुझे भी आत्म सतोष होगा। अतएव आप मुझे युद्ध मे जाने की आज्ञा दे ही दीजिए।

पवनकुमार की बात सुनकर प्रह्लाद विचार करने लगे–पवन ठीक कह रहा है। अगर सचमुच ही पवन वरुण को पराजित कर देगा तो मेरी प्रशसा होगी और प्रतिष्ठा बढेगी। पवनकुमार को युद्ध का अनुभव होने के साथ–साथ आत्म सतोष भी होगा। यह विचार कर प्रह्लाद ने पवनकुमार को युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दे दी।

चीन देश के सबध मे सुना जाता है कि वहा पुत्र कोई उत्तम काम करता है तो उसके पिता का सम्मान किया जाता है और पदक भी पिता को ही दिया जाता है। यह पद्धति अनेक दृष्टियो से योग्य हे क्योकि जिन्हे पद प्रतिष्ठा की आवश्यकता होगी, वे अपनी सन्तान को योग्य बनायेगे ही। सन्तान प्राय माता पिता के अनुरूप ही बनती है। प्राय वीर पिता का पुत्र वीर बनता है और कायर का पुत्र कायर होता हे।

पवनकुमार रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने जा रहे हैं यह बात वायुवेग से नगर भर मे फेल गई। पवनकुमार जाने की तेयारी करने लगे। बसन्तमाला ने भी यह समाचार सुना। समाचार पाते ही वह अजना के पास दौडी आई ओर कहने लगी–बहिन! तुमने सुना है या नही कि राजकुमार पिता के बदले स्वय वरुण के साथ युद्ध करने जा रहे हैं? युद्ध करना सरल

काम नही है और निष्कारण अपने ऊपर युद्ध का भार ओढ लेना कोई बुद्धिमत्ता भी नही है। पिताजी युद्ध के लिए जाते थे तो उन्हे जाने देना था। पर राजकुमार ने तो उन्हे जाने से रोककर स्वय जाना तय किया है। मुझे तो यह काम ठीक नही जान पडता।

बसन्तमाला की बात के उत्तर मे अजना चाहती तो कह सकती थी कि राजकुमार वास्तव मे बुद्धिहीन हैं, लेकिन उसने अपने पति के सबध मे कोई भी निन्दात्मक बात नही कही। कहा तो यही कहा कि राजकुमार जो कुछ कर रहे हैं वे क्षत्रियो के लिए उचित ही है। क्षात्र धर्म के अनुकूल ही है। पिता के बदले पुत्र का युद्ध मे जाना अनुचित कैसे कहा जा सकता है? भले ही राजकुमार मुझसे रुष्ट हैं तथापि उनके उचित कार्य को मैं अनुचित नही कह सकती। मेरे ख्याल से राजकुमार ने पिता का भार अपने कधो पर लेकर ठीक ही किया है। पिता का भार हल्का करना सपूत का कर्त्तव्य है। राजकुमार अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए ही युद्ध मे जा रहे हैं।

बसन्तमाला बोली—राजकुमार को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान ही कहा है? वह कर्त्तव्य पालन करना जानते होते, तो क्या तुम्हारे प्रति अपना कर्त्तव्य नही पालते?

अजना—सखी! तू भूल कर रही है। जो पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालता है वह पत्नी के प्रति भी कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा। इससे विरुद्ध, जो पिता के प्रति कर्त्तव्य भ्रष्ट होगा वह पत्नी के प्रति अपना कर्त्तव्य केसे पाल सकेगा?

यहा जरा इस बात पर विचार कीजिए कि आजकल की सामाजिक दशा कैसी है? आज तो पत्नी के लिए पिता की अवहेलना की जाती है और पत्नी यह देखकर फूली नही समाती कि मेरे लिए पति अपने पिता की भी अवहेलना करते हैं। मगर ऐसे पति और पत्नी अन्त मे दु ख के ही भागी बनते है।

अस्तु, अजना के कथन के उत्तर मे बसन्तमाला कहने लगी—अगर आपकी दृष्टि मे राजकुमार का युद्ध के लिए जाना उचित है तो ठीक है। अब इस विषय मे मुझे कुछ भी नही कहना है। लेकिन सखी! एक बात की तरफ मै तुम्हारा ध्यान अवश्य खीचना चाहती हू, और वह यह है कि युद्ध करना कोई बच्चो का खेल नही है। युद्ध जीवन और मरण का खेल है। युद्ध मे जाने के बाद राजकुमार से आपका मिलाप होगा या नही, यह कौन कह सकता है? इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप राजकुमार से मिलने के लिए एक पत्र उन्हे लिखिए।

अजना—सखी। राजकुमार को पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है। कौन जाने, किस कारण वे मुझसे रुष्ट हैं? हो सकता है कि उनके रोष का कारण मेरा कोई पाप ही हो। जब मेरे पाप कर्म का अन्त हो जायेगा तब राजकुमार बिना ही किसी प्रयत्न के मुझे सेवा करने का अवसर देगे। इसके सिवाय, राजकुमार तो मेरे हृदय मन्दिर मे विराजमान ही हैं। अगर साक्षात मिलन न हो तो भी क्या हर्ज है?

बसन्तमाला—बहिन, तुम ठीक कहती हो फिर भी राजकुमार को एक पत्र लिख दो तो हानि ही क्या है? तुम अपने विचार जो मेरे सामने प्रकट करती रहती हो, वही विचार पत्र मे लिख डालो।

इस प्रकार बसन्तमाला ने राजकुमार के नाम एक पत्र लिखने का अत्यन्त आग्रह किया। सखी के अनिवार्य आग्रह को मानकर अजना ने राजकुमार पवन के नाम एक पत्र लिखा। उस पत्र का आशय ऐसा था कि आप पिता के ऊपर आ पडे बोझ को अपने कन्धो पर लेकर युद्ध करने जा रहे हैं, यह समाचार जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है। मेरे लिए यह गौरव की बात है कि आप अपने कर्त्तव्य का पालन करने जा रहे हैं। मैं आपके चरणो मे क्रमश प्रणाम करती हू और यह प्रार्थना भी कि आप मुझे भूल न जाए।

अजना ने सरल भाव से यह पत्र लिखा और बसन्तमाला के हवाले कर दिया। बसन्तमाला पत्र लेकर जब पवनकुमार के पास गई तो वह युद्ध की तैयारी मे लगे थे। उसने पवनकुमार के हाथ मे पत्र रख दिया। पवनकुमार ने पत्र ले लिया और लेते ही पूछा—मैं इस समय काम मे उलझा हू। ऐसे मोके पर तू किस का पत्र लेकर आई है? इतना कहकर पवन ने पत्र पढने के लिए उस पर निगाह डाली। पत्र के नीचे अजना का नाम देखकर वह लाल—पीला हो उठा। उसने तुरन्त ही पत्र को फाड कर फेक दिया। लाल—लाल आखे निकालकर उसने बसन्तमाला से कहा—ले, अपना पत्र वापिस लेजा। मैं जिसका नाम भी सुनना नही चाहता उसका पत्र इस समय पढने की मुझे फुर्सत नही है। अजना के पत्र की यह दशा देखकर और पवनकुमार की पूर्ण बात सुनकर बसन्तमाला रोती—रोती अजना के पास आई। आखिर तो दासी ही ठहरी। उसने अजना के सामने पवनकुमार विरुद्ध बहुत कुछ कह डाला। मगर अजना बडे ही धीरज के साथ सभी कुछ सुनती रही। उसने उत्तर मे केवल इतना कहा—राजकुमार ने पत्र फाड डाला तो कोनसी बडी बात हो गई? जब वे मेरे हृदय म बसे हुए ही हें ता वास्तव मे उन्हे पत्र लिखने की आवश्यकता ही नही थी। लेकिन तू मानी नही। तेरे आग्रह के कारण मेंने पत्र लिख दिया था। मगर इससे यह बात ता साफ

मालूम हो गई कि राजकुमार सत्यपिय है। उन्होने दिल मे किसी भी प्रकार का कपट न कर अपनी सत्यपियता का परिचय दिया है। मेरे लिए यह कम आनन्द की बात नही है।

अजना की बात सुनकर ताना मारती हुई बसन्तमाला बोली–ऐसे ही होते हैं सत्यपेमी। सत्य के पेमी क्या किसी को इस प्रकार कष्ट दे सकते है?

अजना–यह तो मेरी परीक्षा हो रही हे। जैसे मेघ चातक की परीक्षा करने के लिए गर्जना करता है, उसी प्रकार राजकुमार मेरी परीक्षा कर रहे हैं। परीक्षा के समय घबरा उठने और दु ख मानने की क्या आवश्यकता हे? मेरे लिए सन्तोष की बात यही है कि मेरे पतिदेव सत्यपेमी हैं। मेंने पत्र मे अपने भाव पकट कर दिये थे। और पत्र फाडकर उन्होने अपने भाव पकट कर दिये हैं। इसमे दु ख मानने की तनिक भी गुजाइश नही है। जब चातक जेसा पक्षी भी परीक्षा के समय दु ख नही मानता तो फिर मैं क्यो दु ख मानू?

इधर अजना बसन्तमाला को समझा बुझाकर शात कर रही थी कि उसी समय पवनकुमार के युद्ध पस्थान की घोषणा करने वाले बाजे बजने लगे। जैसे ही अजना को मालूम हुआ कि राजकुमार युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हैं उसने बसन्तमाला से कहा–पतिदेव युद्ध के लिए रवाना हो रहे हैं। इस समय उनके दर्शन कर लेना चाहिए और उन्हे शुभ शकुन भी बताना चाहिए।

मगर बसन्तमाला के दिल मे पत्र का अपमान करना तो काटे की तरह चुभ रहा था। उसने फिर वही बात दोहराई और दर्शन करने के लिए जाने का विरोध किया। फिर भी अजना ने उसकी बात अनसुनी कर दी और दर्शनार्थ जाने तथा शुभ शकुन दिखलाने का अपना पक्का इरादा रखा।

अजना सुन्दर वस्त्र पहनकर और हाथ मे दही का कटोरा लेकर एक जगह खडी हो गई जहा से पवनकुमार निकलने वाले थे। पवनकुमार ने देखा–कोई स्त्री शुभ शकुन दिखाने के लिए खडी है। पर जब वह नजदीक आये और उन्होने जाना कि यह अजना है तो उनके क्रोध का पार न रहा। क्रोध के आवेश मे मनुष्य कौनसा जघन्य काम नही कर बेठता? पवनकुमार ने दही के कटोरे मे एक लात जमाई। दही जमीन पर जा गिरा। इस प्रकार अजना का तिरस्कार करके पवनकुमार आगे बढा।

तिरस्कृत अजना भावनाओ के तूफान मे उडती– उडती अपने महल मे आ गई। उसने बसन्तमाला से कहा–बहिन! मेरे पाप कर्मो का उदय आया हे। मे किसी भी उपाय से अपने पति को सन्तुष्ट नही कर सकती। अब मेरे लिये एक ही उपाय शेष है और वह है अनशन व्रत धारण करना। ऐसे

पापकर्मों के फल से छुटकारा पाने का दूसरा कोई भी उपाय मेरी समझ मे नही आता। इसलिए अनशन व्रत धारण करके में अपनी आत्मा की शुद्धि करना चाहती हू। मैंने यह निश्चय कर लिया है।

बसन्तमाला बोली–सखी! युद्ध मे जाते समय तो शत्रु के साथ भी अच्छा व्यवहार किया जाता है। मगर तुम तो शुभ शकुन बताने गई और राजकुमार ने तुम्हारा उलटा अपमान किया। यह शकुन का अपमान नही है और न तुम्हारा ही। मेरी समझ मे तो राजकुमार ने अपना ही अपशकुन किया है।

बसन्तमाला की बात के उत्तर मे अजना कह सकती थी–वास्तव मे तेरा कहना सही है। जिन्होने मेरा अपमान किया है उनका भला कैसे हो सकता है? मगर अजना ने ऐसा कुछ भी न कहते हुए सिर्फ यही कहा–सखी! इस तरह पति के अहित की बात मत कह। मेरा रोम–रोम सदा सर्वदा उनका हित ही चाहता है। उन्होने जो अपमान किया है, वह मेरा नही वरन् कर्म का अपमान किया है। कर्म का अन्त धैर्य धारण करने से ही हो सकता है दूसरे का अहित चाहने से नहीं। इसलिए मैं हृदय से यही चाहती हू कि पतिदेव विजयी हो, उनका कल्याण हो और मेरा दिखलाया हुआ शुभ शकुन सफल हो।

अजना की बात बसन्तमाला को नही रुची। वह जरा तेजी से कहने लगी–जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है उसका कल्याण चाहने से लाभ ही क्या है?

अजना–दूसरे का कल्याण चाहने मे तुझे चाहे कोई भी लाभ दिखाई न देता हो पर मैं तो अनेक लाभ देखती हू। मेरे धर्म गुरु ने मुझे समझाया है कि अपमान जनक स्थिति सहन करके भी दूसरे का भला चाहने मे हानि नही बल्कि लाभ ही लाभ है। अपनी आत्मा काम क्रोध आदि ओदयिक भावो मे किसी भी स्थिति के कारण न पहुच पावे तो आत्मा का लाभ ही हे। जब पति ॢल युद्ध करने गये हें तो मेरे लिए यही उचित होगा कि में यहा सूक्ष्म युद्ध रू। अर्थात्–काम, क्रोध आदि शत्रुओ के साथ घमासान करू।

बसन्तमाला अजना की बात से कुछ प्रभावित हुई। फिर भी कहने ।।–सखी, तुम्हारी बाते तो बडी अनोखी हैं।

अजना–यह भी अच्छा ही हुआ कि अशुभ मे से भी तेरे लिए कुछ शुभ परिणाम निकला। जो बात तू अभी तक नही समझती थी अव समझ गई।

पुनर्मिलन

इधर अजना जब बसन्तमाला से पति का हित चाहने के विषय मे वार्तालाप कर रही थी तब पवनकुमार मानसरोवर पर पडाव डालकर अपने तम्बू मे सो रहे थे। रात्रि का समय था। पवनकुमार निद्रा के अधीन हो चुके। अचानक एक चकवी का करुण विलाप उनके कानो मे पडा। पवनकुमार की निद्रा भग हो गई। उन्होने आखे खोलकर देखा। मालूम हुआ किसी ने चकवा को सताया है और इसी कारण चकवी इतना करुण क्रन्दन कर रही हे। चकवी का यह दिल दहला देने वाला करुण क्रन्दन सुनकर पवनकुमार विचारने लगे–मै समझता था कि स्त्री जाति मे निष्ठुरता ही होती हे। परन्तु देखता हू कि पक्षियो की स्त्री जाति मे भी पुरुष के प्रति जब ऐसा पेम हे तो फिर विवेकशील मानव समाज की स्त्री जाति मे पुरुषो के प्रति कितना प्रेम होगा? इस विषय मे अपने मित्रो के साथ विचार–विनिमय करना ठीक होगा।

पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त को बुलाया। प्रहस्त के आने पर पवनकुमार कहने लगा–भाई! मेरी नीद उचट गई है। आज हृदय मे न जाने किस प्रकार का विचार मन्थन हो रहा है।

प्रहस्त–आपने बडा अनुचित कार्य किया है। ऐसी स्थिति मे नीद आ भी कैसे सकती है?

पवन–ऐसा कौनसा अनुचित काम मैंने कर डाला है कि नीद ही मेरे लिए हराम हो जाए।

पहस्त–वह सती आपको शुभ शकुन बताने आई और आपने बिना कारण ही उसका तिरस्कार कर दिया यह क्या कोई अच्छा काम है? उसी समय मेरे दिल को सख्त चोट पहुची थी। पर कहू तो किस से कहू? आज कहने का अवसर मिला है तो कह रहा हू।

पवनकुमार–क्या तुम्हे नही मालूम है कि स्त्रिया कितनी क्रूर होती हैं?

प्रहस्त–पुरुष भी क्रूर होते हैं। आप जैसे समझदार और उच्च श्रेणी के लोग भी अपने पौरुष का क्या दुरुपयोग नही करते? आपके प्रति अजना देवी का कितना प्रेम हे? इसी प्रेम के कारण वह आपके घर मे पडी है और तिरस्कार तथा कष्ट भोग रही है। क्या वह अपने पिता के घर नही जा सकती थी? आपकी तो उनके प्रति सद्भावना तक नहीं है और वह आपके प्रति पेमभाव रखती हैं। वह अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिए आपको शुभ शकुन दिखाने आई और आपने उनका घोर तिरस्कार किया। क्या वह क्रूरता नही हे?

पवन—तुम्हारा कहना सही है। मगर मिश्रकेशी दासी अजना के सामने परपुरुष की प्रशसा कर रही थी और अजना उसे चुपचाप सुन रही थी तब क्या तुम मेरे साथ नही थे।

प्रहस्त—बस, इस मामूली सी बात के लिए ही आप अजना जैसी सती पर रुष्ट है? अजना धर्म को पहचानती है। जब उसने विद्युत्प्रभ के विषय मे यह सुन रखा था कि वह अठारह वर्ष की उम्र मे दीक्षा लेगे और छब्बीस वर्ष की उम्र मे मोक्ष पधार जायेगे, तो अजना जैसी धर्मशील उन चर्म शरीरी की प्रशसा के विरोध मे क्या कह सकती थी? अगर हृदय मे आपके प्रति कोई दुर्भावना होती तो क्या वह इतने दिनो तक आपके यहा रहकर विपत्ति झेलती रहती? वह अपने पिता के घर नही चली जाती? इसके अतिरिक्त घर पर आये व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए या अपमान करना चाहिए? आपकी बातो से तो यही पता चलता है कि आपको अजना के विषय मे भ्रम हो गया है। वास्तव मे वह सती नारी है। उनके हृदय मे आपके प्रति असीम प्रेम है।

प्रहस्त की युक्तियुक्त बात सुनकर पवनकुमार गहरे विचार मे डूब गया। उनके विचार क्षेत्र की कुछ—कुछ शुद्धि तो हो ही चुकी थी। अब प्रहस्त की बातो से उसका हृदय अधिक साफ हो गया। हृदय की कठोरता सरलता एव कोमलता के रूप मे परिणत हो गई। चकवी की घटना के विषय में वह सरस भाव से सोचने लगे—चकवा, चकवी को कुछ देता नहीं है। फिर भी चकवी के हृदय मे उसके प्रति ऐसा प्रेम है कि चकवा के दु ख से दु खी हो रही है और करुण विलाप कर रही है। अजना के हृदय में अगर मेरे प्रति प्रेम होगा तो वह भी इसी भाति दु खी हो रही होगी। अभी तक तो वह भावी सुख की आशा से जीवित रही और जैसे तैसे करके दु ख के दिन काटती रही है। लेकिन आते समय मैंने उसका जो तिरस्कार कर दिया है उस तिरस्कार के बाद वह किस आशा पर जीवित रह सकेगी? लेकिन अब मुझे करना क्या चाहिए? अगर लोटकर अजना के पास जाता हू तो पिताजी और दूसरे लोग कहेगे कि जो स्त्री मोह मे पडा है, वह युद्ध मे जाकर क्या खाक विजय प्राप्त करेगा? अगर नही जाता हू तो मुझे भय है कि दु खो से ऊब कर अजना कही अपने प्राण न खो बैठे। इस दुविधा मे में क्या करू?

आखिर पवनकुमार ने अपनी दुविधा प्रहस्त के सामने रख दी। प्रहस्त ने विचार कर कहा—इस विषय मे आप तनिक भी चिन्ता न करे। इस समय हमारे सामने दो मुख्य कार्य हें। इन दोनो मे से किसी एक का त्याग करना पडेगा।

परिच्छेदो हि पाण्डित्य, यदापन्ना विपत्तय ।
अपरिच्छेद कर्तृणा, विपद स्यु पदे पदे ।।

–हितोपदेश

ऐसे दुविधा के अवसर पर मनुष्य को विवेक से समझ से काम लेना चाहिए। जो विवेक से काम नही लेता, उसे पद–पद पर सकटो का सामना करना पडता है।

पवनकुमार बोले–अच्छी बात है। इसके निर्णय का भार मैं तुम्हारे ऊपर ही छोडता हू। बताओ इस स्थिति मे क्या करना चाहिए?

प्रहस्त–हम लोग रातोरात जाकर लौट सकते हैं। किसी को पता ही नहीं लगेगा कि आप कहा गये हैं। सुबह होते–होते तो यहा आ पहुचेंगे। आपके मिलने से अजना देवी को सन्तोष भी होगा और न बदनामी होगी न युद्धकार्य गडबड मे पडेगा।

पवन–रात ही रात मे जाकर किस प्रकार लौट सकेंगे?

प्रहस्त–हम लोग विद्या जानते हैं। विमान का साधन भी आपके पास है। विमान विद्या अथवा ऊपर उडने की कला दूसरो का सहार करने के लिए नही है। कठिनाई के समय ही उसका सदुपयोग होता है।

आज लोग हवाई जहाज देखकर आश्चर्य करते हैं। किन्तु प्राचीन काल मे भी आर्यावर्त्त मे विमान चलते थे, यह बात इस कथन से तथा अन्य कथाओ से भी स्पष्ट मालूम हो जाती है। पहले विमान न होते तो कथाओ मे उनका उल्लेख कैसे आ सकता था? आज दिखाई देने वाले विमानो का तो अभी–अभी आविष्कार हुआ है, परन्तु कथाओ मे आकाशगामी विमानो की बात तो बहुत पहले ही लिखी जा चुकी है।

पुरानी स्मृतिया पवनकुमार के अन्त करण मे जाग उठीं। वह सोचने लगा–यही वह मानसरोवर है जहा मेरा विवाह सस्कार हुआ था। और आज, इतने वर्षो के बाद इसी सरोवर पर यह चकवी मानो कोई अस्फुट सन्देश मुझे सुना रही है। उस दिन का विवाह तो नाम मात्र को ही था, असली विवाह तो मेरा आज हो रहा है। दैव की गति कितनी अनोखी है?

पवनकुमार ने अजना के पास जाने का पक्का सकल्प कर लिया। चकवी इस सकल्प मे निमित्त कारण बनी। मानो चकवी के रूप मे कोई अदृश्य शक्ति ही पवनकुमार को अजना के प्रति आकर्षित कर रही थी। अदृश्य शक्ति अपना प्रभाव किस प्रकार डालती है, यह दिखाई नहीं देता फिर भी वह बडी प्रबलता के साथ आप अपना कार्य करती रहती है। अदृश्य शक्ति

किस तरह कार्य करती है, यह बताने के लिये यहा एक प्रासगिक घटना बतलाई जाती है—

एक मजदूर था। मजदूरो की स्थिति बडी बेढगी होती है। अगर वह किसी दिन मजदूरी न करे तो उसे भूखा रहना पडता है। खास कर वर्षाऋतु मे तो मजदूरो की हालत और भी खराब हो जाती है। इस ऋतु मे उन्हे बराबर काम नहीं मिलता। एक दिन जोरो की वर्षा हुई और इस कारण उस मजदूर को कोई काम नहीं मिला। वह इसी चिन्ता मे बैठा था कि कल क्या होगा? इतने मे एक सेठ उसके घर आया। उसने कहा—यह दो हजार की थेली है। अगर अमुक गाव मे, अमुक के घर पहुचा आओ तो आठ आना मजदूरी दी जाएगी। मजदूर ने थैली ले ली और नियत जगह पर पहुचाना स्वीकार कर लिया।

उसी मजदूर के घर के पास एक मकरानी पठान रहता था। उसने सोचा—यह रुपयो की थैली लेकर पर—गाव जा रहा है। आज लूटने का अच्छा अवसर मिला है। रास्ते मे मजदूर के प्राण लेकर रुपया लूट लेना कोई कठिन बात नही है। यह सोचकर पठान ने कहा मुझे भी किसी काम से उस गाव जाना है।

मजदूर ने कहा—चलो, एक से दो भले। अच्छा हुआ कि तुम्हारा साथ मिल गया।

पठान ने अपनी बन्दूक ले ली। उसने सोचा—इसी बन्दूक से मजदूर का काम तमाम कर दूगा और उससे रुपया ले लूगा। बेचारे भोले मजदूर को पठान की बदनीयत का पता नहीं था। दोनो रवाना हुए। जब वे रास्ते मे जा रहे थे तो अचानक घनघोर घटा छा गई ओर मूसलाधार पानी बरसने लगा। दोनो के कपडे पानी मे भींग गए। दोनो एक सघन पेड के नीचे जा खडे हुए। वर्षा होते देख मजदूर कहने लगा लोग परमात्मा—परमात्मा चिल्लाते हैं पर परमात्मा है कहां? अगर सचमुच परमात्मा होता तो हम जेसे गरीबो के ऊपर दया न करता। देखो न, मेरे सारे कपडे पानी से तरबतर हो गए हैं और दूसरे कपडे मेरे पास नही हैं।

मजदूर की बात सुनकर पठान ने कहा—तुम यही समझलो कि खुदा ने तुम्हारे ऊपर आज बडी मेहरबानी की हे।

मजदूर—पानी बरसने मे मेरे ऊपर खुदा की क्या मेहरबानी हुई?

पठान—देख यह बन्दूक। मैं इसलिये लाया था कि रास्ते म तुम्हे इससे ठिकाने लगा दूगा ओर तुम्हारे पास जो रुपये हैं छीन लूगा। मगर

कुदरत को तुम्हारी मोत मजूर नही थी। मूसलाधार पानी [illegible]
मे डाला बारूद गीला हो गया। अब यह बन्दूक बेकार है। [illegible]
कुदरत की मेहरबानी से बच सका हे। पानी न बरसा होता तो [illegible]
बन्दूक के शिकार हो गये होते और तुम्हारे पास के रुपये [illegible]
तुम चाहो तो मुझसे बदला ले सकते हो। मगर सच्ची बात मैंने [illegible]

मजदूर पठान की बात सुनकर पसन्न हुआ। [illegible]
उसने नया जीवन पा लिया हो। वह अपने पाणो की रक्षा के लिए [illegible]
को धन्यवाद देने लगा। वह सोचने लगा—मैं बाहर ही बाहर [illegible]
कौन जानता है कि भीतर ही भीतर कुदरत की करामात [illegible]
दु ख का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मजदूर [illegible]
को कोस रहा था।

कहने का आशय यह है कि लोग तात्कालिक कष्ट से [illegible]
हैं और धैर्य छोड बैठते है। वे यह नहीं सोचते कि इस कष्ट के [illegible]
शक्ति क्या काम कर रही है? ज्ञानीजनो का कथन है कि [illegible]
भरोसा रखो। जैसे तुम्हे शक्कर की मिठास पर अटल विश्वास [illegible]
भलीभाति और निश्चित रूप से मानते हो कि शक्कर मीठी ही होती है [illegible]
नहीं हो सकती। इसी प्रकार ज्ञानीजनो के कथन पर भी अटल [illegible]
कुछ लोग ऐसे हैं जो साधारण लोगो की बात पर तो विश्वास कर लेते हैं [illegible]
'प्राण जाए पर वचन न जाई' इस प्रकार की दृढ प्रतिज्ञा वाले महात्माओं की
बात पर विश्वास नही करते। यह एक गम्भीर भूल हे। महात्माओ का बताया
मार्ग सदा कल्याणकारी ही होता है। उनके बताए मार्ग पर चलने मे कभी
अविश्वास मत करो। एक मनुष्य ने पूज्य श्रीलालजी महाराज से कहा—महाराज!
जैनो की अहिसा ने भारत को बडी हानि पहुचाई हे। इस अहिसा ने देश को
कायर बना दिया है। पूज्यश्री ने इस आरोप के उत्तर मे कहा—मालूम होता
है आपने अहिसा ओर सत्य का आचरण ही नहीं किया है और इसी कारण
आप ऐसा कहते हैं। अहिसा और सत्य का आचरण करने वाला तो वीर ही
होगा। कायर इनका आचरण नही कर सकता। कायर मे इतना सामर्थ्य ही
नही होता कि अहिसा और सत्य के आचरण मे दृढ रह सके। इसलिए
अहिसा—धर्म वीरो का धर्म कहलाता हे। जिन्होने अहिसा और सत्य का
अभ्यास किया हे ओर जिन्हे उन पर दृढ विश्वास हो गया है वे अपने शरीर
पर भी ममता नही रखते।

तुम भी इस प्रकार की वीरता धारण करो और तुमने जो सत्य धर्म स्वीकार किया है, उस पर विश्वास रक्खो। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।

सती अजना के हृदय मे धर्म के प्रति दृढ विश्वास था। इस विश्वास के प्रताप से कष्ट के समय अदृश्य शक्ति उसे धीरज बधाती थी। बाईस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करने की शक्ति भी धर्म के प्रति दृढ विश्वास होने के कारण ही सती के जीवन मे उत्पन्न हो सकी थी। ससार मे धर्म की शक्ति अपूर्व और अजेय है। धर्म की शक्ति मे भी अद्भुत आकर्षण शक्ति होती है। पवनकुमार को अजना के प्रति आकर्षित करने मे भी धर्म की अदृश्य शक्ति काम कर रही थी।

अन्तत पवनकुमार ने विमान मे बैठकर अजना के महल मे जाने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार दोनो विमान मे बैठकर अजना के महल मे आ पहुचे।

प्रहस्त ने पवनकुमार से कहा–जरा खडे रहो और देखो कि यहा क्या बाते हो रही हैं? चुपचाप सुनो। स्त्रियो के भाव उनकी एकान्त मे होने वाली बातचीत से मालूम हो सकते हैं। अभी आप मेरे कहने से यहा आये हैं मगर मेरी बात पर विश्वास मत कीजिये। यहा की बातचीत सुनकर अजना देवी के भाव जान लीजिये। उसके बाद वह आपको अपनाने योग्य जान पडे तो अपना लेना अन्यथा न अपनाना। पर आप स्वय परीक्षा करले यह अच्छा होगा। परीक्षा और विश्वास के बाद जो प्रेम किया जाता है वही प्रेम स्थायी होता है।

पवनकुमार को प्रहस्त की बात उचित मालूम पडी। वह दरवाजे पर खडे होकर अजना और बसन्तमाला की बातचीत सुनने लगे।

बसन्तमाला अजना से कुछ कह रही थी–सखी! राजकुमार ने तुम्हारा कैसा घोर अपमान किया है? उनसे अब और क्या आशा की जा सकती है?

अजना ने कहा–सखी! मुझे पति के काम की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए वरन् धर्म का पालन करने का ही ध्यान रखना चाहिए। मेरे गुरु ने धर्म का स्वरूप इस प्रकार सिखाया है–

णो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा णो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा नो कित्ता वण्ण सद्द सिलोगतट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।

अर्थात–इसलोक परलोक सबधी लाभ की इच्छा से स्वाद कीर्ति आदि की आशा से तप नही करना चाहिए। निष्कामभाव से केवल निर्जरा के लिये ही तपश्चरण करना चाहिए। गुरुदेव का यह आदेश है। इस आदेश के अनुसार ही मुझे निष्काम भाव से धर्म का पालन करना है।

बसन्तमाला ने पूछा–सखी। धर्म का कैसे पालन करोगी?

अजना ने कहा–

सत्यव्रत धार मन मोह ते निवार कर
गिरि की गुहा मे तन तप मे तपावेगे।
दया दिल लावेगे जीव न सतावेगे
रीत न दबावेगे न काया कलपावेगे।
माणिक की जोति इस जोति मे जुटावेगे
और आनन्द बढावेगे अनन्त सुख पायेगे।
दुनिया मे फेरि कमी आवेगे न जावेगे,
कर्म को खपावेगे अमर पद पावेगे।

यह एक कवि की कविता है। इस कविता मे जो कल्पना की गई है मानो वह अजना के भावो को ही व्यक्त कर रही है।

अजना बसन्तमाला से कहती है– सखी मेरे गुरु ने बतलाया है कि आत्मा को शुद्ध रखने से दु ख भी सुख के रूप मे परिणत हो जाता है और फिर किसी भी प्रकार का कष्ट शेष नहीं रहता। इसलिये मैं गुरु की आज्ञा के अनुसार आत्मा को शुद्ध करने का प्रयत्न करूगी। आत्मा को शुद्ध करने के लिए मैं सबसे पहले सत्यव्रत को अगीकार करूगी। मेरे लिए तो पतिव्रत धर्म को स्वीकार करना ही सत्यव्रत को स्वीकार करने के बराबर है।

पुरुष चाहते हैं कि स्त्रिया पतिव्रत धर्म का पालन करे परन्तु उन्हे क्या पत्नीव्रत का पालन नही करना चाहिए? पतिव्रत पत्नी के लिए और पत्नीव्रत पति के लिये कल्याणकारी है। पतिव्रत का माहात्म्य कितना ओर कैसा है यह बतलाने के लिये अनेक उदाहरण मौजूद हैं। पतिव्रत के प्रभाव से सीता के लिये अग्नि भी ठण्डी हो गयी थी। सीता ने पतिव्रतधर्म का पालन करने के लिये कितने अधिक कष्ट सहन किये थे? वह चाहती तो राम ओर कौशल्या का आग्रह मानकर घर मे बेठी रह सकती थी ओर कष्टो से बच सकती थी। मगर पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिये उसने कष्ट सहना ही स्वीकार किया। इसी प्रकार पुरुषो को भी स्त्रियो के सुख–दु ख के भागीदार बनना चाहिये ओर स्त्रियो की ही तरह एक पत्नीव्रत का पालन करना चाहिये।

स्त्रियो के लिये जैसे पतिव्रत धर्म है उसी प्रकार पुरुषो के लिये पत्नीव्रत ही धर्म है।

अजना ने वसन्तमाला से कहा–पति ने मेरा अपमान किया है इसलिये मुझे अपने मन मे दुर्भाव लाना चाहिये यह उचित नहीं है। अपमान का बदला अपमान से नही किन्तु प्रेम से लेना चाहिए। दूसरे के हृदय को जीतने का यही सरल मार्ग है। मैं अपमान का बदला प्रेम से लूगी। प्रेम ही किसी के हृदय पर विजय प्राप्त करने का सबल साधन है। मैं मोह–वासना को जीतकर जगल मे, पर्वत की गुफा मे जाकर अहिसापूर्वक तप का आचरण करूगी और इस तरीके से कर्मों का नाश करूगी। पतिदेव ने रुष्ट होकर मुझे अपने जीवन का सुधार करने का अवकाश दिया है। उन्होने सचमुच मेरा उपकार किया है।

अजना का वह सब कथन सुनकर पवनकुमार बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे–अजना की भावना कितनी विशुद्ध और दृढ है।

प्रहस्त ने हास्य के साथ कहा–अब तो विश्वास हो गया?

फिर प्रहस्त ने आवाज देकर कहा–द्वार खोलिये।

पुरुष की आवाज सुनकर अजना कहने लगी–कौन है यह दुष्ट जो रात्रि के समय यहा आया है और द्वार खोलने के लिए कहता है? जान पडता है, राजकुमार की अनुपस्थिति मे हमे असहाय समझकर कोई आया है। लेकिन न हम असहाय हैं और न अबला ही। सुबह होते ही श्वसुर से कहकर इसकी अक्ल ठिकाने लाऊगी।

यद्यपि अजना के शब्द कठोर और अप्रिय थे फिर भी पवनकुमार को वह बडे ही प्रिय लगे।

प्रहस्त ने धीरे से कहा–आप जरा भी सन्देह मत कीजिये। हम कोई पराये नहीं हैं। राजकुमार पवन के साथ मैं उनका मित्र प्रहस्त हू।

अजना बोली–आप ठीक कहते होगे पर खातिरी किये विना द्वार नही खोल सकती। इतना कहकर अजना ने एक छोटी–सी खिडकी स देखा तो पतिदेव उपस्थित थे।

इस प्रकार अजना को खातिरी हो गई कि द्वार खटखटान वाल पतिदेव और उनके मित्र प्रहस्त ही हैं तो उसने द्वार खोल दिया। पवनकुमार ने भीतर प्रवेश किया। अजना ने यथोचित नमन करके कहा–आज आपन मर ऊपर बडी कृपा की है। मुझ जेसी अभागिनी और आप जेसा दयालु और कोन होगा? मैं बडी अपराधिन हू। मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

वास्तव मे अजना ने कोई अपराध नही किया था। अपराध तो पवनकुमार का ही था। फिर भी अजना अपना ही अपराध मान रही है और उसके लिये क्षमायाचना भी कर रही है। यह उन लोगो के लिए जीवित सबक है जो दूसरो का ही अपराध देखते हैं वास्तव मे दूसरे के बदले अगर अपना अपराध माना जाय तो किसी भी प्रकार का झगडा ही न रहे।

अजना अपराध मानकर पवनकुमार से क्षमा मागने लगी। पवनकुमार अजना की यह नम्रता देखकर पसन्न हुए। उन्होने कहा–अपराध तुम्हारा है या हमारा?

अजना–मेरी माता ने मुझे अपना ही अपराध मानने की शिक्षा दी है। उन्होने पतिदेव की सेवा का यही मन्त्र मुझे सिखलाया है।

आजकल के लोग दूसरो को वश मे रखने को मन्त्र–तन्त्र सीखने के लिये तैयार रहते हैं। वे स्वय दूसरे के वश मे होकर उसको अपने वश मे करने का मत्र नहीं सीखते। अगर हम दूसरे को वश मे करना चाहते है तो सरल उपाय यही है कि हम स्वय दूसरे के वश मे रहना सीखे।

अजना कहती है–मेरी माता ने पति को वश मे करने की दूसरी शिक्षा इस प्रकार दी है–

सानुकूल्यस्य सकल्प प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरण तथा।। आत्मनिक्षेप कार्पण्य षड्विधा शरणागता।

आशय यह है–अगर तू पति के शरण मे रहना चाहती है और पति को अपने अधीन रखना चाहती है तो तुझे जीवन मे छ बातो का अमल करना चाहिये। सर्वप्रथम पति को जो अनुकूल हो, वह करने का सकल्प करना और जो प्रतिकूल हो उसको त्याग देना। पति को आत्म समर्पण करना, पति की रक्षा करना पति की गोपनीय बात को गुप्त रखना और पति के समक्ष दीनता रखना। इन छ बातो पर अमल करने से पति को ही नही परमात्मा को भी वश मे किया जा सकता है। यह बात मेरी माता ने मुझे सिखाई है।

परमेश्वर को किस प्रकार वश मे किया जाय और किस प्रकार परमेश्वर की शरण मे रहना चाहिये। इस सबध मे भक्त जन पतिव्रता स्त्री का ही उदाहरण दिया करते हैं। इसलिये स्त्रियो को इन उपायो द्वारा अपने पति की शरण मे जाना चाहिये अथवा पति को अपने अधीन बनाना चाहिए। विवाह के समय वर और वधू एक सकल्प करते हैं जिसके अनुसार वर के लिये शेष समस्त स्त्रिया माता और बहिन के समान हैं तथा वधू के लिये शेष पुरुष पिता और भाई के समान हैं। इस प्रकार का सकल्प आज भी किया जाता है, पर

उसका पालन बराबर नही होता दीखता। आज तो पवित्र सकल्प करना एक रूढि हो गई है।

अजना कहती है—जब आप मुझे दर्शन नहीं देते थे तब भी मैं यही सोचती थी कि जैसे मैंने सकल्प किया है उसी प्रकार आपने भी सकल्प किया है। विवाह के समय किये हुए पवित्र सकल्प का भलीभाति पालन करना पति और पत्नी दोनो का कर्त्तव्य है। मेरा यह साधारण कर्त्तव्य है कि जो आपको अनुकूल हो, वही करू और जो प्रतिकूल हो, वह काम न करू। अगर आपने मायके जाने के लिये कहा होता तो मैं वहा जा सकती थी। मगर जब आपने इस विषय मे कुछ भी नहीं कहा तो मैं कैसे जाती? जिस खिडकी के द्वारा मैं आपका दर्शन करती थी, वह भी आपने जब बन्द करवादी तो मैंने यही सोचा कि पतिदेव मेरे हृदय मे ही विराजते हैं तो फिर दर्शन करने की आवश्यकता ही क्या है? आपने जो किया ठीक ही किया है। मेरे विचार मे तो वही सच्चा पति है जो पावन अर्थात् पवित्र बनाता है। मुझे विश्वास है कि आप ही मेरी रक्षा करेगे। भले ही आप मेरे शरीर का तिरस्कार करे मगर मेरे धर्म की रक्षा तो आप करेगे ही यह मुझे विश्वास है। इसी विश्वास के बल पर मैं आज तक जीवित रही हू और इसी विश्वास के प्रभाव से मुझे आपका दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

अजना ने सकट के समय धर्म की रक्षा की तो आखिर उसकी भी रक्षा हुई। जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। कहा है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित ।

अर्थात्—जो धर्म का नाश करता है धर्म उसका नाश करता है ओर जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता हे।

इस प्रकार विश्वास रखकर धर्म का पालन करने से अवश्य ही कल्याण होता है। धर्म कल्याण—मन्दिर की पहली सीढी है।

अजना ने फिर कहा—मेरी माता ने मुझे नम्र रहने का भी मत्र सिखलाया है। दूसरे के हृदय को जीतने की चाबी नम्रता ही है। स्त्री का धर्म है कि वह पति के सामने नम्र रहे और पर—पुरुष के सामने कठोर। आप प्रत्यक्ष ही देख चुके हैं कि मैं आपके सामने कितनी नम्र और दूसरे के समक्ष कितनी कठोर हू।

अजना की माता ने पति को वश मे करने और पति के शरण म जान के जो उपाय बतलाये हैं परमात्मा को वश मे करने ओर परमात्मा के शरण मे जाने के भी वही उपाय हें। अगर तुम परमात्मा के शरण जाना चाहत हा

पडना पडे। आपने यहा पधारने की कृपा की हे तो कृपा करके कुछ साक्षी भी दे जाइये।

पवनकुमार--तुम्हारा कहना ठीक हैं, लेकिन मैं अपने यहा आने की घटना को अगर प्रगट कर दूगा तो भय है कि लोग मेरी निन्दा करेगे। और यदि कोई साक्षी नही देता तो सम्भव है कि तुम्हे सकट मे पडना पडे। मेरी निन्दा भी न हो और तुम्हे सकट मे भी न पडना पडे इसके लिए मैं अपनी अगूठी तुम्हे देता हू। आवश्यकता पडने पर साक्षी के रूप मे इस अगूठी को काम मे लाना।

कलंक का आरोप

भवितव्यता प्रबल होती है। इसी कारण अजना ने पवनकुमार का कथन मानकर अगूठी ले ली। पवनकुमार अगूठी देकर रातो--रात प्रहस्त के साथ विमान पर बैठकर अपने पडाव पर आ पहुचा।

अजना गर्भवती हुई। उसे गर्भवती जानकर लोगो मे कानाफूसी होने लगी कि राजकुमार ने तो अजना का परित्याग कर दिया है फिर वह गर्भवती कैसे हो गई? राजकुमार युद्ध पर गये हैं। इसलिए अवश्य ही अजना ने दुराचार का सेवन किया है। लोगो की कानाफूसी धीरे--धीरे अजना की सास केतुमती के कानो तक पहुच गई। पहले तो केतुमती ने कहा--मेरी बहू ऐसी है ही नही। वह बडी सुशीला है। लेकिन दूसरी स्त्रियो ने खातिरी के साथ कहा कि अजना वास्तव मे गर्भवती है। तब केतुमती बोली--मैं अभी बहू को बुलाती हू ओर सारी बात पूछती हू।

केतुमती ने अजना को बुलाने के लिए एक दासी भेजी। सास का बुलावा पाकर पहले तो अजना को प्रसन्नता हुई। उसने सोचा यह मेरा सौभाग्य है कि सासजी ने मुझे याद किया हे पर दूसरे ही क्षण उसे नया विचार आया। सोचने लगी, सासूजी ने अचानक ही बुला भेजा हे तो इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए। मगर अजना विचारशील और धेर्यवती थी। उसने सोचा--जब मैं सच्ची हू तो मुझे डर ही क्या हे? साच को क्या आच? सास के पास जाने मे भय या सकोच करने की कोई आवश्यकता ही नही हे।

इस प्रकार विचार कर अजना धेर्य के साथ सास के पास पहुची। यथोचित प्रणाम करके वह नीचे बैठ गई। अजना को देखते ही सास केतुमती समझ गई कि अजना गर्भवती हे। केतुमती को क्रोध चढ आया। उसन क्रूर स्वर मे अजना से कहा--बहू! तूने यह क्या काली करतूत कर डाली हे? मेरा

पुत्र तो तेरा मुह भी नही देखता। फिर तू गर्भवती कैसे हो गई? तूने अपनी काली करतूत से मेरे कुल को कलक लगा दिया है। अभी तक मैं समझती थी कि तेरे जैसी सरल बहू का त्याग करके पवनकुमार ने भूल की है। मगर तेरे लक्षण अब जान पडे हैं।

अजना समझ गई कि सास को मेरे विषय मे भ्रम उत्पन्न हो गया है। अजना ने सास का भम मिटाने के लिए कहा–आप मुझे क्षमा कीजिए और मुझ पर विश्वास रखिए। आपका कोध उचित नही है क्योकि मेरे पेट मे जो गर्भ है वह किसी दूसरे का नही, आपके पुत्र का ही है। आपके पुत्र विद्या के बल से रात के समय लौटकर आये थे। इस सबध मे मेरी दासी साक्षी है और उनकी दी हुई अगूठी भी साक्षी है। इतने से भी अगर आपको सन्तोष न हो तो अपने पुत्र को आ जाने दीजिए। उनसे पूछकर अपना सन्देह निवारण कर लेना।

केतुमती ने कहा–यह तेरी ही दासी है और स्वाभाविक है कि यह तेरा ही पक्ष ले। रही अगूठी सो वह कहीं यो ही मिल सकती है। ऐसी अवस्था मे पबल साक्षी के बिना तेरे ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता। मुझे लगता है कि तूने दुराचार का सेवन किया है। नगर भर मे इसी बात की चर्चा हो रही है। राजकुमार के लौटने तक ऐसी स्थिति मे तुझे घर मे कैसे रखा जा सकता है? कुल को कलकित करने वाली स्त्री को घर मे रखकर क्या और अधिक कलकित करना है?

इस पकार केतुमती अजना पर अत्यन्त कुपित हुई। अजना समझ गई कि इस समय सास के सन्देह को मिटाना मेरे वश की बात नहीं है। इसलिये अब कुछ अधिक कहना वृथा है।

अजना चुप हो रही। उसकी चुप्पी से केतुमती का सन्देह और बढ गया। उसने समझा–गर्भ मेरे पुत्र का नहीं है। अजना झूठ बोलकर अपना पाप छिपा रही है। आखिर उसने अजना को घर से निकल जाने का आदेश दे दिया। इसके बाद वह उठी और राजा प्रह्लाद के पास पहुची। स्त्रियो के बहकावे मे आकर पुरुष आवेश मे आ जाते हैं और कैसे–कैसे अन्याय कर बैठते है इसके अनेक उदाहरण इतिहास के पन्नो पर आज भी मौजूद है।

केतुमती ने राजा प्रह्लाद को अजना सबधी सारा वृतान्त सुनाकर कहा–बहू ने निष्कलक कुल को कलकित कर डाला है। ऐसी कुलटा बहू को घर मे रखने से कुल को अधिक कालिमा लगेगी और दुराचार का प्रचार होगा। इसलिए उसे घर से निकाल बाहर कर देना ही उचित है।

केतुमती ने इस प्रकार प्रह्लाद के कान भर दिये। राजा प्रह्लाद के लिये उचित तो यह था कि वह निष्पक्ष होकर सत्य–असत्य का निर्णय करता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया।

प्रह्लाद बोला–ऐसा है तो अब क्या करना चाहिए?

केतुमती–इस समय एक ही उपाय है कि अजना को घर से निकाल कर उसे मायके भेज दिया जाय। किसी होशियार आदमी के साथ उसे भेजना होगा ताकि वह ऐसी जगह उसे छोड आवे कि अजना अकेली अपने मायके पहुच सके। ऐसा करने से अपना कुल कलक से बच जाएगा और प्रजा मे दुराचार भी नही फैलेगा।

निर्वासन

राजा प्रह्लाद ने केतुमति की बात स्वीकार करली। उसने एक विश्वासपात्र और चतुर आदमी को बुलाया। सब कुछ समझाकर उसने कहा–अजना को रथ मे बिठलाकर कहीं ऐसी जगह छोड आओ कि वह स्वय अपने पिता के घर तक पहुच जाय।

अजना के गर्भ के सबध मे प्रह्लाद जैसे न्यायी राजा ने सत्यासत्य का निर्णय नही किया। इसका कारण यही अनुमान किया जा सकता हे कि अजना के कुछ पाप कर्म शेष रह गये होगे। कैसे कर्म उपार्जन किये गये हें और वे कर्म किस प्रकार उदय मे आकर कैसा फल देते हैं यह बात स्पष्टरूप से केवलज्ञान के बिना नहीं जानी जा सकती। हम लोगो को केवलज्ञान तो है नहीं, इस कारण केवलज्ञानी जो कुछ कह गये हे उसी पर हमे विश्वास रखना चाहिए।

राजा प्रह्लाद का भेजा आदमी अजना के पास आया। उसने अजना से कहा–बेठिये रथ तेयार है। रानीजी ने आपको बाहर घूमने के लिये रथ भेजा है। अजना समझ गई कि मुझे कहा जाना हे। उसने बसन्तमाला को बुलाकर कहा–मेरे विषय मे भ्रम पेदा हो गया हे उसी का यह दुष्परिणाम हे।

बसन्तमाला ने कहा–सखी! यह तो भारी अनर्थ हो रहा हे। आपकी आज्ञा हो तो मैं महारानी और महाराज के पास जाकर उनके सन्देह का दूर करने का प्रयत्न करू।

अजना–इस समय कोई भी प्रयत्न सफल होने की उम्मीद नही हे। इस मौके पर मुझे सास–ससुर की आज्ञा का पालन करना ही उचित जान पडता है।

सकट के समय ज्ञान का उपयोग किया जाय तो ही ज्ञान की सार्थकता है। अगर सकट के समय विवेक न रहा तो ज्ञान किस काम का? विवेकहीन ज्ञान से कार्य की सिद्धि नही होती। ज्ञान को सफल एव सक्रिय बनाने के लिये विवेक की बडी आवश्यकता है। यहा यह देखना है कि सती अजना सकट के समय भी विवेक का उपयोग करके कैसी सहनशीलता दिखलाती है?

बसन्तमाला को यह सब सहन न हो सका। वह अजना के दु ख से दु खी होकर रोने लगी। अजना ने उसे धीरज बधाते हुए कहा–सखी तू रोती क्यो है? दु ख मेरे उपर आया है फिर भी मैं तो रोती नही और तू रो रही है। क्या यह उचित कहा जा सकता है?

बसन्तमाला–मुझे रत्ती–रत्ती सच्ची बात मालूम है। तुम सर्वथा निर्दोष और पवित्र हो। फिर भी तुम्हारे माथे कलक चढाया जा रहा है। बस इसी कारण मुझे रोना आ रहा है।

अजना–कर्म की गति विचित्र है। होनहार होकर ही रहती है। फिर भी अन्त मे सत्य छिपा नही रहता। वह एक न एक दिन सूर्य की तरह चमक उठता है। सत्य का पालन करने मे सकटो का सामना करना ही पडता है। जिस रात्रि मे राजकुमार पधारे थे, तब तू प्रसन्न हुई थी। फिर आज दु खी क्यो हो रही है? प्रत्येक स्थिति मे समभाव रखने का अभ्यास करना चाहिए। सुखो मे फूलना नही और दु ख मे घबराना नहीं चाहिए। सखी, तू मेरे लिये तनिक भी चिन्ता मत कर।

बसन्तमाला के साथ अजना ऐसे सरल भाव से रथ मे बैठ गई जैसे मायके से कोई लिवाने आया हो और कुछ दिनो के लिये वहा जा रही हो। उस समय भी बसन्तमाला के चेहरे पर दु ख के चिन्ह स्पष्ट झलक रहे थे, मगर अजना सती अत्यन्त गभीर और शान्त थी। उसके चेहरे पर घबराहट या वेदना का कोई निशान नहीं था।

शरीर मे आसुरी और दैवी बल के बीच सदैव युद्ध होता रहता है। इस युद्ध मे अगर दैवी प्रकृति की जीत होती है, तो यही सच्ची विजय है। कदाचित् दैवी प्रकृति दब जाय और आसुरी प्रकृति प्रकट हो जाय तो उस दशा मे आत्महानि ही होती है।

अजना ने कष्ट सहन करना कबूल किया, पर दैवी प्रकृति का परित्याग करके आसुरी प्रकृति की शरण मे जाना स्वीकार नही किया। साधारण मानवी के हृदय मे ऐसे सकट के समय भाति–भाति के सकल्प–विकल्प

उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मगर अजना ने अपने हृदय मे सकल्प–विकल्प को जरा भी स्थान नहीं दिया। वह यही सोचती थी कि मुझे जो दु ख भोगना पड रहा है, वह सब मेरा ही पैदा किया हुआ है। शास्त्रकारो का कथन हे कि किये हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं। ऐसी दशा मे अगर मुझे अपने किये कर्मो के फल स्वरूप दु ख भोगना पड रहा है तो इसमे दूसरे का क्या दोष है? वह तो केवल निमित्त मात्र है, निमित्त को दोष देना भयकर भूल है। इससे समस्या हल तो नहीं होती किन्तु और जटिल बनती चली जाती है। अत निमित्त को दोष न देकर अपने उपादान को ही दोषी मानकर अपने मन को शात व स्थिर रखना ही उपयुक्त है। यही विचार करके वह शान्त भाव से अपने कृत कर्मों का भोग करने तत्पर बनती है।

अपने ही कर्म भोगने पडते हैं, यह जैनधर्म का मौलिक सिद्धान्त है। सुख या दु ख, जो भी भोगा जाता है, वह सब अपने ही कर्मो का फल है। गीता मे भी कहा है–न परमात्मा किसी से कर्म कराता है और न कर्मो का फल ही देता है। प्रश्न किया जा सकता है कि अगर परमात्मा कर्म का फल नही देता तो कौन देता है? इसका उत्तर यह है कि जैसे शक्कर मे से मिठास और मिर्च मे से तीखापन स्वभाव से ही निकलता हे उसी प्रकार कर्म का फल भी कर्म के स्वभाव से ही मिलता है। इस कथन के अनुसार कर्म का कर्त्ता भी आत्मा है और भोक्ता भी आत्मा ही है। सिद्धान्त की इस बात पर दृढ आस्था रखने से आत्मा को शाति ही मिलती है। जो व्यक्ति कर्म के इस सिद्धान्त पर सुदृढ श्रद्धा रखता है, उसे प्रत्येक परिस्थिति मे चाहे वह कैसी भी प्रतिकूल क्यो न हो दु ख का अनुभव नहीं होता।

चलते–चलते रथ निर्जन वन मे जा पहुचा। अजना ने सारथी से कहा–मेरे साथ–साथ तुम कहा तक कष्ट उठाते रहोगे? साफ–साफ कह दो कि तुम क्या करना चाहते हो?

सारथी ने राजा प्रह्लाद की आज्ञा बतलाते हुए कहा–में आपको महेन्द्रपुर के मार्ग पर छोड देना चाहता हू।

अजना–महेन्द्रपुर यहा से पास ही हे ओर इधर का रास्ता मुझे मालूम है। अब तुम अधिक कष्ट मत उठाओ।

सारथी ने दु खपूर्ण हृदय से हाथ जोड कर कहा–"में विवश हू दवी कर्त्तव्य के वश होकर मुझे यह घोर कृत्य करना पडता हे। में ऐसा करते हुए अत्यन्त दु खी हू। इतना कहकर सारथी रोने लगा।

अजना ने सान्त्वना देते हुए कहा–तुम रोते क्या हो? आखिर ता मर दु ख से रो रहे हो न? लेकिन जब मैं स्वय दु ख नही मना रही हू तब तुम क्या

दु खी होते हो? तुमने आज्ञा का पालन किया है, इसलिए तुम्हे पसन्न होना चाहिये और महाराज से कहना चाहिये कि मैंने आपकी आज्ञा का बराबर पालन किया है।

इस पकार धीरज बधाकर अजना ने उस आदमी को रवाना कर दिया। अजना ने बसन्तमाला से कहा तू मेरे साथ क्यो वृथा कष्ट सहती है? तेरी इच्छा हो तो लौट जा।

बसन्तमाला बोली—आज तक मैं तुम्हारे साथ रही हू। अब कष्ट के सनय तुम्हे कैसे छोड सकती हू।

पूज्यश्री धीलालजी महाराज ने व्याख्यान देते हुए कहा था—एक बार वन मे दावानल लगने के कारण एक वृक्ष जलने लगा। उस वृक्ष पर एक पक्षी ने घोसला बना रखा था। जब वृक्ष जलने लगा तो उसने पक्षी से कहा—मेरे पख नही है इस कारण मुझे जलना पड रहा है। पर तुम्हारे तो पख है। तुम मेरे साथ क्यो जल रहे हो?

दव लाग्यो तरुवर जले, पखी माला माय।
हु तो जलु रे पाख बिन, तू क्यो नही उड जाय।।
पान बिगाड्या फल चख्या रम्यो तो हडी डाल।
तू तो जले मुझ देखता, म्हारे जीवणो कितने काल।।

अर्थात्—वृक्ष के पूर्वोक्त कथन के उत्तर मे पक्षी कहने लगा—मैंने तुम्हारे पत्ते बिगाडे हैं तुम्हारे मीठे फल चखे हैं और तुम्हारी डालियो पर कूदफाद की है। आज तुम मेरे देखते—देखते जल रहे हो। मुझे कितने दिन जीना है जो ऐसी परिस्थिति मे तुम्हे छोड कर उड जाऊ? मैं तुम्हे छोडकर चला जाऊ तो मेरे जीवन को धिक्कार है। इसलिए भाई, तुम्हारी गति सो मेरी गति।

इसी प्रकार बसन्तमाला ने भी अजना से कहा—अब तक मैं तुम्हारे साथ रही। खूब खाया—पीया और आनन्द किया। अब ऐसे सकट के समय तुम्हे अकेली छोडकर मैं कैसे जा सकती हू? नही सखी, यह मुझसे नहीं होगा।

अजना समझ गई कि बसन्तमाला मुझे किसी भी प्रकार छोडेगी नही। इसके हृदय मे मेरे प्रति स्नेह है। यह मेरे साथ आना चाहती है तो भले आवे।

रात हुई। दोनो ने जगल मे रात व्यतीत की। अजना रात भर भगवान का स्मरण करती और उपकार मानती रही।

पात काल होने पर बसन्तमाला ने कहा—सखी, महेन्द्रपुर जाने का मार्ग यह है। चलो इस मार्ग से महेन्द्रपुर चले। पिताजी तो वहा आश्रय देगे ही।

अजना–सखी! तुम माता–पिता के घर आश्रय मिलने की आशा करती हो। पर मुझे ऐसी आशा नही है। मैं श्वसुर के घर से निकाली गई हू। ऐसी दशा मे माता पिता के घर भी आश्रय नही मिलेगा।

बसन्तमाला–तुम्हारा कथन किसी दृष्टि से ठीक है फिर भी मुझे विश्वास है कि पिताश्री अवश्य आश्रय देगे।

मायके के द्वार पर

अजना के माथे कलक का जो टीका था, वह मानो विपत्ति का पहाड था। प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपकीर्ति मृत्यु से कम नहीं है। बल्कि उन्हे अपकीर्ति मृत्यु से भी बढकर दु खदायिनी होती है। यही कारण है कि कई लोग अपकीर्ति की वेदना से बचने के लिए आत्महत्या तक कर लेते हैं। यद्यपि यह मार्ग ग्रहण करने योग्य नहीं है, फिर भी इससे इतना पता तो चलता ही है कि जो लोग अपकीर्ति से बचने के लिए मौत का आश्रय लेते हैं वे मौत की अपेक्षा अपकीर्ति के दु ख को अधिक समझते हैं।

अजना की भी अपकीर्ति हुई थी। अपकीर्ति के कारण उस पर दु ख का पहाड आ पडा था। फिर भी उसे घबराहट नही हुई, क्योकि उसे अपनी आत्मा पर भरोसा था। अपने को कलकित करने के लिये उसने किसी को दोषी नहीं ठहराया। वह केवल यही सोचती थी कि यह सारा अपराध मेरी आत्मा का ही है। जब आत्मा अपने अपराध का फल भोग लेगी तो स्पष्ट प्रकट हो जायेगा कि में सच्ची पतिव्रता थी। इस समय तो मुझे अपने को शान्त ओर दान्त ही रखना है। इसी मे मेरा कल्याण हे।

अजना के कष्ट देखकर बसन्तमाला घबरा उठी थी। अजना ने उसे धीरज बधाते हुए कहा–सखी मैंने जो पहले कर्म किये हैं उनका फल मुझे भोगना ही पडेगा। कर्म को भोगते समय दु ख मानना व्यर्थ हे। मैं पाप से डरती हू, पाप के फल से नहीं।

आखिर बसन्तमाला के कहने से अजना महेन्द्रपुर नगर क दरवाजे पर पहुची। उसने द्वारपाल को अपना परिचय देकर कहा– पिताजी के पास जाकर उन्हे मेरे आने की खबर दे दो।'

द्वारपाल अजना को पहिचान कर कहने लगा–आप राजकुमारी होकर ऐसी हालत मे केसे पधारी हैं?

अजना ने स्पष्टीकरण किया मेरे ऊपर सकट आ पडा हे। मुझ पर परपुरुष द्वारा गर्भ धारण करने का आरोप लगाया गया है। सास–ससुर न मुझ घर से बाहर निकाल दिया है।

अजना ने सारा वृतान्त सुना दिया।

द्वारपाल ने राजा से जाकर कहा–महाराज! राजकुमारी आई है।

राजा ने प्रसन्न होकर कहा–अजना का आना प्रसन्नता की बात है जल्दी जाओ नगर को सजाने की आज्ञा देदो और अजना को आदर के साथ लिवा लाओ।

द्वारपाल–महाराज, आपका आदेश पमाण है, परन्तु राजकुमारी ऐसी स्थिति मे नहीं आई है कि उन्हे इस प्रकार आदर के साथ नगर मे लाया जाय। इस समय वह सुन्दर स्वागत के योग्य नही हैं।

इतना कहकर द्वारपाल ने अजना का कहा हुआ सब वृत्तान्त राजा को सुनाया। वृत्तान्त सुनकर राजा महेन्द्र के दु ख का पार न रहा। उन्होने व्यथित हृदय से मन ही मन विचार किया–वास्तव मे मेरे दामाद अजना से रुष्ट थे। इस रोष के कारण मेरे द्वारा प्रेम और उत्साह के साथ भेजी हुई भेट भी उन्होने स्वीकार नहीं की थी। ऐसी अवस्था मे अजना अनाचार का आश्रय लेकर गर्भवती हो यह नि सन्देह कलक की बात है। मेरी पुत्री होकर भी उसने शील और ब्रह्मचर्य की मर्यादा खण्डित कर दी। फिर कुकर्म करके वह यहा आई है। कलकित्त पुत्री को मैं आश्रय नही दे सकता।

राजा ने द्वारपाल से कहा–दु ख के साथ अजना से कह देना कि कलकित दशा मे मैं उसे आश्रय नही दे सकता। वह जहा जाना चाहे, जा सकती है। मेरे राज्य की सीमा मे उसे कहीं स्थान नहीं मिल सकता।

राजा का यह कठोर आदेश सुनकर उनके मत्री ने कहा–महाराज, आप आज्ञा देने मे कुछ उतावली कर रहे हैं। आज्ञा देने से पहले सत्य–असत्य का निर्णय कर लेना चाहिये। निर्णय करने से पहले इतना कठोर आदेश देना अनुचित प्रतीत होता है। मेरी विनम्र सम्मति यह है कि आप स्वय अजना के पास पधारे सब वृत्तान्त विदित करे और फिर पवनकुमार के पास पधारे, सब वृत्तान्त विदित करे और फिर पवनकुमार से इस सबध मे पुछवा ले। इतना करने के बाद अगर अजना अपराधिनी जान पडे तो उचित कार्यवाही करे।

प्रधान का कथन उचित था। पर कर्म की लीला विचित्र होती है। इस कारण राजा ने उसकी बात नहीं मानी और कहा–तुम्हारी बात ठीक है फिर भी कलकित पुत्री को इस समय स्थान देने से मेरा कुल कलकित होगा और पजा पर इसका प्रभाव बुरा पडेगा। प्रजा को यह कहने का अवसर मिलेगा कि राजा दूसरो को सदाचार का उपदेश देता है दुराचारी को दण्ड देता है फिर भी अपनी लडकी को दुराचार करने पर भी घर मे आश्रय देता

है या अपने राज्य मे रखता है। प्रजा की इतनी टीका भी में नहीं सुनना चाहता। अतएव मैंने जो यह कह दिया–वही मुझे ठीक जान पडता हे।

राजा महेन्द्र फिर कहने लगे–अब अजना मेरी हे भी नहीं। वह अपने सास–ससुर की है। जब उसकी सास ने ही उसे निकाल दिया है तो मैं केसे रख सकता हू?

मन्त्री–जान पडता है, अजना की सास का स्वभाव खराब हे। ऐसा न होता तो उसने पवनकुमार के आने की राह देखी होती। उसने पवनकुमार की राह न देखकर उतावली मे अजना को निकाल देने का अनुचित कार्य किया है तो क्या आपको भी यही करना उचित है? में तो अब भी यही उचित समझता हू कि पवनकुमार के आने तक अजना को अगर राजमहल मे न रख सकते हो तो कहीं दूसरी जगह रख दीजिये। जब तक सत्य–असत्य का निर्णय नहीं हो जाता तब तक उसे सर्वथा आश्रयहीन करना किसी भी दृष्टि से उचित नही हे।

राजा–तुम क्षत्रियो की पद्धति नहीं जानते और इसी कारण ऐसा कह रहे हो। मैं अपनी पुत्री को भी स्थान नहीं दूगा तो प्रजा यही कहेगी कि राजा को पुत्र या पुत्री प्रिय नहीं, धर्म प्रिय है। धर्म की रक्षा के लिए राजा अपने प्रियजनो का भी त्याग कर सकता हे। इस दृष्टि से मुझे तो यही उचित दिखाई देता हे कि पुत्री को राज्य मे स्थान न दिया जाय।

राजा महेन्द्र का निर्णय एक दृष्टि से क्रूरतापूर्ण होने पर भी दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो उचित भी प्रतीत होगा। राजा को अपनी पुत्री प्रिय तो थी ही, फिर भी उसने उसे आश्रय नहीं दिया जिससे प्रजा में दुराचार सेवन करने की भावना उत्पन्न न हो। धर्म की रक्षा करने के लिये ऐसा करना आवश्यक हो जाता हे। धर्म का पालन करने के लिए दृढता की आवश्यकता होती हे।

राजा का कथन सुनकर मत्री ने विचार किया–अब अधिक कहना वृथा हे। तब निराशा और उदास भाव से उसने द्वारपाल से कहा–तो तुम अजना के पास जाकर उससे कह दो कि यहा तुम्हारे माता–पिता या भाई–बहिन वगेरह कोई नहीं हैं। तुम्हारे लिए सारा परिवार ओर राज्य वीरान हे।

अजना के पास जाकर द्वारपाल ने सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा ओर राजमत्री के बीच जो बातचीत हुई थी वह भी उसने अजना को सुनादी। द्वारपाल का निराशाजनक कथन सुनकर वसन्तमाला रोती–रोती कहने लगी–सखी! अब हम कहा जाएगी? ससुर के घर आश्रय न मिलन पर मायक का आश्रय लिया जाता है। जब मायके मे ही आश्रय न मिले तो अन्यत्र कहा मिल सकता हे?

बसन्तमाला को तसल्ली देते हुए अजना ने कहा–मैंने तुम्हारे कहने से आश्रय पाने के लिए यहा एक पयोग किया था। यह पयोग सफल नही हुआ। मुझे पहले ही आशा नहीं थी कि यहा आश्रय मिल सकेगा। पिताजी मुझे प्यार करते है, फिर भी उन्हे अपनी परिस्थिति का विचार तो करना ही पडेगा। परिस्थिति के कारण ही उन्होने ऐसा कहलाया है। तू चाहे तो पिता के घर रह सकती है। तुझे अवश्य आश्रय मिल जायेगा। रही मेरी बात सो जहा मेरी अन्तरात्मा ले जाएगी, वही मैं चली जाऊगी।

बसन्तमाला–आखिर तुम्हारी अन्तरात्मा कहा जाना चाहती है?

अजना–सभी ने मेरा तिरस्कार किया है, पर जगल ऐसा नहीं करेगा? मै किसी जगल का ही आश्रय लूगी।

वनवास

वन मे रहने का महत्व कितना है, यह बतलाने के लिये इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अनेक लोग राजपाट तज कर वन मे जाना पसन्द करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसी शाति वन मे प्राप्त हो सकती है वैसी कही भी दूसरी जगह सम्भव नही है। जगल मे मगल की भावना रखने से किसी भी प्रकार का दु ख नहीं जान पडता। आज तो जगल मे भी परतन्त्रता का प्रवेश हो गया है और गाय जैसे मनुष्योपयोगी प्राणियो को भी वहा घास चरने की छूट नहीं मिलती पर प्राचीन काल मे जगल सब के लिए खुला था। वहा किसी प्रकार का प्रतिबध नही था। जो लोग स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते थे वे जगल के फल–फूल खाकर अपना जीवन निर्वाह कर लेते थे। लेकिन आज (Forest tax) जगल कर लगा दिया गया हे और इस प्रकार जगल की मगलता मे विघ्नबाधा उपस्थित कर दी गई हे।

बसन्तमाला ने चकित होकर कहा–राजकुमारी क्या तुम वन मे रहने योग्य हो? क्या जगली फल–फूलो पर तुम निर्वाह कर सकोगी? क्या जगल मे जमीन पर सो सकोगी?

अजना ने गहरा विचार करके कहा–में सब कष्ट सहने के लिए तैयार रहूगी। इसके अतिरिक्त जगल मे न जाऊ तो जाऊ कहा?

बसन्तमाला–चलो न हम स्वय पिताजी के पास चले। एक बार सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर आश्रय देने की प्रार्थना करे।

अजना–सखी! मुझसे यह न होगा। जब पिताजी ने एक बार उत्तर दे दिया है कि मैं उनके राज्य की सीमा मे न रहू तब राज्य में रहने की प्रार्थना कैसे कर सकती हू। कहा भी है–

आव नही आदर नही, नहि नैनन मे नेह
तुलसी तहा न जाइये, कचन बरसै मेह।
आव जहा आदर जहा, जहा नैनन मे नेह
तुलसी तहा तो जाइये, पत्थर बरसै मेह।।

पिताजी ने मेरा आदर नहीं किया इतना ही नहीं वरन् राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी है तो इस स्थिति मे मैं आश्रय देने के लिए प्रार्थना नही कर सकती। मैं जगल के कष्ट खुशी–खुशी सह लूगी पर पिताजी के पास प्रार्थना करने नहीं जाऊगी। सखी, तू जाना चाहती हो तो खुशी से चली जा। मैं आग्रहपूर्वक कहती हू कि तुझे मेरे साथ रह कर कष्ट भोगने की आवश्यकता नही है। मैं तो अब जगल मे ही रहूगी। मैं सर्वथा निष्कलक हू, फिर भी ससुराल मे और मायके मे भी मुझे कलक लगा है और मैं आश्रयहीन बना दी गई हू, मगर वन निराश्रितो का आश्रय है। वह समान रूप से सभी का स्वागत करता है। अतएव मैंने वन मे रहने का निश्चय किया है। गर्भवती न होती तो मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने मे स्वतन्त्र थी। गर्भवती होने के कारण मैं विवश हू। गर्भ की रक्षा करना आवश्यक है। इसलिए दूसरा कोई विचार न करके वन में जाने का ही मैंने निश्चय कर लिया है।

गर्भ की रक्षा करना माता का आवश्यक कर्त्तव्य है। गर्भ की रक्षा करने के निमित्त माता को किस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिए यह बात ज्ञाता–सूत्र मे बतलाई गई है। उसका सार थोडे मे यही है कि– जिस प्रकार गर्भ की रक्षा हो, उसे शान्ति मिले, उसी प्रकार का बर्ताव माता को करना चाहिये। आज कितनीक माताए गर्भवती होती हुई भी तपस्या करने बेठ जाती हैं। यह उचित नहीं हे। जिन्हे तप ही करना हे उन्हे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये जिससे गर्भ ही न रहे। और जो ब्रह्मचर्य पालन नही कर सकती उन्हे गर्भ रहने के बाद इस प्रकार वर्तना चाहिए, जिससे गर्भ की हत्या होने की सम्भावना न रहे।

गर्भ की रक्षा करना अजना ने अपना कर्त्तव्य समझा। अजना के कथन के उत्तर मे बसन्तमाला ने कहा–सखी जेसा उचित समझो करो। म तुम्हारे साथ ही हू। तुम्हे छोडकर कहा जा सकती हू?

अजना ने सोचा–यह मुझे छोड कर अपने पिता के घर नही जायेगी। तब वह बोली बसन्तमाला! अगर तुम मेरे साथ ही रहना चाहती हो ता खुशी से रहो। मैं वन मे रह कर आत्मा की ज्योति जगाऊगी।

सारे महेन्द्रपुर नगर मे बिजली के वेग से यह समाचार फैल गया कि राजकुमारी अजना मायके आई थी, लेकिन राजा ने उन्हे आज्ञा दी है कि वह मेरे राज्य मे भी नही रह सकती। प्रजा मे सदाचार के विरुद्ध कोई भावना न उत्पन्न होने पावे, इस विचार से राजा ने अपनी प्रिय पुत्री को भी घर मे आश्रय नही दिया है। राजा के इस निर्णय को सुनकर लोग स्तम्भित रह गये। सभी जानते थे कि अजना महाराज की लाडली बेटी है। फिर भी उन्होने सत्य-असत्य का निर्णय नही किया और राजकुमार के आने तक भी अजना को आश्रय नहीं दिया। समझदार पजाजनो ने इस सबध मे राजा से पुन विचार करने की पार्थना करने का विचार किया। फिर उन्होने सोचा-जब तक हम लोग महाराज के पास पहुचेगे तब तक न जाने अजना कहा जा पहुचेगी। अतएव सबसे पहले अजना के पास जाना ही उचित होगा और पुनर्विचार होने तक उसे यहा रोक लेना चाहिए। नगर के प्रतिष्ठित प्रजाजन अजना के पास पहुचे। अजना की आकृति से ही उन्हे जान पडा कि वह निर्दोष है।

प्रजाजनो ने अजना से कहा-आप कहा जा रही हैं?

अजना-पिताजी ने जहा जाने का हुक्म दिया है, वहीं जा रही हू।

प्रजाजन-महाराज ने जो आज्ञा दी है, वह आपको दोषी समझ कर दी है। पर आप तो निर्दोष दिखाई देती हैं। अतएव आप कहीं न जाये, यही रहे।

अजना-मेरे लिए पिताजी की आज्ञा मानना आवश्यक है। मैं अब इस राज्य की सीमा मे कैसे रह सकती हूं? मेरे लिए तो यही उचित है कि मै जल्दी से जल्दी राज्य की सीमा से बाहर चली जाऊ।

प्रजाजन-आपका यह कोमल शरीर क्या वन मे रहने योग्य है? आप वन मे कष्ट सहन कैसे करोगी?

अजना-जिस शरीर को आप कोमल मान रहे हैं, उसने अनेक कष्ट सहे है। सासरे मे तो मुझसे कोई बोलता तक नहीं था। जब मैं अनेक कष्ट भोग चुकी हू तो वन के कष्ट कौनसी बडी बात है?

प्रजाजन-सासरे मे भी आपको इतने कष्ट भोगने पडे हैं यह बात तो हमे आज ही मालूम हुई। खैर जो हुआ सो हुआ। अब आप यही रहिये। पवनकुमार आपको खोजते हुए जब यहा आयेगे तब सच्चाई आप ही प्रकट हो जायेगी।

अजना-मै आपकी बात मानू या पिताजी की आज्ञा मानू? आप लोगो का मेरे पति स्नेह और सद्भाव है उसकी मैं प्रशसा करती हू, फिर भी यहा

रहने मे असमर्थ हू। मेरे यहा रहने से पिताजी की आज्ञा का उल्लघन भी होगा और राजा–प्रजा के बीच विग्रह भी होगा। मैं अपने स्वार्थ के लिए राजा और प्रजा के बीच विग्रह होने देना नही चाहती। मेरा यहा रहना धर्म से पतित होना है। अतएव मैंने वन मे ही रहने का विचार कर लिया है। जब पति लौटेगे और सत्य बात प्रकाश मे आयेगी, तब देखा जायेगा।

प्रजाजन सोचने लगे–अजना अपराधिनी होती तो उसके दृढता भरे शब्द न निकलते। इससे भी अजना की निर्दोषता सिद्ध होती है। इस ससार मे परिवाद निर्दोष आत्माओ को भी भोगने पडते हैं। इनके कार्य मे हम लोगो को विघ्न नहीं डालना चाहिये।

प्रजाजन अजना से क्षमा मागकर लौट आये ओर अजना तथा बसन्तमाला ने वन की ओर प्रस्थान किया। लौटने वाले प्रजाजनो मे कोई–कोई कहता था कि राजा ने सत्य–असत्य का निर्णय किये बिना ही राजकुमारी को कष्ट दे डाला है। कोई कहता–राजा को अपनी पुत्री प्यारी तो होगी ही फिर भी जब उन्होने इतनी कठोर आज्ञा दी हे तो अवश्य ही अजना ने कोई अपराध किया होगा। इस प्रकार दोनो तरह के लोग थे।

इस घटना से हमे सोचना है कि हम वास्तव मे कैसे बने? शास्त्र मे श्रावक के लिये दूसरे व्रत मे सहसब्भक्खाणे नामक अतिचार बतलाते हुए कहा गया है कि श्रावको को बिना जाने किसी पर दोषारोपण नही करना चाहिए। अगली पिछली बात जाने बिना किसी को दोष लगा देने से 'सहसब्भक्खाणे' नामक अतिचार लगता है। हमे तो अपने सत्य व्रत का ही विचार करना चाहिए। सच्चे श्रावक तो साधुदर्शन व्याख्यानश्रवण ओर धर्मकृत्यो के साथ अपने व्रतो का बराबर पालन करते हैं। सच्चे श्रमणोपासक साधुओ को अपना आदर्श मानकर आदर्श के अनुसार ही अपना व्यवहार बनाने की चेष्टा करते हैं।

अजना, बसन्तमाला के साथ वन मे पहुची। वहा पहुचन के बाद बसन्तमाला ने कहा–अब हमे क्या करना चाहिए।

अजना–सखी! हम यहीं इसी वन मे रहेगी। यहा रहते क्या करना होगा, यह मेंने सोच रखा हे। वन मे हमे इस कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना है–

सखी! हम आत्मस्वरूप ही ध्यावेगी।
मात–पिता भाई को दोष नही देवेगी
हम अपने स्वरूप मे आपको विचारेगी।
तत्त्व की गुफा मे बैठ मोह की भ्रमणा मेट
सत्यव्रत से तो प्रेम–दया दिल लावेगी।

जीव न सतावेगी स्तेय हटावेगी
ब्रह्मचर्य व्रत धार ममता को मारेगी।
प्रभु से तो प्रीति जोड, जगत् से नाता तोड
आनन्द बढावेगी परम सुख पावेगी।
दुनिया दुरगी जान इस मे न देवे ध्यान
मन भ्रमणो को त्याग आत्मा को तारेगी।

अजना कहती है–वन मे रहना उन्हे रुचिकर नहीं होता जिनके पास वन मे रहने योग्य कार्यक्रम नही होता। हमारे पास तो वन के योग्य कार्यक्रम मौजूद है। ससार मेरा तिरस्कार करता है जबकि वन मेरा सत्कार करता है। दुनिया की मूर्खता देख–देखकर मुझे हसी आती है। लोग मुझे कलकित कहते हैं परन्तु वन ऐसा नहीं कहता। अतएव मैं वन मे रहकर ही आत्मा का चिन्तन–मनन करूगी। बडी कठिनाई से वन मे रहने का यह अवसर मिला है। यह दु ख का समय भी मेरे लिए तो आनन्ददायक बन गया है। जो मनुष्य बातबात मे दु ख का अनुभव किया करता है उसका सारा ही जीवन दु खमय बन जाता है। इसके विरुद्ध सुख मानने पर सुख ही मालूम होता है। वस्तुत सुख ओर दु ख का कर्त्ता आत्मा ही है। आत्मा जब दु ख को सुख रूप मे ग्रहण करता है तो वह दु ख भी सुख के रूप मे परिणत हो जाता है। जो लोग सुख–दु ख का कर्त्ता आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य को मानते हैं वे भ्रम मे है। मैं भ्रम मे नही हू। अतएव दु ख के समय भी आनन्द का अनुभव करती हू। मेरी इच्छा यह भी है कि पदार्थो का पृथक्करण करते–करते मैं आत्मतत्त्व तक पहुच जाऊ। यह मेरी आत्मा का ही दोष है कि मैं पति सास ससुर और माता–पिता को भी अप्रिय लगी। अब इस वन मे रहकर मैं अपने उस दोष को दूर करने का प्रयत्न करूगी। मैं तत्त्व की गुफा मे बैठकर मोह का भ्रम हटाऊगी और आत्मतत्त्व का ध्यान करूगी। माता–पिता आदि कुटुम्बीजनो ने मुझे आत्मचिन्तन करने का अच्छा अवसर प्रदान किया है। इसके लिये मैं उनका उपकार मानती हू। तत्त्व का विचार करके मैं प्राणी मात्र पर दया करने का अभ्यास करूगी और किसी भी जीव को नही सताऊगी। सत्यव्रत का पालन करूगी क्योकि अहिसा और सत्य के द्वारा ही आत्मा का कल्याण हो सकता है। इसलिए इन दोनो व्रता का पालन करने के साथ अस्तेयव्रत ब्रह्मचर्य और सन्तोषव्रत का भी मुझे पालन करना है। इस प्रकार अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और सतोष इन पाच व्रतो द्वारा मे अपनी आत्मा का कल्याण साधूगी।

अजना की बात सुनकर बसन्तमाला बोली इन व्रतो का पालन तो महेन्द्रपुर मे रहने पर भी किया जा सकता था फिर इसके लिये ऐसे घोर जगल मे आने की क्या आवश्यकता थी?

अजना–सखी, महेन्द्रपुर मे रहने से पिता की आज्ञा का पालन न होता और सभव है कि राजा तथा प्रजा के बीच झगडा खडा हो जाता। वन मे रहने से यह कुछ भी नहीं होगा बल्कि आत्मचिन्तन के लिये एकान्त मिलेगा और गर्भ की रक्षा भी हो ही जायेगी।

बसन्तमाला को इस प्रकार समझाकर अजना ने वन मे आगे प्रस्थान किया। भूख लगना शरीर का स्वाभाविक धर्म है। बसन्तमाला ने अजना से कहा–अब हमने राज्य की सीमा पार करली है और इतना अधिक चलने से भूख लग आई है। अब क्षुधा शात करनी चाहिये।

अजना–भूख लगी है तो वनदेवी ने भूख मिटाने की सामग्री भी अपने लिये तैयार कर रखी है।

इसके बाद वन के फल–फूलो से दोनो ने अपनी भूख मिटाई और ठडा पानी पीकर आगे प्रस्थान किया।

मुनिदर्शन

अजना और बसन्तमाला धीरे–धीरे वन मे आगे बढी चली जा रही थी कि एक वृक्ष के नीचे ध्यान मे मग्न एक महात्मा दिखाई दिये। महात्मा के दर्शन करके अजना बहुत प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी–इस वन मे महात्मा पुरुष के दर्शन होना बडे सौभाग्य की बात है। महात्मा पुरुष भी वन का ही आश्रय लेते हैं क्योकि नगर मे अनेक प्रकार की झझटे लगी रहती हैं और वन मे किसी भी प्रकार की झझट नहीं होती।

अजना ने बसन्तमाला से कहा–सखी! हम वन मे न आती तो ऐसे तेजस्वी महात्मा के दर्शन कहा होते? अगर पिताजी ने कृपा न की होती ता हमे वन मे आने का अवसर कैसे मिलता?

बसन्तमाला–पिताजी ने आप को जगल भेजकर बडा भारी अनुग्रह किया है। उनकी कृपा की कहा तक तारीफ की जाय। यो तो कहती नही कि पिताने क्रूरता का परिचय दिया हे। अगर जगल मे उन्होने न भेजा होता तो खाने, पीने ओर रहने का यह कष्ट ही क्यो भोगना पडता?

अजना–सखी! तू बिना विचारे बोल रही है। तेरा कथन भूल स भरा है। पिता प्रसन्न होते तो नगर मे खाने–पीने का सुभीता हो जाता पर इस

जगल मे इन निष्परिग्रही महापुरुष से हमारा क्या मिलन होता? तेरी यह मान्यता भमपूर्ण है। हमे जो कुछ मिल रहा है, यदि वह अच्छा है तो मानना चाहिये कि वह सब इन्ही महात्मा के पताप से मिला है। जिस वस्तु को हम अच्छी समझे वह धर्म के पताप से ही मिलती है। धर्म तत्त्व को समझाने वाले और धर्म की ओर ले जाने वाले ये महात्मा ही है। इस लोक और परलोक सबधी सुखो की चाबी इन महात्माओ के हाथ मे ही है। इनकी सेवा करने से सब सुख सुलभ हो जाते हैं।

अजना ने दूर से ही उन्हे वन्दन–नमस्कार किया ओर फिर धीमे स्वर मे बसन्तमाला से कहा–सौभाग्य से ही हमे इन मुनिराज के दर्शन हो सके ह। देख तो मुनि पद्मासन लगाकर नासिका पर दृष्टि स्थिर करके तथा मन वचन और काय को एकाग्र करके कैसे शान्त भाव से बैठे हैं। यह मुनि महात्मा तो साक्षात शान्तिमूर्ति हैं। यह शास्त्र मे वर्णित क्षमा आदि दस धर्मो से युक्त जान पडते हैं। इनकी दयापूर्ण करुणा के सामने वैरभाव टिक ही नही सकता। बकरी और सिह सरीखे जन्म के विरोधी जन्तु भी ऐसे सरल शान्त स्वभावी महात्मा के निकट वैरहीन बन जाए तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?

इस प्रकार अपनी सद्भावना प्रकाशित करके अजना ओर बसन्तमाला–दोनो महात्मा के समीप पहुची और चुपचाप नीचे बेठ गई। थोडी देर के बाद महात्मा का ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होने अजना से कहा–तू राजा महेन्द्र की पुत्री वन मे आई है?

अजना इस प्रश्न से चकित रह गई। उसने कहा–जी हा, महाराज! मुझे आपके दर्शन करने का सुयोग मिलना था इसलिये यहा आने का निमित्त मिल गया। मेरे हृदय मे आप से एक बात पूछने की इच्छा हो रही है। यद्यपि मैं यह बात भलीभाति जानती हू कि अपने किये कर्म ही मुझे भोगने पड रहे हैं फिर भी मैं आपके मुख से यह सुनना चाहती हू कि मैंने ऐसा कौनसा दुष्कर्म पूर्वजन्म मे किया है जिसकी बदौलत मैं सास–ससुर और माता–पिता को अप्रिय लगती हू और बहुत दिनो तक पति को अप्रिय लगती रही? महाराज! कृपा कर विस्तार के साथ मेरे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा कीजिये। इससे मुझे और मेरी सखी को बहुत सन्तोष होगा।

दु ख को स्वकृत मानने से मन को सन्तोष मिलता है। इस प्रकार बहुत बार कहा करते हैं कि–

इम समकित मन थिर करो, पालो निरतिचार
मनुष्य–जन्म छे दोहलो भमता जगत मझार।

बिन कीधा लागे नही, कीधा कर्म जो होय,
कर्म कमाया आपणा, तेथी सुख–दु ख होय।

ज्ञानीजनो ने दु ख मे भी मन को स्थिर रखने का उपाय बतलाया है कि चाहे सुख मिले, चाहे दु ख मिले दोनो को अपने किये हुए कर्मों का ही फल समझो। ऐसा समझने से मन शात और स्थिर होगा। अजना ने सुख और दु ख को अपने ही कर्मों का फल मानकर समभाव का अभ्यास किया था। यही कारण है कि उसका मन शान्त और स्थिर था।

पूर्वभव का वृत्तान्त

अजना के प्रश्न के उत्तर मे मुनि कहने लगे–कर्म की लीला विचित्र है। जैसे छोटे से बीज मे से विशाल वटवृक्ष पैदा हो जाता है उसी प्रकार कर्म की भी लीला है। मैं तुम्हारे कर्म के विषय मे पूरी बात तो नही कहता फिर भी कुछ बाते बतलाता हू, जिनके सुनने से तुम्हे कर्म की विचित्र लीला का पता चल सकेगा।

महात्मा ने अजना की कर्मकथा कहते हुए बतलाया– "अजना तू पूर्वभव मे एक राजा की रानी थी। तेरी एक सौत भी थी। सौत के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यद्यपि सौत के पुत्र को तुझे अपना ही पुत्र मानकर प्रसन्नता होनी चाहिये थी परन्तु तेरे मन मे यह ईर्ष्या उत्पन्न हुई कि सोत के पुत्र है तो मेरे पुत्र क्यो नही है?

ईर्ष्या करने का स्वभाव सिर्फ स्त्रियो मे ही नहीं पाया जाता पुरुषो में भी वह देखा जाता है। दूसरो की सुख–समृद्धि देखकर पुरुष ईर्ष्या करता हे। इतना ही नहीं, एक पुरुष को जो सुख प्राप्त होता है वही सुख यदि दूसरो को भी प्राप्त हो जाय तो ऐसी दशा मे उसे वह सुख सुख ही नहीं जान पडता है। जो सुख दूसरो को प्राप्त न हो, वही सुख मनुष्य को सुख मालूम होता है। उदाहरणार्थ–सूर्य राजा और रक को समान रूप से प्रकाश देता है वह राजा रक मे जरा भी अन्तर नहीं करता। यही कारण है कि सूर्य का प्रकाश पाकर लोगो को कोई खास प्रसन्नता नही होती किन्तु अपने घर मे दो–चार बिजली की बत्तिया लगाकर लोग फूले नही समाते। इस प्रकार दूसरे का सुख देखकर लोगो को ईर्ष्या होती है। इस तरह की ईर्ष्यावृत्ति के चगुल म रो निकलकर समभाव का अभ्यास करना उचित हे।

महात्माजी कर्म–कथा सुनाते हुए अजना से कहते हैं– सोत के प्रति ईर्ष्या जाग उठने के कारण तूने प्राप्त साधनो की सहायता से सौत क बालक

को कही छिपा दिया। पुत्र के वियोग के दु ख से दुखित होकर तेरी सौत विलाप करने लगी। तूने वह विलाप सुना मगर तेरे दिल पर उसका तनिक भी पभाव नही पडा। जिसके हृदय मे ईर्ष्याभाव होता है उनका हृदय कठोर भी हो जाता है। ईर्ष्यापूर्ण हृदय दूसरे का रुदन सुनकर और ज्यादा प्रसन्न होता है। तू भी अपनी सौत का विलाप सुनकर प्रसन्न होती थी। तुम्हारी पसन्न मुखमुद्रा देखकर सौत ने अनुमान लगाया कि मेरे पुत्र के गायब होने मे इसका भी हाथ जान पडता है। उसने तुम्हारे पास आकर कहा–जान पडता है तुमने मेरे पुत्र को गायब करने का षडयत्र रचा है। यही कारण है कि मेरा तो पुत्र लापता हो गया है और तुम्हारे मुह पर प्रसन्नता दिखाई देती है।

सौत के कथन के उत्तर मे तुमने कहा–क्या मैं ऐसा निकृष्ट कार्य कर सकती हूं? क्या तुम्हारा पुत्र मेरा पुत्र नहीं है?

सौत ने कहा–वास्तव मे तो मेरा पुत्र तुम्हारा पुत्र ही है, लेकिन पुत्र वियोग की जैसी वेदना मेरे दिल मे साल रही है, वैसी तुम्हारे दिल मे नही–तुम्हारे मुख पर पसन्नता झलक रही है। यह देखकर मुझे सदेह होता है कि कही तुमने ही तो मेरे पुत्र को नही छिपा दिया है।

अजना! सौत की बात सुनकर तुमने कहा–तुम्हारा ख्याल गलत है। तुमने मुझ पर झूठा आरोप लगाया है।

ईर्ष्या करने पर जीवन मे असत्य का प्रवेश हुए बिना नहीं रहता। एक पाप करने पर अनेक पाप करने पडते हैं। इस कथन के अनुसार अजना ने पुत्र को छिपाने का एक बुरा काम तो किया ही था, फिर पूछने पर झूठ बोलकर दूसरा पाप किया। इस प्रकार एक पाप से अनेक पापो की परम्परा चल पडती है।

पुत्र–वियोग की व्यथा से व्यथित होकर सौत लगातार विलाप करती रहती थी। उसकी यह करुणापूर्ण दशा देख कर पडौस मे रहने वाली एक स्त्री को दया आ गई। उसने तुम्हे बहुत समझाया और कहा–तुम यह क्या कर रही हो? देखो तो बेचारी कैसा करुण विलाप कर रही है? इस प्रकार पुत्र को छिपा रखना उचित नही है।

पडौसी स्त्री के इस प्रकार समझाने–बुझाने से तुम समझ गई। बालक को बाईस घडी तक छिपा रखने के बाद तुमने बतला दिया। पूर्वभव मे यह पाप करने का ही परिणाम है कि तुम्हे इस भव में दु ख भोगना पड रहा है।

मुनि द्वारा कहा हुआ अपना पूर्व–वृत्तान्त सुनकर अजना ने मुनि को प्रणाम किया। फिर हाथ जोडकर वह पूछने लगी आप जैसे भूतकाल की बाते

जानते हैं उसी प्रकार भविष्य काल की बाते भी जानते हैं। कृपा करके बतलाइये कि मुझे इस स्थिति मे कितने समय तक रहना पडेगा? मेरी इस अवस्था का अन्त आयेगा भी या नहीं?

महात्मा बोले—अब थोडे ही समय मे तुम्हारे वे कर्म नष्ट होने वाले हैं। उसी समय तुम्हारी स्थिति बदल जायेगी। तुम्हे एक ऐसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी जो अत्यन्त प्रतापी होगा। वह बडा होने पर राम का दूत बनेगा और सीता की खोज करेगा।

महात्मा की भविष्य वाणी सुनकर अजना को बहुत प्रसन्नता हुई। अजना ने उन्हे वन्दन—नमस्कार किया। तत्पश्चात् वह अपनी सखी के साथ उठकर वहा से रवाना हो गई।

अजना को अत्यन्त प्रसन्न देखकर बसन्तमाला ने कहा— सखी! इन महात्मा से तुम्हे ऐसा क्या मिल गया है कि तुम्हारी प्रसन्नता दिल के भीतर नही समाती?

अजना—इन महात्मा से मुझे जाज्वल्यमान ज्ञान की प्राप्ति हुई है। इसी कारण मुझे बडी प्रसन्नता है।

महात्माओ के पास से ज्ञान की ही प्राप्ति होती है। श्री भगवती सूत्र मे इस विषय मे भगवान् से यह प्रश्न पूछा गया है—

प्रश्न—तहारूवाण समणाण णिग्गथाण पज्जुवासणाए कि फल?

उत्तर—सवणफल।

अर्थात्—भगवन्! सच्चे निर्ग्रन्थ श्रमण की उपासना—सेवा करने से क्या लाभ होता है? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने कहा साधु की सेवा करने से श्रवण का लाभ होता है अर्थात् श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।

सती अजना ने बसन्तमाला से कहा—सखी! मुझे भी श्रुतज्ञान का लाभ हुआ है। मैं अपने कर्मों को परोक्ष रूप से ही जानती थी इन महात्मा ने मेरे कर्मों को प्रत्यक्ष देखकर मुझे उनसे परिचित कराया है। यही नही भविष्य सबधी बाते, जिनका मुझे कोई ज्ञान नहीं था इन महात्मा के मुख से ही मैं जान सकी हू। महात्मा की प्रामाणिक वाणी श्रवण कर मैं समझती हू कि अब शीघ्र ही मेरे दु खो का अन्त आने वाला हे।

बसन्तमाला—कौन जाने दु खो का अन्त आयेगा या नहीं?

अजना—मुझे महात्मा की वाणी पर पूरा विश्वास हे। उन्होने पति के सबध मे जो कुछ कहा है उस पर भी मुझे विश्वास हे और पुत्र के सबध म कही हुई बातो पर भी।

बसन्तमाला—भविष्य की बात इस समय कैसे कही जा सकती है? कौन कह सकता है कि तुम्हारी कूख से पुत्र ही होगा और पुत्री नही होगी?

अजना—यह हो नही सकता। महात्मा के कथन पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरी अपनी मान्यता है कि मैं पुत्र को ही जन्म दूगी।

ऊपर जो घटना दिखलाई गई है, उसके आधार पर एक महत्वपूर्ण पश्न उपस्थित होता है। उन महात्मा ने अजना का भविष्य बतलाया है। पर क्या साधु—महात्मा लोगो को इस प्रकार भविष्य बतला सकते हैं? भविष्यवाणी करना क्या साधुओ के लिए निषिद्ध नही है? इस पश्न का उत्तर यह है कि शास्त्र मे पाच प्रकार के व्यवहार बतलाये गये है। आगम व्यवहारी साधु के लिये इस प्रकार का भविष्य बतलाना निषिद्ध नही है। हा, सूत्रव्यवहारी साधु ऐसा नही कर सकते।

जैसे भविष्य—भाषण के विषय मे प्रश्न उपस्थित होता है, उसी प्रकार उनके अकेले विचरने के विषय मे भी प्रश्न उपस्थित हो सकता है। वह महात्मा अकेले क्यो विहार करते थे? इस प्रश्न का यही उत्तर है कि यह आगम विहारी थे। उन्हे अकेले विचरने का अधिकार था। सूत्रव्यवहारी साधु उनका अनुकरण नहीं कर सकते।

काली रानी ने भगवान् महावीर से प्रश्न पूछा था कि मेरे दस पुत्र युद्ध करने गये हैं। मैं उन्हे फिर देख सकूगी या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान ने कहा था—तुम कालीकुमार को नहीं देख सकोगी। भगवान् का उत्तर सुनकर काली रानी मूर्छित होकर धरती पर गिर पडी थी।

यहा विचारणीय बात है कि भगवान् ने इस प्रकार का भावी कथन क्यो किया? इससे यही समझा जा सकता है कि आगमविहारी जो कुछ करते है उसे देखकर सूत्रविहारी उन्हीं के अनुसार सब कुछ नहीं कर सकते। आगमव्यवहारी केवली सरीखे होते हैं। अगर कोई सूत्रव्यवहारी साधु ज्योतिष आदि सीखकर और आगम व्यवहारी का अनुकरण करके भविष्य बतलाने लगे तो वह अनुचित होगा और साधुओ के द्वारा भविष्य जानने के लिए तुम्हारा पयत्न करना भी अनुचित होगा। आज का यति समाज किसी समय पाच महाव्रतधारी साधु—समाज ही था मगर ऐसे—ऐसे कारणो से ही उसका पतन हो गया।

कहने का आशय यह है कि आगमव्यवहारी साधु भविष्य आदि का कथन करते हे। इस अधिकार को प्राप्त करने के लिये और उनका अनुकरण करने के लिये उन्ही के समान कर्मो को नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिये।

कर्मो को नष्ट करने के लिये उन सरीखा प्रयत्न किया नहीं जा सकता तो फिर उनके समान भविष्य–भाषण का अधिकार केसे प्राप्त किया जा सकता है? जो साधु केवल भविष्य बतलाने मे ही आगमव्यवहारी साधुओ का अनुकरण करना चाहते हैं, वे अवश्य ही पतित हो जाते हैं। वे महात्मा जघाचरण विद्याचरण आदि विद्याओ से युक्त होने के साथ ही साथ आगमव्यवहारी भी थे, अतएव सूत्रधारी साधु उनका अनुकरण नही कर सकते।

हनुमान का जन्म

अजना और बसन्तमाला मे यह बातचीत हो ही रही थी कि इतने मे ही अजना को ऐसा जान पडा मानो प्रसव वेदना हो रही हो। अजना ने बसन्तमाला से कहा–सखी, मुझे किसी सुरक्षित जगह ले चलो। मुझे प्रसव–वेदना सी मालूम होती है।

बसन्तमाला–सखी! इस सुनसान जगल मे कहा ले चलू?

अजना–सकट के समय साहस का त्याग मत करो। सामने वह पर्वत दिखाई देता है न, उसी पर्वत की गुफा मे मुझे ले चलो।

अजना और बसन्तमाला पर्वत की गुफा के पास पहुची तो देखती क्या है कि गुफा मे एक विकराल सिह मुह फाडे बैठा है। सिह को देखते ही बसन्तमाला के होश उड गये। अजना ने उसे धीरज देते हुए कहा–घबराने से कुछ भी लाभ नही होगा। सकट के समय धीरज रखना चाहिये। महात्मा के कथनानुसार मेरी कूख से परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा ओर उसकी रक्षा भी अवश्य ही होगी। जब बालक की रक्षा होने वाली है तो क्या उसे गर्भ मे धारण करने वाली की रक्षा नहीं होगी।

दैव योग से सिह इस बीच उठा और लीला करता हुआ कही अन्यत्र चला गया। अजना ने सिह की उसी गुफा मे तेजस्वी बालक को जन्म दिया। सद्यसजात शिशु के मुख मण्डल पर अनोखी आभा देखकर अजना निहाल हो गई। उसने बसन्तमाला से कहा–देख तो सही यह बालक कितना तेजस्वी हे।

बसन्तमाला भी इस समय हर्ष–विभोर हो रही थी। उसने बड ही चाव से बालक की ओर देखकर कहा–बालक के पिता यहा होते तो इसका जन्मोत्सव केसे ठाठ से मनाया जाता। लेकिन यह निर्जन वन मे जन्मा हे।

अजना–तू इसे दु ख का कारण समझ रही हे यह तरी भूल हे। सखी! इसके वन मे जन्म लेने का अवश्य ही कोई रहस्यपूर्ण कारण हाना चाहिये।

अब अजना मन ही मन चिन्ता करने लगी कि बालक की रक्षा किस प्रकार की जाय? अजना इसी चिन्ता मे डूबी थी कि इसी समय विमान के घटे का शब्द उसके कानो मे आ पडा। अचानक यह शब्द सुनकर बसन्तमाला गुफा से बाहर निकली। उसने देखा विमान इसी ओर चला आ रहा है। बसन्तमाला ने अजना से कहा, अजना भी चकित भाव से विमान की ओर देखने लगी। विमान तब तक और भी समीप आ पहुचा था। धीरे-धीरे विमान गुफा के पास आकर ठहर गया। विमान मे से एक भद्र पुरुष बाहर निकला और वह अजना की ओर आगे बढने लगा।

एक अपरिचित पुरुष को अपने समीप आते देखकर अजना सोचने लगी-यह नई विपदा फिर कहा से आ पडी?

इसी समय वह भद्र पुरुष अजना के समीप आ पहुचा। अजना की व्यग्रता देख उन्होने कहा-बेटी, मैं कोई पराया नही तेरा मामा हनुमत्पाटन का स्वामी हू। मुझे ज्ञात हुआ कि तुम्हे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है इसलिये मैं तुम्हे लेने के लिये ही यहा आया हू। चलो मेरे साथ विमान मे बैठकर घर चलो।

अजना अपने मामा को पहचान गई। फिर भी वह कहने लगी-मामा आपके स्नेह के लिए मैं अनुगृहीता हू। लेकिन इस वन मे मैं बहुत आनन्द मे हू।

अजना ने अपना पिछला सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि किस प्रकार मुनि के दर्शन हुए और किस प्रकार मुनि ने भूत और भविष्य का वृत्तान्त बतलाया। यह सब बाते सुनकर अजना के मामा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने घर चलने का आग्रह किया।

आखिर अजना अपने मामा के प्रबल आग्रह को टाल नही सकी। तब वह बसन्तमाला के साथ बालक को गोद मे लेकर विमान मे बैठी और विमान हनुमत्पाटन की ओर रवाना हुआ। रास्ते मे अजना अपनी सखी के साथ धर्म की महिमा के विषय मे बाते करती चली जा रही थी। अचानक बालक विमान को देखकर और विमान के घण्टे की आवाज सुनकर खिलखिला कर हसा और उछलने लगा। अजना ने उसे उछलने से रोकने का बहुत प्रयत्न किया मगर उसने एक ऐसी उछाल मारी कि वह विमान से बाहर हो गया और देखते-देखते नीचे पर्वत के शिलापट पर जा पडा।

जो अजना भयानक से भयानक कष्ट आने पर भी पर्वत की तरह अकम्प रही थी उसका हृदय भय ओर आशका से काप उठा। उसके दु ख का पार न रहा। उसके मुह से एक आर्त्त चीख निकल पडी-हाय! मेरे बेटे की क्या गति हुई होगी! आह! यह विमान मेरे लिये तो विष के समान सिद्ध

हुआ। अजना के मामा के दुख का भी क्या पूछना! फिर भी उसने अजना को सान्त्वना देते हुए कहा—बेटी! तू धर्म को जानती है फिर भी इतनी विलख रही है! इस तरह विलखने और दुख मानने से कोई लाभ नहीं हो सकता। रोओ मत। मैं अभी जाकर बालक की जाच करता हू।

इस प्रकार अजना को सान्त्वना देकर और विमान को किसी उपयुक्त स्थान पर उतारकर अजना के मामा बालक को देखने गये। मामा जब बालक के पास पहुचे तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्होने देखा—बालक एक शिला पर पडा—पडा मुस्करा रहा है। जिस शिला पर बालक पडा था, वह टूट गई है। मामा ने बडी प्रसन्नता के साथ बालक को उठाकर गले लगा लिया। वह उसे अजना के पास ले आये और उसे सौंपते हुए बोले—तुम्हारे बालक को भला कौन मार सकता है? महात्माजी के कथनानुसार यह तो धर्म सहायक बनेगा, सीताजी की खोज करने वाला वज्रअगी रामदूत होगा।

जिन लोगो को धर्म पर श्रद्धा नहीं है, वे कथा के इस अश को कपोलकल्पित कहेगे। उनके ख्याल से ऐसी बाते सिर्फ कहने भर के लिये हैं। सच्चाई के साथ इनका कोई सरोकार नहीं है। लेकिन धर्म पर आस्था रखने वाले लोग कहेगे कि जिन माता—पिता ने बाईस वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, उनका पुत्र अगर इतना तेजस्वी और पराक्रमी हो तो इसमे अचरज ही क्या है? इस तरह जिन्हे धर्म पर विश्वास है उन्हे इस घटना से कोई चमत्कार या आश्चर्य नही जान पडेगा।

इस घटना के आधार पर कोई अपने पुत्र की इसी तरह परीक्षा करना चाहेगा तो वह बुद्धिमान नहीं कहलायेगा। ऐसे लोगो को पुत्र की परीक्षा करने से पहले अपने ब्रह्मचर्य की परीक्षा करनी चाहिए।

अहमदनगर मे प्रोफेसर राममूर्ति मुझसे मिले थे। वे कहते थे—पाच वर्ष का कोई बालक मेरे सुपर्द कर दिया जाय ओर वह मेरे निर्देश के अनुसार चले तो मैं बीस वर्ष की उम्र मे ही उसे अपने समान दृढशरीरी बना सकता हू। इस तरह जब बाह्य प्रयोग के द्वारा भी दृढशरीरी बनाया जा सकता हे तो ब्रह्मचर्य के प्रयोग से सकल्प के अनुसार सिद्धि होने मे आश्चर्य ही क्या हे? ब्रह्मचर्य मे असीम शक्ति है। इसी प्रकार धर्मशक्ति भी कुछ कम नही हे। धर्म की शक्ति से शरीर मे भी कचास नहीं रह पाती।

कौन ऐसा अभागा होगा जो स्वस्थ और सुन्दर सन्तान की अभिलाषा न रखता हो? परन्तु इस अभिलाषा को सफल बनाने के लिये धर्म ओर ब्रह्मचर्य

का पालन करने वाले कितने मिलेगे? आज अजना नही है
है और हनुमान भी नही है। फिर भी जिस धर्म की शक्ति
तो आज भी मौजूद है। अतएव धर्म को अधिक से अधिक
कार्यान्वित करना चाहिये। धर्म के पालन से ही कल्याण है।

राजकुमारी होने पर भी अजना के पास कुछ नहीं
उसके पास एक पभावशाली वस्तु थी जिसे चरित्रबल कहते है।
पभाव से उसे सभी कुछ वापिस मिल गया और उसके सकट
चरित्रबल का ऐसा पभाव है। अतएव हमे भी चरित्रबल प्राप्त
उसे विकसित करना चाहिये और उसकी रक्षा करनी चाहिये।
इहलोक मे भी कल्याण होता है और परलोक मे भी। चरित्रबल से ही
बलवान् बनती है और चरित्रबल से ही आत्मा का उत्थान होता है।
के नाश से आत्मा का पतन होता है जिसमे चरित्रबल नही है
आत्मा का उत्थान या कल्याण नहीं कर सकता। इसी अभिप्राय से
मे कहा गया है–

नायमात्मा बलहीनेन लभ्य

अर्थात्–जिसमे चरित्र का बल नहीं है वह आत्मा को
स्वरूप को पाप्त नहीं कर सकता।

उपनिषद् के इस वाक्य का आशय यह है कि जिस
का बल नहीं है वह आत्मा का स्वरूप नहीं समझ सकता और जो आत्मा
स्वरूप ही नहीं समझ सकता वह आत्मा का कल्याण कैसे कर सकता है
इसलिये आत्म–कल्याण करने की इच्छा रखने वाले को चरित्रबल प्राप्त करने
का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। चरित्रबल की प्राप्ति ही आत्मोत्थान की
चाबी है।

मामा के घर पर

अजना मामा के घर पहुची। उसकी मामी ने यथोचित सत्कार करके
कुशल–क्षेम के समाचार पूछे। अजना की पिछली जीवन–घटना सुनकर
सबको दु ख तो हुआ मगर अन्तत सकुशल घर आ पहुचने के कारण वह दु ख
भी पसन्नता मे छिप गया। मामा ने उत्साह ओर उमग के साथ बालक का
जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम हनुमान कुमार रखा गया। यद्यपि अजना
को अपने मामा के घर किसी प्रकार का कष्ट नहीं था–सब प्रकार का सुख
भी था फिर भी उसका हृदय अतीत काल की स्मृतियो के कारण व्यथित रहता

था। सर्वथा निष्कलक होने पर भी सास–ससुर तथा माता–पिता ने उसे कलक लगाया है, यह स्मृति उसे बिच्छू का डक लगने के समान मालूम होती थी।

अजना के मुख पर उदासीनता देखकर उसके मामा ने कहा– आज सारा नगर तुम्हारे पुत्र के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे आनन्द मना रहा है ओर तुम स्वय ऐसी उदास दिखाई देती हो इसका क्या कारण है? तुमने जिन कष्टो को सहन किया है उनका स्मरण हो आया है अथवा यहा भी कोई कष्ट है?

अजना– यहा मुझे किसी बात का कष्ट नहीं है। मुझे इसके लिये भी दु ख नहीं है कि पहले अनेक कष्ट सहन करने पडे हैं क्योकि मैंने जो कष्ट सहे हैं, उसके बदले मे बहुत कुछ पा सकी हू। मैं वन मे न गई होती तो महात्माजी के दर्शन करने का लाभ न मिलता और अपने भूत तथा इस जीवन की भावी घटनाओ से भी में अज्ञात रह जाती। इस प्रकार वन मे जो आनन्द मिला है, उसके आगे सारे आनन्द तुच्छ प्रतीत होते हैं। जगल मे तो मेरा मगल ही हुआ है। मैं वन का बहुत उपकार मानती हू। इसी प्रकार सास–ससुर और माता–पिता के व्यवहार के कारण भी दु ख नही मानती क्योकि अगर वे मुझे घर से बाहर न निकालते तो मैं वन के लाभ ओर आनन्द से वचित रह जाती। इस कारण मैं उन सबका भी उपकार ही मानती हू।

इसके बाद कुछ रुककर अजना फिर कहने लगी– मुझे ओर तो किसी प्रकार का दु ख नहीं है परन्तु जब से पति युद्ध मे गये हैं तब से आज तक उनका कुछ भी कुशल समाचार नही मिला। इसलिये जरूर मेरे चित्त मे उदासी बनी रहती है। वे एक बार आ जाते तो मेरा कलक धुल जाता और दर्शन भी हो जाते।

अजना के इस कथन के उत्तर मे उसके मामा ने कहा तुम्हारी वाता मे मुझे तो परस्पर विरोध दिखाई देता है। अभी तो तुमने कहा था कि वन मे जाने पर महात्माजी के द्वारा तुमने अपने जीवन की भूत–भविष्यकाल की घटनाए जान ली हैं। अभी–अभी तुम पवनकुमार के विषय मे चिन्ता प्रकट कर रही हो। जब महात्माजी ने कह दिया हे कि पवनकुमार विजयी होकर आयेगे और तुम्हारा मिलाप होगा तो फिर इस प्रकार की चिन्ता क्या करती हा?

महात्माजी ने पुत्र के विषय मे जो वात कही थी उस पर तो तुम्हे विश्वास हे लेकिन पति के विषय मे कही हुई वातो पर सन्देह करती हा। इसका क्या कारण हे?

मामा की बात सुनकर अजना बोली—वास्तव मे मुझे भान ही नही रहा। आपने समय पर चेतावनी देकर मेरा बडा हित किया है। अब मैं किसी पकार की चिन्ता न करके आनन्दपूर्वक रहूगी।

कभी—कभी महापुरुष भी भमणा मे पड जाते हैं। उस समय उन्हे भी दूसरो की सहायता की आवश्यकता पडती है। इसके बाद अजना शातिपूर्वक मामा के घर रहने लगी।

अंजना की खोज

अब जरा पवनकुमार की ओर ध्यान दीजिये। इधर जब अजना अनेक कल्पित घटनाओ के चक्र मे पडी घूम रही थी तब पवनकुमार भी अनेक नवीन—नवीन परिस्थितियो मे से गुजर रहे थे। दोनो ओर साथ ही साथ घटना चक घूम रहा था। लेकिन एक साथ घटने वाली दो घटनाओ का वर्णन एक ही साथ नही किया जा सकता। एक घटना क्रम का वर्णन समाप्त होने पर ही दूसरे के विषय मे कहा जा सकता है। अतएव अब यह देखना है कि पवनकुमार ने अजना के महल मे से निकलने के बाद क्या—क्या किया?

अजना के महल मे से निकलकर पवनकुमार राजा रावण के साथ युद्धक्षेत्र के लिए रवाना हुआ। पवनकुमार को देखकर रावण ने कहा—राजा पह्लाद स्वय नही आये। उन्होने अपने बदले अपने पुत्र को भेजा है।

रावण के मत्री ने कहा—जब पुत्र योग्य हो गया हो तो पिता को युद्ध के लिये आने की क्या आवश्यकता है?

रावण—तुम्हारी बात सही है लेकिन पवनकुमार क्या वरुण पर विजय पाप्त कर सकेगा?

मत्री—महाराज! राजा प्रह्लाद को अपने पुत्र पर भरोसा न होता तो वे उसे भेजते ही क्यों? जब उन्होने भेजा है तो अवश्य ही उन्हे अपने पुत्र के युद्ध—कोशल पर विश्वास होगा।

रावण—ठीक है। पवनकुमार कितना पराक्रमी है, सो अभी युद्धक्षेत्र मे मालूम हो जायेगा।

पवनकुमार ने रावण की ओर से वरुण के साथ युद्ध किया। युद्ध मे पवनकुमार को विजय प्राप्त हुई। खरदूषण को बन्धनमुक्त करके वह रावण के पास ले आया। पवनकुमार की विजय और खरदूषण की मुक्ति से रावण बहुत पसन्न हुआ। वह पवनकुमार के पराक्रम की प्रशसा करने लगा—उसने पवनकुमार का खूब आदर—सत्कार किया उसे पुरस्कार दिया।

पवनकुमार विजय प्राप्त करने के बाद रावण द्वारा किये हुए सत्कार और पुरस्कार को शिरोधार्य करके वहा रहा अवश्य लेकिन उसका चित्त उस समय भी अजना मे ही लगा था। भक्ति मे बडा बल है। भक्ति के बल के कारण ही सग्राम के अवसर पर भी पुरुष का चित्त अपनी पत्नी की ओर आकर्षित होता रहता है। इसी प्रकार अगर परमात्मा के प्रति विनम्र भक्तिभाव रखा जाय तो तुम्हारा चित्त परमात्मा मे लीन हुए बिना नहीं रह सकता। अनन्त शक्तियो के तेजस्वी पुज परमात्मा के आगे निर्बल बनने से आत्मा को ईश्वरीय बल प्राप्त होता है। जो परमात्मा के आगे निर्बल बन जाता है और ससार सबधी बलो का आसरा छोड देता है, उसी को देवी बल प्राप्त होता है।

पवनकुमार का चित्त अजना मे ही लगा था। वह यही सोचा करता कि मैं उस सती से कब मिल सकूगा? बाईस वर्ष तक मैंने उस पतिव्रता को अनेक कष्ट दिये हैं। युद्ध के लिए रवाना होते समय भी मैंने उसका तिरस्कार किया था। लेकिन धन्य है वह सती जिसने अपने मन मे लेश मात्र भी दुर्भाव नही आने दिया और अपने निश्चय पर अटल रही। मैं इतना दुर्व्यवहार करने के बाद जब उसके पास गया तो उसने मुझे अपराधी नहीं माना और अपने आपको ही अपराधी समझा। सचमुच वह सती अपनी जीवन–परीक्षा मे उत्तीर्ण हुई है। मैंने जब उससे विदाई ली तो उसने कहा था–'मुझे कही कष्ट मे न पडना पडे, अतएव अपने मिलने की साक्षी–स्वरूप कुछ न कुछ देते जाइये।' कही ऐसा न हो कि सती की आशका सत्य सिद्ध हो जाय! मेरी माता का स्वभाव है भी कठोर। मैं जब तक सती के कुशल–समाचार न जान लू तब तक सुखी ओर सन्तुष्ट कैसे हो सकता हू?

रावण के यहा कुछ दिन ठहरने के बाद पवनकुमार अजना से मिलने की भावना करता हुआ अपने घर के लिये रवाना हुआ। राजा प्रह्लाद का मालूम हुआ कि पवनकुमार युद्ध मे विजय प्राप्त करके घर आ रहा हे। यह सुखद समाचार सुनकर राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। पवनकुमार का विजय स्वागत करने के लिए सारा नगर सजाया गया। पवनकुमार ने अत्यन्त हर्ष ओर उत्कठा के साथ नगर मे प्रवेश किया।

राजमहल मे आने पर पवनकुमार ने माता–पिता को प्रणाम किया ओर उनसे कुशल समाचार पूछे। इसके बाद सब गुरुजना से आशीर्वाद लेकर वह अजना से मिलने के लिए अपने महल चले गये। किसी को साहस ही न हुआ कि अजना के सबध का वृत्तान्त पवनकुमार के कानों तक पहुचा द।

अजना के महल मे पवेश करते हुए पवनकुमार ने अपने मित्र पहस्त से कहा–भाई! हम लोग उस रात्रि मे जब इस महल मे आये थे तो यह कितना सुहावना लगता था। आज वैसा नहीं लग रहा है। जान पडता है अजना महल मे नही है। अजना महल मे होती तो उसकी सखी बसन्तमाला अवश्य दिखाई देती। अजना–विहीन यह महल जलरहित सरोवर के समान या प्राणशून्य देह के समान जान पडता है।

प्रहस्त–मैं आगे चलकर तलाश करता हू कि अजना महल मे है या नहीं?

यह कहकर पहस्त ने कदम बढाये। वह महल मे पहुचा। पर अजना के होने का कोई चिन्ह उसे दृष्टिगोचर न हुआ। तब तक पवनकुमार भी वहा आ पहुचे थे। उनके आते ही पहस्त ने कहा–महल मे अजना तो है ही नहीं।

वहा मौजूद दास दासियो से अजना के विषय मे पूछताछ की गई। एक दासी ने बतलाया–'आपके चले जाने के बाद अजना देवी गर्भवती हो गई थी। आपकी माताजी को सन्देह हुआ कि यह गर्भ मेरे पुत्र का नही है। इसी आधार पर उन्हे घर से निकाल दिया गया क्योकि उन्हे घर मे रखने से कुल को कलक लगने की तथा निन्दा होने की सम्भावना थी।

दासी के ये वचन पवनकुमार के हृदय मे विषैले बाण की तरह चुभ गये। उन्हे कितनी व्यथा और कितनी वेदना हुई होगी, इसका अनुमान करना भी कठिन है। वह बोले–घोर अनर्थ हो गया! मुझसे बडी भूल हुई कि मैंने माताजी से नही कह दिया कि मैं अजना से मिल चुका हू। मेरी इस भूल का ही यह दुष्परिणाम है। लेकिन माताजी को मेरे आने की प्रतीक्षा तो करनी चाहिये थी। मेरे लौटने तक तो धीरज रखना था। मैं क्या सदा के लिये चला गया था?

प्रहस्त बोला–जब कुल को कलक लगने का भय हो और क्रोध चढ आया हो धैर्य कैसे रह सकता है।

पवनकुमार–तुम्हारी बात भी ठीक है। मेरी भूल के कारण ही एक सती कलकित समझी गई और घर से निकाली गई है। उस सती ने जो आशका की थी वह आखिर सच ही निकली।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा–अजना कदाचित् मायके गई हो। हम लोग महेन्द्रपुर चले।

प्रहस्त–महेन्द्रपुर जाने से पहले माता–पिता को जतला देना उचित होगा।

पवन.–ठीक है तुम खबर दे आना।

पवनकुमार और प्रहस्त महेन्द्रपुर जाने के लिए रवाना हुए। राजा महेन्द्र को मालूम हुआ कि पवनकुमार अजना की खोज करने के लिये आ रहे हैं। उन्होने नगर को सजाकर पवनकुमार का खूब स्वागत किया। मगर यह दुविधा उनके हृदय मे शल्य की भाति चुभ रही थी कि अजना के विषय मे पूछे जाने वाले प्रश्नो का इन्हे क्या उत्तर दिया जायेगा? इधर अजना की माता भी अजना को आश्रय न देने के लिये घोर पश्चाताप कर रही थी।

ससुराल मे जिस ढग से उनका स्वागत किया गया, उससे पवनकुमार को आशा बन्ध गई कि अजना यहीं होनी चाहिये। जब वह भोजन करने बैठे तब भी उनकी यही धारणा थी। लेकिन जब भोजन सामग्री से सुशोभित थाल उनके सामने आये तो पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—'मित्र! हम लोग भोजन करने और मजामौज लूटने आये हैं या अजना की खोज करने? मुझे तो ऐसा जान पडता है कि अजना यहा भी नहीं है। कदाचित् अजना न दिखाई देती तो अजना का छोटा—सा शिशु तो नजर आता ही। कदाचित् वह भी नजर न आता तो अजना की सखी बसन्तमाला नजर आती। मगर यहा तो इनमे से कोई भी नहीं दिखता। इससे अनुमान होता है कि अजना यहा नही है।

प्रहस्त—आपका कहना यथार्थ है। हम लोग जिस काम के लिये निकले हैं, वह पहले करना चाहिये। पहले अजना देवी की तलाश और फिर भोजन करना चाहिये। जब श्री कृष्ण दुर्योधन के घर गये थे तो दुर्योधन ने उन्हे अपने पक्ष मे करने के लिये भोजन आदि की बडी—बडी तैयारिया की थी मगर श्री कृष्ण ने उन तैयारियो पर तनिक भी ध्यान न देते हुए यही कहा था कि मैं जिस काम के लिये आया हू, सबसे पहले वही काम करूगा। उसके बाद भोजनादि के काम निबटाऊगा। दुर्योधन ने आग्रह किया कि पहले भोजन तो कर लीजिये, फिर काम तो हे ही। परन्तु नीति—निपुण श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—मैं यहा भोजन करने नहीं आया हू, कार्य के लिये आया हू। अतएव मुझे सबसे पहले वही काम करना चाहिये जिसके लिए मैं आया हू।

प्रहस्त ने भी पवनकुमार का समर्थन करते हुए यही कहा कि हम सर्वप्रथम अजना देवी की खोज करनी चाहिये और उसके बाद ही भोजन करना चाहिये।

प्रहस्त—यह कह ही रहे थे कि उसी समय पवनकुमार के साल की लडकी वहा आ पहुची। पवनकुमार ने प्रेम से उसे अपने पास बुलाया और पूछा—बिटिया तुम्हारी बूआ (फूफी) कहा है? उसन कहा—मरी फूफी ता कलक लगाकर आई थी इसलिये मेर पिताजी तथा दादाजी वगैरह न उन्हे यहा नहीं रहने दिया।

यह समाचार सुनकर पवनकुमार को बहुत दु ख हुआ। ऐसी दु खमय स्थिति मे उन्हे भोजन भाता ही कैसे? पवनकुमार ने अपने मित्र से कहा–अब यहा रहने मे कोई सार नही है। चलो, यहा से जल्दी चल दे। जिस घर मे मेरी पत्नी को और उनकी पुत्री को आश्रय नही मिला, उस घर मे मैं भोजन कैसे कर सकता हू? जब मैं अजना की खोज के लिये ही निकला हू तो फिर यहा भोजन कैसे कर सकता हू? मैं जानता हू कि अजना को आश्रय न देने के लिए मेरे ससुर आदि दोषी नही हैं। दोष तो मेरा ही है कि मैंने अजना के विषय मे अपनी माता को कोई सूचना ही नही दी। मेरे इस दोष के कारण ही अजना को इतने सकट सहने पडे हैं, जब तक अजना का पता न लगे तब तक भोजन न करने के निश्चय पर मुझे अटल रहना चाहिये।

इस प्रकार विचारकर पवनकुमार और प्रहस्त भोजन को हाथ जोडकर उठ बैठे। उन्होने भोजन नही किया। सास–ससुर ने भोजन करने के लिये बहुत आग्रह किया। उन्होने अपनी भूल स्वीकार की और पश्चात्ताप भी किया। लेकिन पवनकुमार अपने इस निश्चय पर डटे रहे कि जब तक अजना का पता नही लगेगा मैं भोजन नहीं करूगा।

राणा प्रताप ने भी प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चितौड का किला बादशाह से नहीं जीत लूगा, तब तक मैं राजमहल मे नही रहूगा। इस प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये वह जगल मे ही रहते थे। आमेर के राजा मानसिह ने सुना कि राणाप्रताप स्वदेश–रक्षा के लिये जगल मे रहते हैं तो उनके हृदय मे राणाप्रताप के प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न हुआ। राजपूतो के मस्तक को उन्नत रखने वाले राणा से मिलने का उन्होने निश्चय किया। उस समय राजा मानसिह, बादशाह अकबर की तरफ से युद्ध करने के लिये दक्षिण देश मे गये थे। दक्षिण से लौटते हुए वे राणा से मिलने गये। राणाप्रताप ने उनके लिये भोजन आदि की व्यवस्था करवाई, किन्तु मानसिह का भोजन–सत्कार करने के लिये वे स्वय नहीं गये। उन्होने अपने पुत्र को भेज दिया। राजा मानसिह ने राणा के पुत्र अमरसिह से पूछा – क्यो राणा नहीं आये?

अमर.–उनके बदले मैं आया हू।

मानसिह–मैं यहा भोजन करने नहीं आया। मैं राणा से मिलने आया हू।

उसी समय राणा ने आकर कहा–जिसने राजपूत होकर एक मुसलमान बादशाह को अपनी बहिन और फूफी ब्याह दी है और जिसने क्षत्रियत्व को कलक लगाया है उसके साथ में भोजन कैसे कर सकता हू?

मानसिह इस अपमान से एकदम क्रुद्ध हो गये। क्रोध के आवेश मे उन्होने कहा—इस अपमान का बदला चुकाया जायेगा।

राणा—अपमान का बदला लेने के लिये आप स्वय आना और अपने बहनोई को भी साथ लेते आना।

राजा मानसिह दात पीसते हुए वहा से रवाना हो गये। उन्होने राणा के घर भोजन नहीं किया। दिल्ली पहुचकर बादशाह से सारा वृत्तान्त कहा। उसके फलस्वरूप हल्दी घाटी का भीषण युद्ध हुआ।

पवनकुमार की सास ने और ससुर ने बहुत कुछ समझाया पर पवनकुमार ने भोजन नहीं किया। सास—ससुर समझ गये अब पवनकुमार को भोजन के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। पवनकुमार क्षत्रिय वीर हैं। उन्होने जो प्रतिज्ञा ले ली है उसका पालन किये बिना वे नहीं रहेगे।

महेन्द्र ने लज्जित भाव से उत्तर दिया—अजना किस ओर गई है इस बात पर हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया।

पवनकुमार और प्रहस्त ने वन की ओर गमन किया। प्रहस्त ने निर्जन वन मे पहुच कर कहा इस सुनसान वन मे हम लोग कहा जाएगे? यहा कोई पुरुष भी तो दिखाई नही देता। ऐसी स्थिति मे अकेली स्त्रिया यहा कैसे रह सकती हैं?

पवनकुमार ने कहा—कुछ भी हो अपने को तो अजना का पता लगाना है। मेरी यह प्रतिज्ञा अटल है—**"कार्य वा साधयामि शरीर वा पातयामि"** अर्थात् या तो कार्य सिद्ध कर लूगा या फिर शरीर का त्याग कर दूगा।

दोनो मित्र आगे बढते गये। प्रहस्त को पवनकुमार की प्रतिज्ञा के कारण बडी चिन्ता हो गई थी। काफी आगे बढ जाने पर भी जब किसी मनुष्य का दर्शन वहा न हुआ तो पवनकुमार के दिल मे निराशा—सी उत्पन्न होने लगी। प्रहस्त ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—आप धीरज न त्यागे। हम लोग पुरुष हैं तो अजना देवी की खोज करने मे हमे पुरुषार्थ करना ही चाहिये।

प्रहस्त के प्रेरक वचन सुनकर पवनकुमार ने कहा—मित्र! इस सकट के समय तुम मेरी बहुमूल्य सहायता कर रहे हो और मेरे साथ—साथ कितने ही कष्ट सहन कर रहे हो। मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हू। मित्र हो तो ऐसा ही हो।

सम्भव था कि पवनकुमार के प्रशसात्मक वचन सुनकर प्रहस्त को अभिमान हो आता लेकिन उसके हृदय मे लेशमात्र भी अभिमान उत्पन्न नही

हुआ। उसने सरलतापूर्वक यही उत्तर दिया—जब बसन्तमाला स्त्री होकर भी अजना देवी की इतनी सेवा कर रही है तो मैं पुरुष होकर आपकी थोडी—सी सेवा करू तो कौन बडी बात हुई? मैं तो अपने कर्त्तव्य का ही पालन कर रहा हू। इस विषय मे आप मेरा उपकार मानने का कष्ट न कीजिये।

दोनो मित्रो ने वन मे अजना की खूब खोज की पर कही पता नही चला। अन्त मे पवनकुमार ने कहा मित्र, मुझे तो ऐसा जान पडता है कि अजना अगर इस वन मे आई होगी तो जीवित ही नही रही होगी। या तो वह सिह या बाघ आदि हिसक पशुओ का आहार बन गई होगी या उसने स्वेच्छा से ही शरीर तज दिया होगा। ऐसी दशा मे अब मेरा भी जीवित रहना व्यर्थ है। जब अजना ही जीवित नही रही तो फिर मैं भी कैसे जीवित रह सकता हू? मित्र तुम पिताजी के पास जाओ और उनसे कह देना—पवनकुमार अब इस ससार मे नही है। जैसे आपने अजना का मोह छोड दिया है, उसी प्रकार पवन का भी मोह छोड दीजिये।

पवनकुमार का यह निराशाजनक कथन सुनकर प्रहस्त ने कहा—मित्र! आपको इस प्रकार कातर नही होना चाहिये। धीरज धरो, हिम्मत रखो। सब ठीक ही होगा। अपघात करने से कोई लाभ नहीं। इसके अतिरिक्त यह मान लेने का भी कोई कारण नही कि अजना देवी जीवित नही। सम्भव है वह जीवित हो और कहीं आपकी प्रतीक्षा कर रही हो। अगर वह जीवित होगी तो आपके अपघात करने के बाद उनकी क्या स्थिति होगी?

पवनकुमार—बात तुम्हारी यथार्थ है पर इस भयकर जगल मे उसका जीवित रहना कठिन है।

प्रहस्त—इस सबध मे अभी निश्चयात्मक कुछ भी नही कहा जा सकता। सम्भव है, कोई दैवी शक्ति प्रकट हुई हो और उनकी रक्षा भी हो गई हो। इसलिये आप अपघात करने का विचार एकदम छोड दीजिये। आज्ञा हो तो पिताजी के पास जाकर मैं समाचार कह देता हू। वे आकर जो आज्ञा दे, आप उसका पालन करना।

पवनकुमार को समझाकर प्रहस्त राजा प्रह्लाद के पास पहुचे। उसने राजा को सब समाचार सुनाये। यह भी कहा कि पवनकुमार निराश होकर अपघात करने के लिये तैयार हैं। आपके पहुचने तक मैं अपघात करने से उन्हे रोक आया हू। अब आपको जो उचित प्रतीत हो, कीजिए।

यह दु खद वृत्तान्त सुनकर राजा और रानी केतुमती के दु ख का पार न रहा। वे कहने लगे—हमारी एक भूल का परिणाम कितना भयकर हो रहा

हे। पवनकुमार के आने तक भी अजना को हमने न रखा और घर से निकाल दिया। इस भूल के कारण ही आज यह दुर्दिन देखना पड रहा हे। इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ राजा प्रह्लाद प्रहस्त के साथ पवनकुमार के पास जाने को तेयार हुआ। दोनो उसी जगल की ओर रवाना हो गये।

इधर प्रहस्त के चले जाने के पश्चात पवनकुमार विचारने लगे—अपघात करने का यही सबसे अच्छा अवसर है। प्रहस्त के सामने अपघात करना कठिन है। इस समय वह चला गया हे। दूसरा देखने व रोकने वाला नहीं है। इसी मौके पर जीवन का अन्त कर डालना ठीक है। यह सोचकर पवनकुमार जेसे ही अपघात करने का उपक्रम कर रहे थे कि उसी समय राजा प्रह्लाद वहा आ पहुचे। पवनकुमार को मरने के लिये तेयार देखकर प्रह्लाद ने कहा—यह क्या कर रहे हो? क्या औरत के पीछे जान दी जाती है? अभी तक दुनिया मे सती होने की ही बात सुनी जाती थी, पर तुम सत्ता बनने को तेयार हो रहे हो।

पिता का उपालभ सुनकर पवनकुमार कुछ क्षण चुप रहे। फिर उदास और गम्भीर भाव से बोले अजना साधारण स्त्री नही थी, पिताजी! वह सती थी। आपने जेसे उसका वियोग सह लिया हे उसी प्रकार मेरा भी वियोग सह लीजिये। यही मेरी प्रार्थना हे।

राजा प्रह्लाद ने जरा गम्भीरता से कहा—बेटा इस प्रकार अधीर होने से क्या लाभ होगा? जरा धीरज धरो। वह सती थी तो शील के प्रताप से उसका सकट भी अवश्य टल गया होगा। वह जीती—जागती अपने घर लोटेगी।

पवनकुमार बोले—में नहीं समझता कि वह जीवित रही होगी ओर उसके विना म जीवित नही रह सकता।

प्रह्लाद—मगर थोडी प्रतीक्षा करने मे हर्ज क्या हे? मैं अभी उसकी खोज करता हू।

राजा प्रह्लाद ने चारो ओर अपने नोकर ओर गुप्तचर भेज। जिस अजना को किसी ने क्षण भर भी आश्रय देना उचित नही समझा था उसी अजना की तलाश मे आज राजा प्रह्लाद के आदमी चारो दिशाआ म फेल हुए थे। यह सत्य ओर शील का ही प्रताप था। वास्तव मे सत्य मे महान् शक्ति हे। सत्य के प्रताप से भगवान् भी मिल जात हैं। आज कहा जाता हे कि भगवान कहीं दृष्टिगोचर नहीं होत लकिन भल ही भगवान दिखाई न द मगर सत्य ता दिखाई दता ह न? शास्त्र मे कहा हे 'त सच्च खु भगव'। अर्थात सत्य

ही भगवान् है। सत्य की आवश्यकता तो नास्तिक भी स्वीकार करते है। भूख लगने पर नास्तिक भी भूख लगी है इस पकार कहकर सत्य ही का सहारा लेते हैं। इस पकार जिस सत्य का आस्तिक और नास्तिक–दोनो आश्रय लेते हैं उसे अपने जीवन मे स्थान देना बडा ही कल्याणकारी है। जीवन मे सत्य की सक्रिय साधना करने से परमात्मा का भी साक्षात्कार होगा।

सम्मिलन

आखिर राजा प्रह्लाद का पयत्न सफल हुआ। उन्होने जिन लोगो को अजना की खोज करने भेजा था उनमे से एक ने आकर खबर दी, अजना अपने पुत्र के साथ इस समय हनुमत्पाटन मे है।

यह सुखद समाचार सुनकर राजा प्रह्लाद को कितनी प्रसन्नता हुई होगी यह कौन कह सकता है? पुत्र के प्राण बचे, पुत्रवधू की पुन प्राप्ति हुई और भी साथ ही पौत्र भी उन्होने पा लिया। राजा प्रह्लाद को इससे अधिक और क्या आनन्द हो सकता था।

राजा प्रह्लाद आज अत्यन्त प्रसन्न थे। समाचार पाते ही वे पवनकुमार के पास पवन की तरह तीव्र गति से दौड गये। पवनकुमार के पास पहुच कर वे बोले–बेटा चलो। अजना का पता लग गया है।

पवनकुमार सोचने लगे–पिताजी इस नाजुक मौके पर बनावटी बात नही कह सकते। फिर उनका प्रसन्न वदन ही उनकी बात की सच्चाई का प्रमाण दे रहा है। इस प्रकार विचार कर वह पिता के साथ चलने को तैयार हो गये।

राजा प्रह्लाद अपने परिवार के साथ हनुमत्पाटन के लिये रवाना हुए। अजना के मामा शूरसेन को राजा प्रह्लाद आदि के समाचार मिले तो अजना के पास पहुचे। अजना को सब समाचार सुनाकर उन्होने कहा–तुम्हारे प्रताप से आज प्रह्लाद राजा अचानक ही मेरे द्वार पर आ रहे हैं।

अजना की प्रसन्नता का पार ही नही था। उसने कहा–मामा यह मेरा नही आपका ही प्रताप है। वन मे पहुच कर आपने मेरी रक्षा न की होती तो आज यह सुअवसर ही न मिलता।

मामा ने सन्तोष के साथ कहा–बेटी यह सब तेरे सतीत्व की महिमा है।

इस प्रकार दोनो एक दूसरे को यश का भागी बताने लगे। इतने मे बसन्तमाला बीच मे बोल उठी—यह प्रताप तो उन मुनि महात्मा का है जिनके दर्शन वन मे हुए थे। उन महापुरुष का कथन बराबर सत्य सिद्ध हो रहा है।

अजना और उसके मामा ने बसन्तमाला के कथन का समर्थन किया। सभी मन ही मन महात्मा के प्रति विनीत श्रद्धाजलि अर्पित करने लगे।

राजा शूरसेन ने सारा नगर ध्वजा—पताकाओ से सजाया और राजा प्रह्लाद, राजकुमार पवन आदि का बडे ही ठाठ के साथ स्वागत किया।

पवनकुमार मन ही मन सोचने लगे—पिता की आज्ञा मानने से कल्याण होता है। यह शास्त्रवचन वास्तव मे सच्चा है। पिता की आज्ञा का उल्लघन करके मैंने प्राण त्याग दिये होते तो क्या स्थिति होती?

सब लोग राजा शूरसेन के महल मे आये। अजना आज खूब प्रसन्न थी। समय पर अजना और पवनकुमार का मिलन हुआ। दोनो एक दूसरे से प्रगाढ प्रेम के साथ मिले। दोनो के हृदय मे हर्ष का आवेग इतना प्रबल था कि इसके मारे किसी के मुख से कोई शब्द ही न निकल सका। दोनो एक दूसरे को देखते रहे मानो चिर पिपासु नेत्र अपनी प्यास बुझाने मे लगे थे। जब हर्ष की अधिकता होती है तो गला रुध जाता है। थोडी देर बाद पवनकुमार ने कहा—सकुशल तो हो न?

हर्ष के अतिरेक से अजना पवनकुमार के प्रश्न का उत्तर न दे सकी। इसी बीच बसन्तमाला भी वहा आ पहुची। पवनकुमार ने हसते हुए कहा—तुम्हारी सखी तो कुछ बोल ही नहीं सकती। तुम्ही अपनी मुसीबतो की कहानी सुनाओ।

बसन्तमाला को पिछली घटनाओ का स्मरण होते ही रोना आया। उसने कहा—हमारे ऊपर जो विपदाए पडीं उनकी बात न पूछिये। आपके जाने के बाद आपकी माताजी को सखी के गर्भ मे विषय म शका हुई ओर उन्होंने उन्हे घर से निकालकर बाहर कर दिया।

बोलने से मनुष्य के स्वभाव की परीक्षा हो जाती है। अमुक मनुष्य गम्भीर है या उच्छृखल ह यह जानने के लिये उसक थाड स बोल ही पर्याप्त हैं। गम्भीर मनुष्य छोटी—छोटी बाता की ओर ध्यान नही दत। बसन्तमाला दासी थी। उसमे अजना के समान गम्भीरता नहीं थी। इसलिय वह पवनकुमार से सभी छोटी—बडी बाते कहने म अपना गारव समझती थी। अजना एसी तुच्छ बातो को कहना अनावश्यक समझती थी।

बसन्तमाला कहने लगी–घर से निकलकर हम महेन्द्रपुर गई और फिर हम आदित्यपुर भी पहुची। लेकिन हमे कही भी आश्रय नही मिला। अजना देवी के पिताजी ने तो राज्य की सीमा मे भी न रहने का हुक्म दिया था। आखिर हम भूख–प्यास को झेलती वन मे पहुची। वन मे पहुचकर वहा के फलो–फूलो से भूख मिटाई। वन मे भटकते समय एक मुनि महात्मा के दर्शन हुए। उन महात्मा ने ही अजना देवी के भूत–भविष्य की बात सुनाई। उसी वन मे सिह की गुफा मे आपके इस तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। तभी इनके मामा राजा शूरसेन विमान लेकर आ पहुचे। जैसे–तैसे कुछ शान्ति पाने की आशा बधी थी कि बीच मे एक भीषण घटना घट गई। आपका यह वज्रागी बालक खेलते–कूदता अचानक विमान से उछल पडा और नीचे जा गिरा लेकिन आप सब के पुण्य–प्रताप से उसे तनिक भी चोट नही पहुची। इतना ही नही वरन् जिस शिला पर बालक गिरा था, उसके टुकडे–टुकडे हो गये।

इस प्रकार कहकर बसन्तमाला हनुमानकुमार को उठा लाई और धीरे से उसे पवनकुमार की गोद मे रख दिया। अपने तेजस्वी बालक को इतनी दुर्घटनाओ के बाद देखकर पवनकुमार को कितना आनन्द हुआ होगा।

सभी लोग हनुमान के समान तेजस्वी और बलिष्ठ पुत्र चाहते होगे परन्तु तेजस्वी सन्तान प्राप्त करने के लिये पवनकुमार और अजना के समान ब्रह्मचर्य पालने का भी विचार करना चाहिये। उनके समान ब्रह्मचर्य का पालन शक्य न हो तो अन्तत परस्त्री को माता बहिन के समान मानने से शील गुण उत्पन्न होगा और शीलगुण के साथ अन्य अनेक सद्गुण उत्पन्न होगे। अतएव शीलगुण प्राप्त करने के लिये सदैव ऊची और पवित्र भावना बनानी चाहिये।

तेजस्वी बालक को देखकर और उसके पराक्रम की कथा सुनकर पवनकुमार ने कहा–यह बालक वास्तव मे बडा पराक्रमी जान पडता है।

अजना इस कथन का कुछ उत्तर दे, उससे पहले ही बसन्तमाला बोल पडी– 'उस समये ऐसे घोर सकट की हालत थी कि बालक का जन्मोत्सव तक न मना सकी' इतना कहकर फिर बसन्तमाला रोने लगी।

तब अजना ने कहा– 'तू फिजूल बाते करके क्यो रो रही है? मैं दिखावटी उत्सव को कोई महत्व नहीं देती। मैं तो अन्त करण से यही चाहती हू कि बालक मे सत्यशील आवे और यह भी अपने पिता के समान पराक्रमी बने।

इतना कहकर ओर वसन्तमाला को शान्त करके अजना ने पवनकुमार से कहा– आपने हमारा वृत्तान्त तो पूछ लिया पर अपने विषय मे कुछ भी न बताया। अब आप अपनी बीती भी सुनाइये।

अजना का कथन सुनकर पवनकुमार सोचने लगे–वास्तव म यह सती परदु ख मे दु ख और परसुख मे सुख मानने वाली हे। यह अपना वृत्तान्त न कहकर मेरा वृत्तान्त पूछती हे। इस प्रकार मन ही मन सोचकर वह अजना से कहने लगे–तुमसे विदा लेकर में रावण के पास पहुचा। रावण ने मुझसे कहा–तुम आये सो अच्छा ही हे, मगर जब वरुण पर विजय प्राप्त करके आओगे तब में तुम्हारा सत्कार करूँगा। आखिर मे वरुण के साथ युद्ध करने गया। युद्ध एक वर्ष तक चलता रहा। एक वर्ष बाद मेरी विजय हुई। मेंने खरदूषण को शत्रु के पजे से छुडाया। रावण मेरी विजय से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। लोटने पर उसने मेरा खूब सत्कार किया।

युद्ध मे विजय प्राप्त करके जब में खुशी–खुशी घर आया तो तुम्हारे निकाले जाने का हृदयवेधी समाचार सुनने को मिला। में अपने मित्र प्रहस्त के साथ तुम्हारी खोज मे निकला। हम दोनो सीधे महेन्द्रपुर पहुचे पर वहा तुम्हारा पता नहीं लगा। वहा से निराश होकर भयानक वन म भटकते रहे। जब वहा भी तुम्हारा पता न मिला तो मुझे बडी निराशा हुई। निराशा से प्रेरित होकर मेंने प्राणत्याग करने का सकल्प कर लिया। अपना सकल्प जब मेंने प्रहस्त के सामने प्रकट किया तो वह बहुत दु खी हुआ। उसने मुझे समझाने का यत्न किया पर निराशा के अन्धकार मे मुझे कुछ सूझा नही। मेंने उसका कहना स्वीकार नहीं किया। आखिर उसने कहा–में आपके सकल्प की सूचना पिताजी को देकर आऊ तब तक आप प्राणत्याग न कर। मेंन यह स्वीकार किया किन्तु उसके चले जाने के बाद जब में अकला वन म रह गया ता फिर विचारो की आधी चलने लगी। सोचा–अभी एकान्त हे राकन वाला काई नही हे। प्रहस्त ओर पिताजी के आने से पहले ही अपने प्राणा का शरीर स मुक्त कर लेना अच्छा हे। यह सोचकर जेसे ही में अपन सकल्प का पूण करन क लिये उद्यत हुआ कि उसी समय पिताजी प्रहस्त के साथ आ पहुच। उन्हान मुझे प्राणत्याग नहीं करने दिया और आज हम लागा का मिलन का सुअवसर मिल गया।

पवनकुमार का वृत्तान्त सुन अजना क नत्रा म आसू आ गय। उसन कहा–मेरी तकदीर अच्छी थी कि एन माक पर पिताजी वन म जा पहुच। म परमात्मा आर अपने श्वसुरजी का उपकार मानती हू, जिन्हान मर सुहाग की रक्षा की।

पवनकुमार बोले मेरे हृदय मे तुम्हारे पति जो पेम जागृत हुआ, वह तुम्हारे सुन्दर शरीर के कारण नहीं वरन् सत्य और शील के कारण। मेरी भूल ने ही तुम्हे कष्ट मे डाला था। भूल का पायश्चित्त करने के निमित ही मै प्राणो का उत्सर्ग करना चाहता था।

धर्म का पालन करने के कारण ही आज हम अजना और पवनकुमार की पशसा करते हैं। राम की पशसा और रावण की निन्दा क्यो की जाती है? इसलिये कि राम मे धर्म और न्याय था किन्तु रावण मे धर्म और न्याय नही था। इससे भलीभाति सिद्ध होता है कि वास्तव मे व्यक्ति का स्वय कोई मूल्य नही है–मूल्य होता है उसके सद्‌गुणो का। गुण ही प्रशसापात्र होते हैं। अतएव पत्येक आत्महितैषी व्यक्ति को चाहिये कि वह धर्म और न्याय को अपने हृदय मे धारण करे। धर्म और न्याय को स्थान देने पर भी अगर कोई तुम्हारी प्रशसा नही करता तो न करे। तुम अपने हृदय मे इस प्रकार का विचार भी मत लाओ। दुनिया मे प्रशसा न होने पर भी धर्म और न्याय की आराधना निष्फल नही हो जायेगी। आगे चलकर एक–एक परमाणु का भी हिसाब होगा। इसलिये यह सोचकर हताश न होओ कि हमारी कोई गिनती ही नही करता। परमात्मा के यहा सबकी गणना है यह मानकर धर्म और न्याय को हृदय में स्थान देने का उत्साह पूर्वक प्रयत्न करो।

अजना और पवनकुमार को परमात्मा पर पूरी आस्था थी और इसी कारण वे दोनो अपने–अपने धर्म का पालन करने मे समर्थ हुए। परमात्मा सर्वज्ञ हैं ऐसा मानने से धर्म का पालन दृढता पूर्वक हो सकता है। जैसे सच्चा सेवक अपने स्वामी की अनुपस्थिति मे भी बराबर काम करता है उसी प्रकार सच्चा भक्त भी यही सोचता है कि मुझे दूसरा कोई देखे या न देखे, परमात्मा तो सभी जगह देखते ही है। जब जड मशीन भी अपना कार्य नियमित रूप से करती है तो क्या हम लोग चेतन विवेक विभूषित होकर भी जड मशीन की भाति भी अपना कार्य नियमित नही कर सकते? जब कोई देखे तो धर्म का पालन करे और जब देखने वाला न हो तो धर्म को धत्ता बता दे? सच्चे भक्त के लिये तो प्रतिक्षण धर्म तथा न्याय का आचरण करना ही बतलाया गया है। शास्त्र मे कहा है–

'से दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा, जागरमाणे वा।

अर्थात दिन हो या रात हो अकेला हो या समूह मे हो सोता हो या जागता हो जो समान भाव से धर्म पालन करता है वही सच्चा साधु या भक्त है।

राजा महेन्द्र भी उस समय हनुमत्पाटन मे पहुच गये थे। उन्होने पवनकुमार को महेन्द्रपुर चलने का निमत्रण दिया और राजा प्रह्लाद ने घर चलने को कहा। पवनकुमार ने विचार किया–पिताजी का घर ही मेरा है। अतएव अपने घर न जा कर श्वसुर के घर जाना अनुचित है। ससुराल मे कितना ही आदर क्यो न होता हो, आखिर तो अपने घर ही जाना पडता है। ऐसी स्थिति मे पहले अपने घर ही जाना उचित है।

पवनकुमार और अजना, हनुमानकुमार और बसन्तमाला सहित प्रह्लाद राजा के साथ अपने घर के लिये रवाना हुए। राजा शूरसेन ने विचारा–यद्यपि राजा महेन्द्र के साथ मेरा सीधा सबध है, फिर भी उचित तो यह है कि पहले पवनकुमार अपने घर जाए। अतएव मैं कैसे कह सकता हू कि वह पहले ससुराल जाए? इस प्रकार विचार कर शूरसेन ने पवनकुमार आदि को प्रसन्नतापूर्वक विदा दी।

राजा प्रह्लाद के आजाद का इस समय क्या कहना है? वह बडी ही प्रसन्नता के साथ पवनकुमार आदि को साथ लेकर घर की ओर चले। अपने नगर के बाहर तक आकर रानी केतुमती ने सबका स्वागत किया और फिर पवनकुमार को सम्बोधित करके कहा–बेटा! मैं तो तुझे भूल गई थी पर मेरे सौभाग्य से तू मुझे नहीं भूला था। मैंने तेरे आने की राह न देखकर अजना को घर से बाहर निकाल दिया।

केतुमती इतना कह पाई थी कि अजना वहा आ पहुची। उसने केतुमती के चरणो मे प्रणाम किया। केतुमती का दिल भर आया। गद्गद् कठ से वह बोली–बहू! मेंने तुम्हे बहुत कष्ट पहुचाये हैं। तुमने मुझसे बहुत कहा पर मेंने तुम्हारी बात पर कान नहीं दिया इतने पर भी तुमने मेरा परित्याग नहीं किया, यह तुम्हारी उदारता हे। बेटी! तुम बहुत गुणवती हो जेसे नोका समुद्र से तारती हे उसी तरह तुमने भी हम सबको तार दिया है। ऐसा कहते–कहते केतुमती की आखो से आसू बरसने लगे।

अजना ने अपनी सास को आश्वासन देते हुए कहा–माताजी! आप जरा भी खेद न करे। वह सब तो मेरे ही कर्मों का भोग था। इसम तुम क्या करती?

अजना चाहती तो सास को उपालम्भ दे सकती थी और अपनी स्थिति पर गर्व कर सकती थी। मगर वह विचार–शील रमणी थी। इसी कारण उसने ऐसा नही किया। वह बोली–आपकी मरे ऊपर बडी कृपा थी। इसीलिये आपने उस समय मेरा कहना नही माना था। कदाचित उस समय

आपने मेरी बात मानली होती और मुझे बाहर न निकाला होता तो आज जो अपूर्व और अद्भुत आनन्द प्राप्त हो रहा है, सो कैसे प्राप्त होता? इस घटना से मेरी जो प्रशसा हुई है, वह आपकी कृपा का फल है।

केतुमती पहले सोचती थी कि अब सभी लोग अजना के पक्ष मे है इस कारण अब वह बैर का बदला लेगी, परन्तु उसके नम्रतापूर्ण वचन सुनकर केतुमती को निश्चय हो गया कि अजना अपनी शक्ति से किसी को कष्ट नही पहुचाना चाहती।

अजना ने रागद्वेष पर बहुत कुछ विजय प्राप्त करली थी। यही कारण है कि वह भयकर से भयकर और अनुकूल से अनुकूल परिस्थितियो मे समभाव रख सकी। केतुमती पर अजना को क्रोध आना स्वाभाविक था। लेकिन उसने क्रोध न करके उलटा उपकार माना। वह कहती थी–सास ने मेरी परीक्षा की है। ईख की प्रशसा इसी कारण होती है कि घानी मे पेरने पर भी वह मिठास नही छोडती। सोने की प्रशसा तभी होती है जब वह ताप–कषछेद द्वारा शुद्ध होता है। जैसे विपत्ति सहने पर भी ईख और सोना अपना गुण नही त्यागते, उसी प्रकार अजना ने भी अपने सद्गुणो का परित्याग नही किया। क्या अजना के इस विवेकपूर्ण व्यवहार का असर दूसरो पर नही पडा होगा? अजना की उदारता देखकर सभी लोगो ने विचार किया होगा कि शक्ति होने पर भी क्षमा करना ही सच्ची क्षमा है।

सबने अपने दिल की बाते एक दूसरे से कह ली और परस्पर क्षमायाचना भी करली। इसके बाद केतुमती ने प्रह्लाद से कहा–अब पवनकुमार सब प्रकार से योग्य हो गया है। अजना भी योग्य है और फिर हमे पौत्र–रत्न भी प्राप्त हो गया है। अब हमे ससार व्यवहार मे ही नही फसे रहना चाहिये। अब अपने कधो का भार पवनकुमार और अजना को सौंपकर हम लोगो को आत्म कल्याण मे सलग्न होना चाहिये।

पहले के लोग पुत्र के योग्य होते ही अपने गृहस्थ जीवन का भार उसके सुपुर्द करके आत्म–कल्याण की आराधना मे सलग्न हो जाते थे। वे लोग आजकल के लोगो की तरह मरते दम तक हाय–हाय नही करते थे और न हाय–हाय करते मरते थे। उनके त्याग का प्रभाव उनकी सतान पर भी पडता था और फिर सतान भी यथा समय इसी त्याग के आदर्श का अनुकरण करती थी। किन्तु आजकल पुत्र–पौत्र के योग्य हो जाने पर भी लोग मरते समय तक सासारिक प्रपचो मे फसे रहते हे और हाय–हाय करते हुए ही मौत के शिकार होते हे। माता–पिता के इस व्यवहार का प्रभाव उनकी सन्तान पर

पडे बिना कैसे रह सकता है? नतीजा यह होता है कि सन्तान भी सासारिक कार्यों मे फसी रहना पसन्द करती है ओर अन्त मे वह भी झूर–झूरकर मरती है। माता–पिता त्याग के आदर्श का अनुकरण करे तो सतान त्याग का महत्व समझे और त्याग का अनुकरण करे।

एक आदमी हाय–हाय करते मरने का आदर्श अपनी सतान के सामने उपस्थित करता है और दूसरा आदमी त्याग का आदर्श रखता है। इन दोनो मे कौन अपनी सतान के सामने ऊचा आदर्श उपस्थित करता हे? इस प्रश्न के उत्तर मे आप यही कहेगे कि जिसने त्याग का आदर्श उपस्थित किया है, उसीने अच्छा काम किया है। अगर वास्तव मे ही आपको यह बात अच्छी लगती हो तो आप भी अपनी सतान के सामने यही आदर्श रखिए।

हनुमान की वीरता

राजा प्रह्लाद पवनकुमार को राजपाट सौंपकर केतुमती के साथ आत्मा का कल्याण करने के लिये वन मे गये। जब माता पिता वन मे चले गये तो पवनकुमार ने अजना से कहा–अब हम लोगो पर राज्य सबधी कर्त्तव्य का भार आ पडा है हमे क्या करना चाहिये?

अजना–हम लोगो के सामने माता–पिता ने त्याग का जो आदर्श उपस्थित किया हे उसी आदर्श के अनुसार हमे भी एक दिन हनुमान कुमार को राजपाट सौंपकर आत्मकल्याण करना चाहिये।

इस प्रकार अजना ने अपने हृदय की उच्च भावना व्यक्त की। उसने यह नही कहा कि माता–पिता के वन चले जाने के कारण अब हमे स्वतन्त्रता मिल पाई हे, इसलिये स्वतन्त्र होकर राजकीय वेभव भोगना चाहिये। ऐसी खराब भावना न करके ऊची भावना रखने के कारण ही अजना महासती वन सकी थी।

पवन कुमार ओर अजना हनुमान कुमार को उसके योग्य शिक्षा दन लगे।

यहा एक प्रश्न किया जा सकता है। वह यह हे कि–राजा प्रह्लाद पवन कुमार को राज्य भार सोंपकर वन मे चले गये और पवन कुमार हनुमान कुमार को सोंपकर जाने का विचार रखते हैं तो पहले ही राजपाट त्याग कर या स्वीकार ही न करके सयम क्यो नहीं धारण करते? इस प्रश्न का उत्तर यह हे कि शास्त्र मे कहा है कि पुत्र को राज्यासन पर स्थापित करने क वाद दीक्षा ली। शास्त्र के इस उल्लेख मे वहुत कुछ रहस्य छिपा हुआ ह। इस उल्लेख

से स्पष्ट जान पडता है कि ससार का भार किसी को सौपे बिना यो ही भाग जाना कोई बुद्धिमत्ता नही है। ऐसा करने से आत्मा का कल्याण तो होगा मगर अपना भार किसी को सौपने की व्यवस्था किये बिना ही चल देने से दूसरो पर इसका क्या प्रभाव पडेगा? इस बात को नजर के सामने रखकर अपने भार की समुचित व्यवस्था करने के पश्चात् ही सयम लिया जाता था। शास्त्र मे ऐसा ही आदर्श उल्लिखित हुआ देखा जाता है। आनन्द श्रावक ने भी अपने कुटुम्ब–परिवार के लोगो को इकट्ठा करके और उन्हे भोज देकर कहा था–अब मैं अपने स्थान पर अपने पुत्र को नियुक्त करता हू। इसलिये आपको जो कुछ पूछना हो, इसी से पूछना। मैं तो भगवान् महावीर का मार्ग ग्रहण करता हू। इस पकार आनन्द श्रावक ने आगे–पीछे की व्यवस्था करने के बाद ही ग्यारह प्रतिमाए धारण की थी। शास्त्रकार आनन्द श्रावक के चरित को आदर्श बतलाते हैं। व्यक्तिगत बात अलग है किन्तु समुचय रूप से तो यही राजमार्ग है। शास्त्र मे बतलाये हुए इस राजमार्ग पर चलने के विचार से ही पवनकुमार तथा अजना भी हनुमान को राजपाट सौंपकर सयम की आराधना द्वारा आत्मा का कल्याण करने की भावना रखते थे।

पवनकुमार के इस आदर्श को दृष्टि के सामने रखो और पुत्र जब योग्य हो जाय तो अपने कर्त्तव्य का भार उसे सौपकर आत्मकल्याण का मार्ग स्वीकार करो। इसी मे मनुष्य का सच्चा और शाश्वत हित है। तृष्णा मे फसे रहकर आखिर हाय–हाय करते हुए मरने मे न तुम्हारा हित है और न तुम्हारे कुटुम्ब का ही।

पवनकुमार जब राजा थे तब वरुण और रावण के बीच फिर झगडा पैदा हो गया। वासुदेव के अधीन रहने वाले राजा तो शान्त रहते हैं किन्तु प्रतिवासुदेव के राज्य मे एक न एक झगडा फसाद होता ही रहता है। रावण ने वरुण को दबाने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया लेकिन वह वरुण को जीत न सका। तब किसी ने रावण को सलाह दी वरुण को जीतने के लिये राजा पवनकुमार को बुलाना चाहिये। पहले भी उन्होने ही उसे परास्त किया था।

पवनकुमार को बुलाने की सलाह रावण को भी पसन्द आई। उसने पवनकुमार को ही बुलावा भेजा। पवनकुमार यद्यपि धर्म को जानते थे किन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन करना आवश्यक मानते थे। वरुणनाग नतुआ श्रावक था और बेला बेला का पारणा करता था, फिर भी जब राजा चेटक ने उसे युद्ध मे जाने का आदेश दिया तब वह पारणा करने के लिये भी नही

रुका। वह दो के बदले तीन उपवास करके स्वामी की आज्ञा पालने के लिये तत्काल युद्ध के लिये तैयार हो गया। इस प्रकार पहले के लोग अपना ही स्वार्थ न देखते हुए स्वामी की आज्ञा का पालन करना भी अपना कर्त्तव्य समझते थे।

रावण का बुलावा आने पर पवनकुमार युद्ध मे जाने के लिये तैयार हुए। कुमार हनुमान को पता चला कि पिताजी रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहे है। उन्होने सोचा—मेरे होते हुए पिताजी को युद्ध मे जाने की क्या आवश्यकता है? मेरे पिताजी अपने पिताजी को रोककर स्वय युद्ध मे गये थे तो मैं अपने पिताजी को रोक कर स्वय क्यो न जाऊ? वह युद्ध करने जाए और मैं घर मे बैठा रहू, यह उचित नही है। इस प्रकार विचार करके हनुमानकुमार अपने पिता के पास पहुचे। वे कहने लगे—आपको युद्ध मे जाने की क्या आवश्यकता है? जब मैं जाने को प्रस्तुत हू तो आपके जाने की आवश्यकता ही क्या है? अबकी बार मैं ही जाऊगा।

हनुमान की वीरतापूर्ण वाणी सुनकर पवनकुमार ने कहा— बेटा अभी तू बहुत छोटा हे। अभी तू युद्ध करने और शत्रुओ के आघातो को सहन करने के योग्य नहीं हुआ है। इस छोटी—सी उम्र मे तुझे युद्ध करने नही भेजा जा सकता।

हनुमान—आप मुझे छोटा न समझिये। मेरी उम्र भले ही थोडी हो पर मेरा पराक्रम शत्रुओ से जरा भी कम नहीं है। अकुश छोटा—सा होता हे लेकिन वह मदोन्मत्त हाथियो को अपने वश मे कर सकता हे। इसी प्रकार मैं भी वरुण को वश मे कर लूगा। आप मुझे युद्ध के लिये जाने की आज्ञा दे दीजिये।

पवनकुमार सोचने लगे—'हनुमान बालक होने पर भी वीर हे। उसके वचनो से ही वीरता टपकती हे। सिद्धान्तो मे कहा हे कि वीर की वीरता और कायर की कायरता उसके वचनो से ही झलक पडती हे।

हनुमान की वीरतापूर्ण बात सुनकर पवनकुमार को हर्ष ता हुआ लेकिन उसकी बालक—अवस्था देखत हुए अकेले को भेज दन की हिम्मत वह न कर सके। उन्होने सोचा—बालक हनुमान मेरे ही समान वीर हे लकिन वह वीर वरुण को कैसे जीत सकेगा? कदाचित हार गया ता मरी प्रतिष्ठा म बटटा लगेगा आर न जाने क्या अमगल हा जाय?

हनुमान अपने पिता के मन की बात भाप गय। उन्हान विनयपूर्वक कहा—पिताजी मालूम होता ह आपका मरी वीरता क विषय म सन्देह है। लेकिन मैं विश्वास दिलाता हू युद्ध मे मैं अवश्य ही विजयी हाकर लौटूगा।

जैसे आप छोटी उम्र मे युद्धक्षेत्र मे गये थे और विजयी होकर लौटे थे, उसी पकार मैं भी युद्धक्षेत्र मे अपनी वीरता का परिचय दूगा और विजय प्राप्त करके चारो दिशाओ मे आपकी कीर्ति–पताका फहराऊगा।

पवनकुमार हनुमान की वीरता और उत्साह पूर्ण बाते सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने उसे युद्ध के लिये जाने की आज्ञा दे दी। पिता की आज्ञा पाते ही हनुमान ने जाने की तैयारी शुरू कर दी। अपनी सेना तैयार की और माता–पिता को वन्दन करके वरुण के साथ युद्ध करने के लिये रवाना हुए।

उधर वरुण भी युद्ध के लिये अपनी सेना तैयार कर रहा था। जब उसे विदित हुआ कि पवनकुमार के बदले उसका किशोर वयस्क पुत्र हनुमान युद्ध करने आ रहा है तब वह मन ही मन मुस्कराया और कहने लगा– जान पडता है पवनकुमार युद्ध से डर गया है और इसी कारण वह अपने कोमल–काय पुत्र को भेज रहा है। हाय कितना निर्दय है वह जो मौत के भय से स्वय महल मे बैठा है और अपने नादान बालक को भेज रहा है। खैर, पवनकुमार स्वय आया होता तो युद्धक्षेत्र मे मैं उसके दात खट्टे कर देता लेकिन उस छोटे–से बालक के सामने मै क्या युद्ध करू। उसे तो मैं यो ही मसल सकता हू। पर ऐसा करने से दुनिया मे मेरी प्रशसा के बदले निन्दा ही होगी।

इस प्रकार विचारकर वरुण ने हनुमान के सामने युद्ध के लिये अपने पुत्रो को ही भेजने का विचार किया। वरुण ने अपने पुत्रो के सामने यह चर्चा की तो वे भी लडने को तैयार हो गये। वे कहने लगे–पिताजी! हम लोग रण मे विजय प्राप्त करके लौटेगे। इस प्रकार वरुणपुत्र भी रवाना हुए।

हनुमान युद्धकला मे प्रवीण थे। प्राचीनकाल मे युद्धकला भी सिखलाई जाती थी। उस समय आज की भाति उत्साहहीन बनाने वाली शिक्षा नही दी जाती थी वरन ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे विद्यार्थी वीर, धीर और गम्भीर बने।

हनुमान ने विद्याबल से सेना की ऐसी सुन्दर व्यूहरचना की थी कि शत्रुसैन्य को चारो ओर से घेर कर परास्त किया जा सके। उधर वरुण पुत्र भी अपनी सेना के साथ रण क्षेत्र मे आ पहुचे। सेनाओ मे मारकाट आरम्भ हो गई। वरुणपुत्र आरम्भ मे बडे उत्साह के साथ जूझे। हनुमानकुमार ने ऐसी योजना की थी कि शत्रुसेना ज्यो–ज्यो बीच मे आती गई त्यो–त्यो उनकी सेना पीछे हटती गई। यह देखकर वरुणकुमारो ने समझा कि हनुमान की सेना भाग रही है। लेकिन जब हनुमान ने देखा कि शत्रुओ की सेना युद्धभूमि के

बीचो–बीच आ पहुची है तब उन्होने चारो ओर से इतना प्रबल आक्रमण किया कि शत्रु–सेना घबरा उठी और इधर–उधर भागने लगी। वीर हनुमान ने अपनी सेना के वीरो को आज्ञा दी कि वरुणपुत्रो को पकड लिया जाय। आज्ञा पाते ही वरुणकुमार के पुत्र कैद कर लिये गये। उन्हे नागपाश मे बाध दिया गया। नायको के कैद हो जाने पर सेना कब ठहर सकती थी? वह इधर–उधर भाग खडी हुई। इस प्रकार वीर हनुमान ने युद्ध कौशल से तथा विद्याबल से शत्रुओ पर विजय प्राप्त की। हनुमान को विजयी हुआ देखकर रावण ने उसे खूब शाबाशी दी। उसका अच्छा आदर–सत्कार किया।

अपने पुत्रो के कैद होने का समाचार पाकर राजा वरुण उन्हे छुडाने और युद्ध करने के लिये आया। वरुण अब भी यही समझता था कि बालक हनुमान को जीत लेना तो खिलवाड के समान है।

वरुण को युद्धक्षेत्र मे आते देख कुमार हनुमान प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगे– अच्छा हुआ जो स्वय वरुण आ गया। मुझे तो इन्ही से मतलब है। मैं वरुण को ही कैद करना चाहता था।

वरुण को युद्धक्षेत्र मे अकेला आते देख हनुमान ने विचार किया–वरुण अकेला है इसलिये उसे वशमे करने के लिये विद्याबल की सहायता लेना उचित नहीं है ओर उसने विद्याबल की सहायता लेना छोड दिया।

उधर वरुण ने देखा बालक हनुमान अकेला है और वह रथ मे नही बैठा है, तो फिर उससे बडा होकर मैं रथ मे बैठकर युद्ध केसे कर सकता हू? इस तरह विचार करके वरुण भी रथ से नीचे उतर पडा।

हनुमान और वरुण मे मल्लयुद्ध होने लगा। कभी हनुमान नीचे गिर पडते तो कभी वरुण नीचे आ पहुचते। थोडी देर इसी तरह युद्ध होता रहा। परन्तु हनुमान आखिर अल्पवयस्क ठहरे और वरुण प्रोढ। वरुण ने हनुमान को पछाड दिया। वह हनुमान की छाती पर चढ बेठा और उसके बाल खीचन लगा। रावण यह सब दृश्य देख रहा था। उसने सोचा–हनुमान की हार मरी ही हार होगी। यह सोचकर उसने हनुमान को ललकारा। रावण की ललकार सुनते ही हनुमान मे दुगुणा साहस और बल आ गया। उसने ऐसा जार मारा कि वरुण नीचे आ गया और हनुमान उसकी छाती पर चढ बेठे। अन्त म वरुण भी केद कर लिया गया।

वरुण जब कद हो चुके तो उन्हे बडी उदासी आई। वह सोचन लगे–चाहे हनुमान ने वश मे किया हो चाहे रावण ने लकिन वास्तविकता यह है कि मैं पराधीन हो चुका हू। अब मुझे रावण के अधीन होकर रहना पडगा।

अब क्या उपाय किया जाय कि मैं पराधीन न बनू और रावण के सामने सिर न झुकाना पडे।

अन्त मे वरुण ने मन ही मन निश्चय करके कहा–'महाराज! भले ही आप मेरे प्राण ले ले पर मैं परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे के सामने मस्तक नही झुका सकूगा। अगर आप मुझे बन्धनमुक्त करदे तो मैं सयम स्वीकार कर आत्मा का कल्याण करना चाहता हू।

वरुण की बात सुनकर हनुमान ने रावण से कहा–जो पुरुष सयम स्वीकार करना चाहता है उसे बन्धन मे रखना योग्य नहीं है। अतएव राजा वरुण को मुक्त कर देना चाहिये।

हनुमान की सलाह मानकर रावण ने वरुण को मुक्त कर दिया। वरुण ने उसी समय सयम ग्रहण कर लिया। सयमधारी वरुण मुनि को रावण, और हनुमान आदि ने वन्दन किया। वन्दन करने के बाद वरुण मुनि ने रावण से कहा–आपका मान अखड रहा।

सयम का भली भाति पालन करते हुए वरुण मुनि ने आत्मा के कल्याण के लिये अन्यत्र विहार कर दिया।

वरुण मुनि के विहार होने के पश्चात् रावण वरुण के नगर मे गया। उनके पुत्रो को राज्यासन पर आसीन किया और अपनी अधीनता स्वीकार कराई। वरुणकुमारो ने विचार किया–हनुमान बालक होने पर भी अत्यन्त पराक्रमी हैं अगर अपनी बहिन का विवाह उसके साथ कर दिया जाय तो अच्छा होगा। आखिर हनुमान के साथ लग्न सम्बन्ध कर दिया गया। उन्होने रावण से कहा अब आपके साथ हमारा ऐसा सबध जुड गया है कि भविष्य मे विग्रह होने का कोई कारण उपस्थित न होगा।

इस विवाह सबध से रावण भी बहुत प्रसन्न हुआ। रावण, हनुमान को अपने साथ लका ले गया और वहा उनका दिल खोलकर सत्कार किया। उसने कहा–हनुमान कुमार! तुमने राजा वरुण को जीता है, इसलिये तुम्हे धन्यवाद देता हू।

हनुमान ने कहा–वरुण के विजेता आप हैं, मैं नही। मैं तो अभी बालक हू। इस प्रकार दोनो एक दूसरे को विजय का यश देने लगे।

आज तो यह हालत है कि दूसरो के किये काम को लोग अपना प्रकट करके स्वय यश लूटना चाहते हैं और अहकार मे फूले नहीं समाते। लेकिन वास्तव मे महान् है वह जो अहकार पर विजय प्राप्त करता है।

हनुमानकुमार के बर्त्ताव से अत्यन्त प्रसन्न होकर रावण ने उन्हे कुण्डल भेट किये और एक बडी जागीर पुरस्कार मे दी। इतना ही बस न

समझ कर रावण ने अपनी बहिन की लडकी खरदूषण की पुत्री का विवाह भी हनुमान के साथ कर दिया। खरदूषण ने यह सोचकर कि हनुमानकुमार के पिता ने ही मुझे एकबार बन्धन से छुडाया था, प्रसन्नता पूर्वक अपनी पुत्री उन्हे ब्याह दी। वास्तव मे कोन ऐसा बुद्धिमान होगा जो हनुमानकुमार जैसे पराक्रमी शूरवीर को अपनी कन्या न देना चाहे?

रावण और हनुमान परस्पर एक दूसरे को विजय का यश फिर देने लगे। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन दोनो मे अहकार नहीं था। रावण मे जब तक अहकार का उदय नहीं हुआ था, तब तक हनुमान ने उसका साथ दिया। बाद मे जब उन्होने समझा कि रावण अब अहकार का पुतला बन गया है तो उसका साथ छोड दिया। उसने अहकारहीन राम का साथ दिया।

यह बात ध्यान मे रखकर अहकार का त्याग करना ही उचित है। असल मे देखा जाय तो अहकार को जीत लेने पर ही भगवान् की उपासना हो सकती हे। निरहकारी ही परमात्मा का शरण–ग्रहण कर सकता है।

प्रवृज्या

कुछ दिनो बाद रावण से विदा लेकर हनुमानकुमार अपने घर लौटे। पवनकुमार ने बडे प्रेम से उनका स्वागत किया। अजना भी समस्त परिजनो को देखकर प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी अब दुनियादारी के पचडो मे ही मुझे नहीं पडा रहना चाहिये किन्तु आत्मा के कल्याण की ओर ध्यान देना चाहिये।

इस गहरे विचार के कारण पिछली रात मे उसकी नीद टूट गई। धर्म जागरण करती–करती वह सोचने लगी–पुत्र ने जो विजय प्राप्त की हे उससे क्या मेरी आत्मा की विजय हो सकेगी? इस समय मुझे जो भी सुख–सामग्री प्राप्त हुई हे, वह सब पहले की करनी का फल हे। लेकिन उस करनी को इस तरह सासारिक कार्यो मे ही खर्च कर देना उचित नही हे। उसी करनी की सहायता से आत्मकल्याण करना उचित हे। अगर इस समय यह न किया तो फिर कब ऐसा सुअवसर मिलेगा?

इस प्रकार विचार कर अजना सती पवनकुमार के पास गई। वह दोनो हाथ जोडकर उनके सामने खडी हो गई। पवनकुमार ने पूछा–कहो क्या बात हे? आज इस प्रकार प्रार्थी बनकर आने का क्या प्रयोजन हे?

अजना–आपसे कुछ याचना करने आई हू। किसी चीज की आवश्यकता न होती तो इस समय प्रार्थना करने आती ही क्या?

पवन.–तो कहो क्या इच्छा हे?

अजना—आपकी आज्ञा हो तो मैं धर्मकरनी मे लग जाना चाहती हू।

पवन॰—धर्म करने की मनाई कब है? खूब किया करो न।

अजना—मेरी इच्छा है कि समस्त सासारिक बन्धनो को त्याग कर एकमात्र धर्मक्रिया मे ही अपना शेष जीवन व्यतीत करू।

पवनकुमार अजना का आशय समझ गये। बोले—अजना, अचानक ऐसा विचार तुम्हारे हृदय मे कैसे उत्पन्न हुआ? पुत्र अभी छोटा है और नई बहुए घर पर आई हैं। यह तो आनन्द करने का अवसर है। आनन्द के इस अवसर पर तुम्हे विरक्ति का विचार क्यो आ रहा है? क्या घर मे रहकर ही धर्मक्रिया नही की जा सकती?

अजना—ससार मे ऐसे—ऐसे प्रलोभन हैं कि उनमे फस जाने पर एकाग्र भाव से धर्म की साधना नहीं हो सकती। कदाचित् आपका विचार मुझे सयम ग्रहण करने से रोकने का हो तो मै रुकने को भी तैयार हू, मगर इस शर्त पर कि आप मेरी मृत्यु रोक दे।

पवन॰—मृत्यु को रोकने की शक्ति तो किसी मे भी नही है। कौन जानता है कि कब काल आ जायेगा और कब किसको उठा ले जायेगा? काल स्वछन्द विहारी है। वह न रोकने से रुकता है और न बुलाने से आता ही है।

अजना—अगर आप काल को नही रोक सकते तो फिर मुझे सयम लेने से क्यो रोकते हैं? मीरा ने भी कहा था—

परणवु तो प्रीतम प्यारो अखंड अहवात—
म्हारा राडवानो भय टालो रे।

इसी प्रकार सती अजना ने कहा—पतिदेव! काल आकर कदाचित् आपको उठा ले जायेगा तो मुझे वैधव्य की वेदना भोगनी पडेगी और कदाचित् मुझे उठा ले गया तो आपको विधुरता की व्यथा होगी। ऐसी अवस्था मे काल के आने से पहले ही आत्मकल्याण कर लेना योग्य है। काल का भरोसा ही क्या है?

अजना का न्याययुक्त कथन सुनकर पवनकुमार को भी ठीक जचा। उन्होने अजना से कहा—थोडे दिन ठहर जाओ। फिर हम दोनो साथ—साथ सयम स्वीकार करेगे।

अजना—आपका कहना ठीक है। परन्तु जिसने मृत्यु को जीत लिया हो जो मृत्यु के आने पर भागकर बच सकता हो जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो या जिसे मृत्यु का भय न हो वह थोडे दिन राह देखे तो ठीक भी कहा

जा सकता है परन्तु मैं नहीं जानती कि मेरी मृत्यु कब आने वाली है? ऐसी दशा मे मैं समय का दुरुपयोग कैसे कर सकती हू?

पवनकुमार अजना की युक्तियुक्त बात का क्या उत्तर देते? उन्होने सोचा—जब अजना सयम स्वीकार कर रही है तो मैं गृहस्थी मे रहकर क्या करूगा?

पति—पत्नी—धर्म कैसा होता है, यह बात इस घटना से भलीभाति समझ मे आ जाता है। अजना सती ने जैसे पत्नी धर्म का आदर्श उपस्थित किया है, उसी प्रकार पवनकुमार ने पतिधर्म का ज्वलत उदाहरण सामने रख दिया है।

आज के पति—पत्नी धर्म को भूल रहे हैं। इसी कारण ससार मे दाम्पत्य जीवन दु खपूर्ण दिखाई देता है। आज साधारण तौर पर यह रिवाज चल पडा है कि पति एक पत्नी के मर जाने पर दूसरी और दूसरी के मर जाने पर तीसरी ब्याह लाता है। मगर यह अन्याय है। पुरुष अपनी स्त्री को तो पतिव्रता देखना चाहते हैं पर स्वय पत्नीव्रतधारी नहीं बनना चाहते। पुरुषो ने अपनी सुख—सुविधा के अनुकूल नियम घड लिये हैं। परन्तु शास्त्रकार स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अनुचित भेद न करते हुए, समान रूप से पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालने का आदेश देते हैं। शास्त्रकार उत्सर्ग मार्ग के रूप मे ब्रह्मचर्य पालन का आदेश देते हैं। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न हो तो पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालन करने के लिए कहते हैं। लेकिन पुरुष अपने आपको स्वस्त्रीसन्तोषव्रत से मुक्त समझते हैं और सिर्फ पत्नी से स्वपतिसन्तोषव्रत पालन कराना चाहते हैं। वे यह नहीं सोचते कि जब हम अपने व्रत का पालन नही करते तो स्त्री से यह आशा कैसे रख सकते हैं कि वह अपने व्रत का पालन कर ही। अतएव पुरुषो और स्त्रियो के लिए उचित मार्ग यही है कि दोनो अपने—अपने व्रत का पालन करे। जो व्रत का भली—भाति पालन करता है उसका कल्याण अवश्य होता है।

अजना सती के साथ पवनकुमार भी सयम स्वीकार करने के लिये तैयार हो गये। हनुमानकुमार को पता चला कि माता—पिता सयम स्वीकार करने के लिये तैयार हैं तो वह अपनी माता के पास पहुच। माता को प्रणाम करके उन्होने कहा— माताजी! आप मुझ बालक का परित्याग करके कहा जा रही हैं? घर मे रहकर आप धर्म—ध्यान कर सकती हैं। यहा धर्म—ध्यान के लिये कौन मनाई करता है?

अजना ने कहा—पुत्र, तुम व्यर्थ मोह मे पड रहे हो। क्षत्रिय सग्राम से भय नही खाते। मैं तुझे युद्ध मे जाने से रोकती तो क्या मैं वीरमाता कहला सकती थी? अगर नहीं तो तू मुझे क्यो रोकता है? मैं कर्मशत्रुओ को जीतने के लिये युद्ध मे जा रही हू। ऐसे मौके पर तू अपने को छोटी उम्र का कह कर मुझे दीक्षा लेने से रोकना चाहता है। यह क्षत्रिय पुत्र को शोभा नही देता। काल निर्दय है और शरीर दुर्बल है। कोई नही जानता कि कराल काल का कब आक्रमण हो जायेगा। ऐसी दशा मे कर्मशत्रुओ को जीतने के लिये जाती हुई अपनी माता को रोकना और वीरपुत्र होकर कायरता दिखलाना उचित नही है।

हनुमान धीर—वीर थे। वह समझ गये कि अब माता—पिता की रुचि गृहस्थ होकर रहने की नही हैं और बिना इच्छा के उन्हे रोक रखना उचित नही है। यह सोच कर दीक्षा महोत्सव करने की तैयारिया आरम्भ की। पवनकुमार और अजना ने यथा समय भावपूर्वक सयम अगीकार किया। हनुमान ने सोचा—अब मुझे माता के दर्शन कब होगे? यह सोचकर उन्होने माता के केश अपनी गोद मे ले लिये और उन्हे घर ले आये। उनकी धारणा थी कि जब—जब मैं इन केशो को देखूगा, तब—तब मुझे माता का स्मरण हो आयेगा और माता के केशो का दर्शन भी होगा।

अजना और पवनकुमार सयम का बराबर पालन करने लगे। सयम का विधिपूर्वक पालन करके अजना सती आयु का क्षय होने पर स्वर्ग गई और वहा से उनका जीव महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

यहा अजना सती की कथा समाप्त होती है। कथा का सार यही है कि जो मोह पर विजय प्राप्त करके धर्म पर दृढ श्रद्धा रखेगा और धर्म के मार्ग पर चलेगा वह अवश्य ही शाश्वत कल्याण का भागी होगा।

सकडाल पुत्र

श्रावक

ससार मे विरोधी–पक्ष सदा से चला आता है और किसी अपेक्षा से उसका होना भी आवश्यक है। बिना विरोधी–पक्ष के अच्छे–बुरे या हेय–उपादेय की पहचान नहीं हो सकती। यदि 'रात' न हो तो दिन को 'दिन' नाम से कोई न पुकारे। इसी प्रकार यदि विरोधी–पक्ष न हो तो वास्तविकता का कोई महत्व भी न रहे। उदाहरण के लिये 'झूठ' है , तभी 'सत्य' पहिचाना जाता है और उसका महत्व भी है। यदि झूठ न हो तो सत्य को केसे पहिचाना जा सकता है और उसका महत्व भी क्यो हो ? इससे सिद्ध हुआ कि वास्तविकता का कोई महत्व विरोधी–पक्ष के विना नहीं रहता है।

धर्म का विरोधी अधर्म हे। 'अधर्म' को पर्याय से ही 'धर्म जाना जाता है ओर उसका महत्व है। अधर्म से घवरा कर ही प्राणी धर्म की शरण लेता है। प्राणी, जव देख लेता है कि अधर्म से मेरी हर प्रकार हानि हे, मुझे सब तरह से अशाति है तभी वह धर्म का महत्व जान कर धर्म को उपादेय भी मानता है।

आत्मा का यह स्वभाव हे कि वह अधर्म के नाम से सदा डरता ही रहता है। कोई भी व्यक्ति अधर्म को अधर्म जान कर उसका सेवन नही करता। हाँ, यह बात दूसरी है कि कोई प्राणी किसी स्वार्थवश होकर या विवश हो कर अधर्म को समझता हुआ भी उसका सेवन करे या वह अधर्म उसे धर्म क रूप मे हृदयगम करा दिया गया हो–इसलिए उसका अनुसरण करे अन्यथा प्रत्येक प्राणी स्वभावत धर्मप्राप्ति की ही इच्छा रखता है।

यद्यपि आत्मा को धर्म प्रिय है। आत्माधर्म ही चाहता हे लेकिन कई वार वह स्वार्थियो के वहकावे मे पड कर लम्पटियो की कुयुक्तिया म उलझ कर धर्म के रूप मे अधर्म को भी अपना लेता हे। धर्म की स्थिति सिद्धाता पर है। मिथ्याभिमानी स्वार्थी एवम् विना त्याग किय ही यश–कीर्ति चाहन वाल लोग बुरे सिद्धातो के बल पर अपने अनुयायी बनान की चप्टा करत हैं। धम

से कोसो दूर ये बुरे सिद्धात धर्म के नाम पर लोगो के हृदय मे भर दिये जाते है जिससे लोग अधर्म को भी धर्म मान कर उसका सेवन करने लगते हैं।

धर्म के नाम पर अधर्म मे फस जाना साधारण मनुष्यो के लिए स्वाभाविक है। भोले-भाले लोगो मे लम्पटियो की कुयुक्तियो पर विचार करने की शक्ति कहा ? वे तो तात्कालिक समाधान पर सन्तुष्ट हो जाते हैं, और उसी आधार पर अधर्म को भी धर्म मानने लगते हैं। ऐसे अधर्मानुयायी यद्यपि अधर्म को मानते तो हैं धर्म समझ कर ही, लेकिन जिसे वे धर्म मान रहे हैं, उसे-उसके विरोधियो की बातो से जब तक आजमा न ले, दूसरे की बाते सुनकर अपने माने हुए धर्म को टकरा न ले, तब तक वह धर्म मानना भी अन्धश्रद्धा ही है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी मानी हुई बात को अपने आत्मा द्वारा या यदि वह शक्ति नही है तो दूसरे की बाते सुनकर और सुनी हुई बातो के विषय मे अपने धर्माध्यक्ष से निर्णय करके-सत्यता का विश्वास कर ले। साथ ही धर्म प्रचारको का भी यह कर्त्तव्य है कि वे, धर्म के नाम पर स्थित अधर्म को जनता के हृदय से निकालने और उसकी जगह धर्म को स्थान दिलाने के लिए चेष्टा करे। प्रमाण, युक्ति, हेतु आदि से धर्म-अधर्म का रूप समझावे तथा जिज्ञासु के हृदय से अधर्म को निकाल, धर्म स्थित करावे। उपासक दशाग सूत्र में वर्णित प्रस्तुत कथा मे यह बतलाया गया है कि भगवान महावीर ने सकडालपुत्र के हृदय से होनहार-वाद की श्रद्धा मिटा कर पुरुषार्थ की श्रद्धा किस प्रकार जमाई थी।

भगवान महावीर के समय मे भी धर्म के नाम पर अनेक अधर्म चल रहे थे। भगवान ने इस प्रकार के अधर्मो को मिटाने के लिये और शुद्ध धर्म का पुनरुद्धार करने के लिये अपने तन-मन को धर्म के अर्पण कर दिया था। उन्होने अधर्म मिटा कर धर्म फैलाने की शक्ति प्राप्त करने के लिए ही बारह वर्ष छ मास पन्द्रह दिन की दुष्कर तपस्या करने का कष्ट उठाया था। भगवान महावीर के समय मे धर्म के नाम पर चलने वाले अधर्मो मे से एक वह मत था कि जिसका सस्थापक मखलीपुत्र-गौशालक था। यद्यपि गौशालक पहले भगवान महावीर का ही शिष्य था लेकिन किसी कारण से वह भगवान महावीर के अनुशासन से निकल गया था और भगवान महावीर का निन्दक बनकर उसने एक दूसरे मत की स्थापना की थी। उसका मत होनहारवाद के सिद्धात पर स्थित था। वह अपने अनुयायियो को यह उपदेश देता कि जो कुछ होता है-होनहार से होता है। पुरुषार्थ से कुछ नही होता।

होनहारवाद और पुरुषार्थवाद ये दोनो परस्पर विरोधी हैं। भगवान महावीर पुरुषार्थवाद के उद्धारक थे और गौशालक होनहारवाद का सस्थापक था। भगवान महावीर का उपदेश था कि पुरुषार्थ से कोई भी कार्य कठिन नहीं है। पुरुषार्थ करने पर भी यदि एक बार कार्य मे सफलता नही मिली है तब भी पुरुषार्थ न छोडना चाहिए। पुरुषार्थ करते रहने पर उसमे सफलता मिलेगी ही। फल को देखकर निराश होना और पुरुषार्थ छोड देना कायरता है। वीरता नही है।

गीता मे भी कहा है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

तू कर्म करने का अधिकारी है फल कभी न देख। फल देखने से तू कर्म न कर सकेगा, तेरे मे कायरता आजावेगी।

गीता मे कहे हुए कर्म का अर्थ है– पुरुषार्थ। पुरुषार्थी को फल पर दृष्टि न देनी चाहिए। ऐसा करने से पुरुषार्थ मे कायरता आ जाने का भय है। भगवान महावीर का उपदेश यही था कि आत्मोद्धार के लिए पुरुषार्थ करो। लेकिन गोशालक पुरुषार्थ को अनावश्यक बतलाता था। वह कहता था कि पुरुषार्थ से कोई लाभ नहीं है। जो कुछ होना–होगा वह हो जायेगा। गोशालक का यह मत 'आजीविक–मत' कहलाता था। गौशालक के इस आजीविक मत के विचार से लोगो मे प्रमाद और अकर्मण्यता फेलती थी जिससे प्राणियो को बहुत हानि थी। एक नीतिकार ने कहा है–

प्रमादोहि वर शत्रु सदा तिष्ठति भित्तरे।

'आलस्य सब से बडा शत्रु हे और वह सदा भीतर शरीर म ही रहता है।

गोशालक अपने मत के प्रचार द्वारा लोगो मे आलस्य फेलाता था। लेकिन भगवान महावीर इस प्रचार का विरोध करते थे और गोशालक का मत मानने वाले को पुरुषार्थवाद का महत्व समझाकर उसके हृदय से हानहारवाद की श्रद्धा मिटाते थे।

गौशालक–जिस मत का सस्थापक एवम प्रचारक था उरा मत का एक पूर्ण अनुयायी पोलासपुर नामक नगर मे रहता था। इस अनुयायी का नाम सकडालपुत्र था। सकडालपुत्र जाति का कुम्हार था और गोशालक के चलाग हुए मत का अनन्य भक्त था।

लोकोत्तर धर्म–किसी जाति या व्यक्तिविशेष क लिय ही नही हे किन्तु सब के लिये हे। उत्तम से उत्तम कहलाने वाला जिस धर्म का उपासक

है उसी धर्म की उपासना एक नीच–से नीच कहलाने वाला भी कर सकता है। भगवान महावीर के समय मे लोगो ने धर्म को एक ठेके की वस्तु बना ली थी और नीच अछूत कहलाने वाले शूदो को उससे वचित कर दिया था। इतना ही नही बल्कि इन धर्म से वचित लोगो पर धर्म के नाम से अत्याचार भी किया जाता था। भगवान महावीर ने इस प्रथा का भी विरोध किया और अपने धर्म मे सब को स्थान दिया। भगवान की इस नीति का अनुकरण गौशालक ने भी किया था। इसी कारण कुम्हार होते हुए भी सकडालपुत्र उसके मत का अनुयायी था।

जिस प्रकार भगवान महावीर के गृहस्थ अनुयायी 'श्रमणोपासक' कहलाते हैं उसी प्रकार गौशालक के मत के गृहस्थ अनुयायी 'आजीविकोपासक' कहलाते थे। आजीविकोपासक लोग, गौशालक को ही अपना तीर्थकर तथा उपास्य मानते थे। गौशालक का मत किसी सच्चे सिद्धान्त के ऊपर स्थित नही था तथा गौशालक नकली तीर्थंकर था। इसलिये उसका मत अधिक समय तक नहीं चला और अब तो उसके मत की बात केवल जैन–शास्त्रो मे ही मिलती है।

सकडालपुत्र गौशालक के मत का पूर्ण अनुयायी था। यद्यपि वह धर्म' नामधारी अधर्म मे फसा हुआ था। लेकिन उसने उस मत का खूब मनन किया था जिससे उसे गौशालक के मत पर ऐसा विश्वास हो गया था कि उसकी हडडी–मज्जा मे भी आजीविक मत का प्रेमानुराग भरा हुआ था। सकडालपुत्र ने अन्ध श्रद्धालु की तरह गौशालक के मत पर भी विश्वास नही किया था किन्तु उसने अपनी बुद्धि के अनुसार उस मत के विषय मे गौशालक से खूब पूछताछ की थी और सशय कर–करके हृदय का समाधान कर लिया था।

किसी बात को विशेषत किसी धर्म पर–बिना परीक्षा किये ही एक दम से विश्वास कर लेना अन्धश्रद्धा कहलाती है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह जिस धर्म को स्वीकार करना चाहता है या अस्वीकार किया है, उसके विषय मे खूब अनुसन्धान करले तथा अपने हृदय का सब प्रकार से समाधान करले। जब तक धर्म के प्रति हृदय मे किसी प्रकार की शका है, धर्म के किसी भी बात के विषय मे सशय है तब तक वह धर्म का पूर्ण अनुयायी नही कहला सकता। पूर्ण अनुयायी तभी कहलावेगा जब उसने धर्म–विषयक सभी शकाए मिटा ली हो और अब उसके मन मे धर्म की ओर से किसी प्रकार का सशय शेष न रह गया हो। धर्म के विषय मे जितना अधिक सशय किया

जायेगा–धर्म पर उतना ही अधिक विश्वास होगा। वैसे तो धर्म की किसी बात के विषय मे सशय करना प्रमाद है। और प्रमाद काक्षा मोहनीय कर्म के बन्ध का हेतु है। लेकिन सशय दो प्रकार का होता है। एक सशय वस्तु निर्णयात्मक होता है और दूसरा सशय अविश्वास रूप होता है। पहले प्रकार का सशय, प्रमाद मे नहीं है किन्तु ज्ञान को बढाने वाला और ईहाज्ञान का एक भेद है। इस प्रकार का सशय समय–समय पर गौतम स्वामी को भी हुआ है। गौतम स्वामी के विषय मे 'जाय ससये' पाठ शास्त्र मे जगह–जगह मिलता है। इस प्रकार वस्तु निर्णयात्मक सशय प्रमाद मे नहीं है। इस सशय के लिए गीता मे कहा है–

न सशय मना राहो।

'सशय मे प्राप्त हुए बिना कोई भी आत्म कल्याण नही कर सकता है।'

दूसरा, अविश्वासरूप सशय–आत्मा का पतन कर देता है। ऐसे सशय के लिये कहा है–

सशयात्मा विनश्यति

'सशय से आत्मा का विनाश हो जाता है।

प्रमाद मे इसी सशय की गणना है और इसी सशय से कर्मबन्ध होता हे। धर्म के किसी बात के विषय मे सशय करना ओर उस सशय को नहीं मिटाना हृदय मे रहने देना, धर्म पर अविश्वास उत्पन्न करना हे और धर्म पर अविश्वास होना–कर्मबन्ध का हेतु है।

सकडालपुत्र ने गोशालक के मत के विषय मे सन्देह कर करके सब शकाए निवारण कर ली थीं तथा उस मत को शुद्ध रूप से अपने हृदय मे स्थान दिया था। वह, आजीविका मत को ही धर्म अर्थ एवम् परमार्थ मानता था। शेष सबको अनर्थ कहता था।

किसी विषय मे सशय तभी हो सकता हे जब उस विषय का मनन किया जावे। उस विषय पर विचार किए बिना उसको जाने विना शका हो तो किस पर और केसे? उदाहरण के लिये–एक मूर्ख आदमी के हाथ म पुस्तक देकर उससे पूछा जावे कि इस पुस्तक के विषय मे क्या सदेह हे? ता इरा प्रश्न के उत्तर मे वह अधिक से अधिक यही कह सकता हे कि मुझ इस पुस्तक के विषय मे कोई सन्देह नही हे। यद्यपि उसका यह उत्तर ठीक नही हे। लेकिन जब वह उस पुस्तक को पढ ही नही सकता हे ता दूसरा उत्तर क्या दे ? तात्पर्य यह कि धर्म के विषय म कोई सशय तभी हा सकता हे जब

धर्म पर विचार किया जावे, धर्म का मनन किया जावे। सकडालपुत्र ने गौशालक के मत पर अपनी बुद्धि अनुसार खूब विचार किया था। उसका खूब मनन किया था और ऐसा करते हुए उसे जो शकाए हुई उनका उसने गौशालक से समाधान भी कर लिया था।

सकडालपुत्र तीन करोड सोनैया की सम्पत्ति वाला था। उसने अपनी इस सम्पत्ति मे से एक करोड सोनैये कोष मे रख छोडे थे। एक करोड व्यापार मे फैला रखे थे और एक करोड की स्थावर जगम सम्पत्ति थी। उसका व्यवसाय वही था जो कुम्हारो का हुआ करता है। अर्थात् मिट्टी के बर्तन बना–बनाकर बेचना उसका व्यवसाय था। उस व्यवसाय के लिये पोलासपुर नगर के बाहर उसकी पाच सौ दुकाने थी। जिन पर कई कार्यकर्त्ता भी नियुक्त थे।

आज कई जैन धर्मानुयायी शायद यह कहेगे कि सकडालपुत्र मिट्टी के बर्तन बनाने का व्यवसाय करता था। तब तो वह महारम्भी था। सकडालपुत्र मिट्टी के बर्तन बनाने का आरम्भ अवश्य करता था लेकिन उसकी यह आजीविका वश परम्परा से चली आती थी। अपनी पैतृक आजीविका करता हुआ भी वह हृदय का मलिन न था। उसकी आतरिक और व्यवहारिक नीति अन्य गृहस्थो की अपेक्षा खराब न थी। इसके सिवा अग्नि, मिट्टी, पानी आदि का आरम्भ, महारम्भ भी नहीं कहलाता है तथा आगे यह बात और सिद्ध की गई है कि सकडालपुत्र महारम्भी नहीं था।

सकडालपुत्र की पाच सौ दुकाने नगर के बाहर इसलिये थीं कि बर्तन बनाकर पकाने मे जो धुआ होता है वह नगर मे न फैले। नगर मे धुआ फैलने से नगर–निवासियो के स्वास्थ्य को हानि पहुचती है। आज भी यह देखा जाता है कि कुम्हारो के घर अधिकाश मे नगर या ग्राम से बाहर ही होते हैं।

पहले के लोग अपने पास की समस्त सम्पत्ति को बाहर ही नहीं फैला देते थे किन्तु जितनी सम्पत्ति बाहर व्यापार मे फैली हुई रखते थे, लगभग उतनी ही अपने कोष मे समय–असमय के लिए सुरक्षित भी रखते थे। उनका व्यवहार वट–वृक्ष की तरह होता था। कहा जाता है कि वट–वृक्ष जितना ऊपर उठा हुआ होता है भूमि मे भी अपनी उतनी ही जड रखता है। पूर्व समय के लोग ऐसा ही व्यापार–व्यवहार किया करते थे। आज के बहुत से लोग थोडी हैसियत होते हुए भी अधिक हैसियत वाले बनने के लिये बाह्याडम्बर बना लेते हे लेकिन पूर्व के लोग अपनी हैसियत से अधिक बाह्याडम्बर नही

रखते थे। ऐसा करने के कारण उनके लिए आज के लोगो की तरह दिवाला निकालने का समय भी नहीं आता था।

उस समय के लोग जितने करोड सोनैया का व्यापार करते थे अपने यहा उतने ही गोकुल भी रखते थे। एक गोकुल–दस हजार गायो का होता है। गाये पालने के कारण उनके यहा दूध घी आदि पौष्टिक पदार्थों की भी कमी नहीं रहती थी और गोओ की सहायता होने से आर्थिक स्थिति भी नहीं बिगडती थी। सकडालपुत्र का व्यापार एक करोड सोनैये का था। इसलिये उसके यहा भी गौ का एक गोकुल था।

सकडालपुत्र के अग्निमित्रा नाम की पत्नी थी। अग्निमित्रा रूपवती और बुद्धिमती होने के साथ ही पतिपरायण भी थी। पति की इच्छा ही उसकी इच्छा थी, पति की इच्छा के विरुद्ध वह कोई काम नही करती थी।

सकडालपुत्र का जीवन अनियमित न था किन्तु नियमित था। वह कार्य के समय कार्य करता, धर्म–ध्यान के समय धर्म–ध्यान करता और विश्राम के समय विश्राम करता। इस प्रकार उसके प्रत्येक कार्य नियमित थे।

आज–कल के लोगो मे अनियमितता अधिक देखने मे आती है। कई लोग, सोने के समय तो जागते हैं और जागने के समय सोते हैं। उनके समीप समय का कोई मूल्य ही नहीं है। न वे किसी नियम का पालन ही आवश्यक समझते हैं। कई लोग, अपना समय इधर–उधर मे नष्ट कर देते हैं और धर्म–ध्यान के लिये सासारिक कामो के कारण समय का अभाव बतलाते हैं। यद्यपि वे चाहे तो कम–से–कम अपने इधर– उधर मे नष्ट होने वाले समय को धर्म–ध्यान मे लगा सकते हैं लेकिन ऐसा नही करते। इसलिये यही कहा जा सकता हे कि उन्हे धर्म से भली प्रकार प्रेम नही है। ऐसे लोग अपना समय इधर–उधर मे नष्ट करके धर्म–ध्यान से वचित रहते है और साथ ही अनियमितता के कारण अपना स्वास्थ्य भी नष्ट करते है। पूर्व समय के लोग प्रत्येक कार्य नियत समय पर करते थे। किसी भी कार्य मे अनियमितता नही होने देते थे। ऐसा करके वे लोग धर्म सेवा का भी लाभ लेते थे और उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता था।

सकडालपुत्र नियत समय पर अपने सासारिक कामो से निवृत्त होकर धर्म ध्यान किया करता था। धर्म ध्यान के लिये उसने एक अशोक–वाटिका बना रखी थी। वह उसी अशोक वाटिका मे बेठ कर धर्म ध्यान किया करता। यद्यपि उसका धर्म ध्यान गोशालक के मतानुसार हुआ करता था लेकिन उसकी पूर्व–पुण्याई अच्छी थी जिसके प्रताप से उसे केवल–प्ररूपित धर्म

पाप्त होना था। पूर्व पुण्याई के प्रताप से एक दिन सकडालपुत्र को, जब वह अपनी अशोक वाटिका मे बैठा हुआ धर्म–ध्यान कर रहा था, आकाशस्थित एक देव दिखाई पडा। वह देव, पाचवर्ण के सुन्दर वस्त्र, कानो मे कुण्डल और गले मे रत्नो का दिव्य हार पहिने हुए था। उसके मुख का तेज सभी दिशाओ को आलोकित करता था। पैरो मे पहिनी हुई रत्न जटित घूघरमाल की मधुर झन्कार सब ओर सुनाई दे रही थी।

देव अवधिज्ञानी हुआ करते हैं। उनकी बुद्धि–मनुष्यो की बुद्धि की अपेक्षा अधिक विकसित रहती है। सकडालपुत्र देखने मे तो अग्नि, मिट्टी आदि का बहुत आरम्भ–समारम्भ करता था, लेकिन देव ने उसमे विशेष प्रकार की उदारता और पुण्य भावना देखी तभी वह सकडालपुत्र की दृष्टि मे आया। सासारिक क्रिया चाहे स्वहस्त से की जावे या परहस्त से कराई जावे उसका आरम्भ अवश्य लगता है। सासारिक जीवन व्यतीत करता था–इसलिये इस नियम से सकडालपुत्र भी मुक्त नही था। लेकिन इस आजीविका के लिये किये जाने वाले अग्नि–मिट्टी आदि के आरम्भ के साथ हृदय की भावना को भी दृष्टि मे रखना आवश्यक है। यदि हृदय की भावना पर दृष्टि रखना निरर्थक हो केवल आरम्भ ही देखा जाता हो तो ऐसी दशा मे सकडालपुत्र के लिये देवता क्यो आया ? सकडालपुत्र अग्नि–पानी आदि का बहुत आरम्भ करता था। फिर भी देवता उसके यहा आया। इससे प्रकट है कि सकडालपुत्र जो आरम्भ करता था उस आरम्भ की अपेक्षा उसमे आतरिक गुण विशेष थे। जिस प्रकार अशुद्ध पात्र मे शुद्ध वस्तु नही डाली जाती उसी प्रकार जिसका हृदय मलिन एव ईर्ष्या–द्वेष से भरा हुआ हे उसको किसी प्रकार की सहायता देने देवता नही आया करते। देवता तभी सहायता देने आते हैं जब हृदय मे अपवित्रता न हो।

आकाशस्थित देवता ने सकडालपुत्र से कहा–हे देवानुप्रिय! कल यहा हम देवो के भी देव महा–महान् पधारने वाले हैं। वे महामहान्, भूत–भविष्य और वर्तमान काल की बात को स्पष्ट जानते हैं तथा तीनो लोक को हस्तरेखा के समान प्रत्यक्ष देखते हैं। वे त्रिलोकज्ञ तथा त्रिकालज्ञ हैं, तेजोमय हैं। सारा ऐश्वर्य उनके तेज मे छिपा हुआ है। उनके दर्शन, तीनो लोक के प्राणी हर्ष सहित करते है और अपना अहोभाग्य मानते हैं। हम देवता भी उनके दर्शन करने को उत्कण्ठित रहते हैं तथा दर्शन पाकर गद्गद् हो जाते हैं। उन महामहान को सबसे महान मान कर तीनो लोक–स्वर्ग मृत्यु और पाताल के प्राणियो ने उनकी महापूजा की है। वे ही त्रिलोकीनाथ तुम्हारे यहा आने वाले

हैं। हे देवानुप्रिय! वे त्रिलोक की विभूति महामहान् जब पधारे तब तुम उन मगलमय प्रभु की वन्दना करना ओर भक्ति भाव सहित अपने यहा लाकर शय्यासथारा आदि प्रतिलोभित करना।

देवता ने यह सूचना भगवान महावीर के पधारने के विषय मे दी है। भगवान महावीर को महामहान् इसलिये कहा जाता है कि उन्होने 'किसी जीव को मत मारो' यह उपदेश दिया था। भगवान महावीर, तीनो काल को जानने वाले और तीनो लोक को देखने वाले थे। उनमे यह शक्ति, सम्यकज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र उत्पन्न हो जाने से प्रकट हुई थी। यद्यपि सम्यक् ज्ञान दर्शन और चरित्र आत्मा मे सदा ही विद्यमान रहते है लेकिन वे कर्मों के आवरण से ढके रहते हैं। जब उन पर से कर्म रूपी आवरण हट जाता है, तब वे सम्पूर्ण रूप से प्रकट हो जाते हैं। भगवान महावीर–कर्म रूपी आवरण को नष्ट कर चुके थे, इससे उनका सम्पूर्ण ज्ञान दर्शन और चरित्र प्रकट हो गया था। आत्मा और परमात्मा मे यहीं अन्तर है। आत्मा के सम्यक् ज्ञान, दर्शन तथा चरित्र, कर्म रूपी आवरण से ढके रहते है और परमात्मा के सम्यक् ज्ञान, दर्शन तथा चरित्र पर कर्म का आवरण नहीं होता। जब आत्मा अपने सम्यक् ज्ञान दर्शन तथा चरित्र पर से कर्म का आवरण हटा देता है कर्मो को नष्ट कर देता है, तब वह परमात्मा बन जाता है।

'बौध पूर्व' नाम की ऐतिहासिक पुस्तक मे लिखा है कि सिहल भाषा मे जो बौद्ध ग्रन्थ है, उसके अनुसार उस समय मे पूर्णकाश्यप मखलीपुत्र–गोशालक, अजित केश कवल, कुकुधकात्यापन, सजय वेलास्थिपुत्र ओर निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र, ये छ तीर्थंकर थे। हो सकता है कि उक्त पुस्तक की बात सही हो लेकिन यह बात निर्विवाद है कि भगवान महावीर का तीर्थंकर पद जिरा प्रकार सर्वज्ञ आदि विशेषणो और गुणो से विभूषित था–वैसा दूसरे किसी का नहीं था। भगवान महावीर का नाम निर्ग्रंथज्ञात पुत्र भी है। देवता ने भगवान महावीर का जो परिचय दिया हे–वह उनके विशेषणो सहित दिया है।

देवता ने भगवान महावीर के पधारने की सूचना देते हुए सकडालपुत्र से कहा है कि उन महामहान् की पूजा तीनो लोक के प्राणिया ने की हे। देवता के इस कथन का यह अर्थ नही हे कि तीनो लोक के प्राणिया ने भगवान की पूजा जल पुष्प धूप–दीप आदि से की हों। इस प्रकार स पूजा की जान पर तो भगवान महावीर के 'महामहान् विशेषण की सार्थकता ही जाती रहगी। क्योकि 'मत मारो' उपदेश जल अग्नि वनस्पति आदि क जीवा क लिए भी

है। जल, पुष्प आदि से पूजा की जाने पर इनमे के जीव अवश्य ही मरेगे, जिनको अपने लिए मरने देना भगवान को कदापि स्वीकार नही हो सकता। इसके सिवा पूजा, पूज्य के अनुसार हुआ करती है। ससार मे भी देखा जाता है कि लोग ठाकुरजी की पूजा चन्दन, पुष्प आदि से करते हैं और भैरोजी की पूजा तेल–बाकले आदि से। तेल बाकले से ठाकुरजी की पूजा करना ठाकुरजी की अवज्ञा मानी जाती है। इसी प्रकार जिन भगवान ने ससार के किसी भी जीव को न मारने का उपदेश दिया है, उनकी पूजा जल, पुष्प आदि से करने से उनमे के जीवो का नाश करना पूजा के नाम पर भगवान की अवज्ञा होगी। इसलिए देवता के कथन का यह अर्थ कि जल, पुष्प आदि से भगवान की पूजा की–कदापि नही हो सकता। भगवान महावीर की पूजा किस प्रकार की जाती थी इसके लिए औपपातिक सूत्र मे प्रमाण मिलता है। भगवान महावीर के परम भक्त राजा कोणिक ने भगवान की पूजा की है उसका वर्णन औपपातिक सूत्र मे निम्न प्रकार से है–

समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ तजहा–सच्चित्ताण दव्वाण वाउसरणयाए अचित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए एगसाडिय उत्तरासग करणण, चक्खु फासे अजलि पग्गहेण मणसोएगत्तभाव करणेण समणं भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता वदति णमसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासति तजहा काइया वाइया माणासियाए–काइयाताव सकुइयाग्गहत्थपाए सुस्सुसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासंति, वाइयाएजंजं भगवत वागरेइ तत एहमेय भते! तहमेय ! अवितहमेय भते! असदिद्धमेय भंते! इच्छियमेय भते! पडिच्छिय मेयं भते! इच्छियपडिच्छियमेय भते! से जेहण तुज्झे वदह अपडिकूलमाणे पज्जुवासति, माणसियाए महत्ता सवेगजणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्ते पज्जुवासति।।

अर्थात –राजा कोणिक पाच अभिगम करके भगवान महावीर के पास गया। वे पाच अभिगम इस प्रकार हैं– 1 पान फूल आदि सचित्त द्रव्य दूर किये। 2 अचित द्रव्य–वस्त्र आभूषणादि पास ही रखे। 3 एक पट दुपट्टे का उत्तरासग किया। 4 भगवान को देखते ही दोनो हाथ जोड कर अपनी आखो के पास लगा लिए और 5 मन को दूसरी ओर से रोक कर भगवान की भक्ति मे एकीभाव किया। इस प्रकार पाच अभिगम करके राजा कोणिक श्रमण भगवान महावीर के पास गया और श्रमण भगवान महावीर को तिक्खुत्ता के

पाठ से वन्दना नमस्कार किया तथा तीन प्रकार से – मन से वचन से शरीर से–प्रभु की पूजा – भक्ति करने लगा। शरीर मन और वचन से कोणिक राजा ने इस प्रकार उपासना की। हाथ पाव सिकोड कर दोनो हाथ जोड नम्रता तथा विनयपूर्वक भगवान के सामने बैठ गया ओर भगवान की सुश्रूषा करने लगा। इस प्रकार शरीर से भक्ति–उपासना करने लगा। जैसे–जैसे भगवान वचन उच्चारते थे, तैसे–तैसे–हे भगवान ! ऐसा ही है हे भगवान ! तथ्य है हे भगवान ! मैं इच्छता हू , हे भगवान ! मैं विशेष इच्छता हू और आपने जो कुछ कहा, वह अप्रतिकूल है–कहकर भगवान की वचन द्वारा सेवा–भक्ति करने लगा। मन मे महान् वैराग्य भाव धारण करके एव तीव्र धर्मानुरागरक्त न कर, बमन द्वारा भगवान की सेवा–भक्ति करने लगा।

इस पाठ से प्रकट है कि भगवान महावीर की पूजा तीन प्रकार से की जाती थी। मानसिक, वाचिक और कायिक। मन मे उनका ध्यान करना स्मरण करना–मानसिक पूजा है। वचन से उनके गुणगान करना–वाचिक पूजा है और पाचो अग झुका कर नम्रता पूर्वक नमस्कार करना–कायिक पूजा हे। भगवान वीतराग की पूजा इसी प्रकार होती हे। जो पदार्थ राग पैदा करने के कारण माने जाते हैं–उन्हे वीतराग भगवान पर चढाना या भेट करना– पूजा नहीं किन्तु उनकी अवज्ञा हे। राग पैदा करने वाली वस्तुओ को तो भगवान पहले ही त्याग चुके हैं। उन त्यागी हुई वस्तुओ को जिनने त्यागी हे उन्ही पर चढना–उनकी पूजा नहीं हे।

सकडालपुत्र को भगवान महावीर के पधारने की उक्त प्रकार से सूचना देकर देवता चला गया। इधर सकडालपुत्र देवता की सूचना पर से विचार करने लगा कि देवता ने जिन महामहान् के आने की सूचना दी हे वे महामहान् मेरे गुरु गौशालक के सिवा दूसरे कोन हो सकते हैं ? सकडालपुत्र गौशालक का पूर्ण भक्त था इसलिए देवता ने भगवान महावीर के लिए जा विशेषण कहे थे–वे सब विशेषण उसे गौशालक के लिए ही जान पड। वह रात भर यह विचारता हुआ प्रसन्न रहा कि कल मेरे प्रभु गौशालक पधारन वाल हैं। मैं उन्हे वन्दना नमस्कार करूगा।

यह बात दूसरी हे कि सकडालपुत्र एक मिथ्या मत का अनुयायी था ओर जिस गौशालक के प्रति उसके हृदय मे भक्ति हे–वह गोशालक उरा मिथ्या–मत का सस्थापक एवम् प्रचारक था। इसलिये सकडालपुत्र की श्रद्धा–भक्ति मिथ्या है। लेकिन उसके हृदय मे गोशालक क प्रति जो श्रद्धा–भक्ति है वह दृढता की अपेक्षा से अनुकरणीय है। सकडालपुत्र की यह अनुकरणीय

भक्ति की धारा थोडे ही समय मे भगवान महावीर की ओर बहने लगेगी। उस समय इसकी वह श्रद्धा-भक्ति शुद्ध और सत्य होगी। अभी सकडालपुत्र की श्रद्धा भक्ति मिथ्या अवश्य है लेकिन उसकी हृदय की नम्रता एव सरलता उसके हृदय का गुरु प्रेम बिना सराहे नही रहा जा सकता। उसकी यह श्रद्धा भक्ति इस बात की शिक्षा देती है कि जब सकडालपुत्र अपने मिथ्या मत के सस्थापक गुरु के प्रति इतनी भक्ति रखता था तो सत्य-धर्म-प्रचारक गुरु के प्रति लोगो की श्रद्धा भक्ति कैसी होनी चाहिए।

दूसरे दिन पोलासपुर नगर के बाहर सहस्राम्र-वन नाम के उद्यान मे भगवान महावीर पधारे। आकाश मे घूमने वाले धर्म-चक्र एव वनपालादि द्वारा नगर-निवासियो को भगवान के पधारने की सूचना मिली। नगर निवासी नर-नारियो के झुड भगवान महावीर के दर्शन के लिए सहस्राम्र-वन उद्यान की ओर चले। सकडालपुत्र को खबर मिली कि सहस्राम्र-वन उद्यान मे, श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं। यह खबर पाकर सकडालपुत्र भी स्नानादि से निवृत्त हुआ और मगल वस्त्र तथा बहुमूल्य आभूषण पहिन कर, दर्शन करने के लिए जाते हुए मनुष्यो के साथ सहस्राम्र-वन उद्यान की ओर चल पडा।

भगवान के दर्शन करने जाते समय गृहस्थो के लिए स्नान से निवृत्त होने का पाठ-शास्त्र मे स्थान-स्थान पर मिलता है। इससे प्रकट है कि उस समय के लोग-गृहस्थ होने के कारण स्नान किया करते थे लेकिन श्रावक लोग अपने लिए यह नियम बना लेते थे कि मैं स्नान में इतने परिमाण से अधिक पानी व्यय न करुगा। जैसे कि आनन्द श्रावक ने भगवान से नियम ले लिया था। भगवान का यह उपदेश है कि गृहस्थ प्रत्येक वस्तु के भोगोपभोग की सीमा कर ले। सीमा कर लेने पर सासारिक काम भी नही रुकते वस्तु का दुरुपयोग भी नहीं होता लालसा भी सीमित हो जाती है और आरम्भ भी अधिक नहीं होता।

शास्त्रो मे स्नान से निवृत्त होने के पाठ के साथ ही मगल-वस्त्र पहिनने का पाठ भी पाया जाता है। मगल-वस्त्र का मतलब – वे वस्त्र हैं जो मगल के द्योतक हो। ससार मे आज भी दो प्रकार के वस्त्र देखे जाते हैं – एक मागलिक और दूसरे अमागलिक। यूरोपियनो मे जब कोई मर जाता है तब वे लोग काले वस्त्र पहिना करते हैं। उनमे काले वस्त्र पहिनना अमगल सूचक है। इसके विपरीत जो वस्त्र पहने जाते हैं – वे अमगल के द्योतक नहीं माने जाते। भारत मे भी सिर पर सफेद और अस्त व्यस्त वस्त्र बाधना अमगल का सूचक माना जाता है और पीले वस्त्र पहिनना – मगल माना जाता हे।

इसी प्रकार की कोई पद्धति पूर्व समय मे भी रही होगी। इसी से भगवान महावीर के पधारने पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए तथा भगवान का पधारना – हमारे लिए मगल–प्रद है, यह जताने के लिए उस समय के लोग देश–काल–प्रचलित मगल वस्त्र पहिना करते थे।

सहस्राम्र–वन उद्यान मे पहुच कर, सकडालपुत्र ने देवता के कथनानुसार–भगवान महावीर को प्रदक्षिणा सहित वन्दना नमस्कार किया।

सब लोगो के वन्दना–नमस्कार कर चुकने और यथा स्थान बैठ जाने पर, भगवान महावीर अपनी पवित्र वाणी से सबको उपदेश देने लगे। भगवान महावीर की वाणी से उस समय किस उपदेश की धारा बही थी, वह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता लेकिन भगवान की सकडालपुत्र से फिर जो बातचीत हुई, उस पर से अनुमानत भगवान ने निम्न उपदेश फरमाया था –

ऐ ससार के प्राणियो ! आज तुम लोग जिस ससार मे भूल रहे हो – उस ससार से तुम्हारा हित नहीं हो सकता। ससार–क्षणभगुर और अनित्य है। इसके प्रत्येक पदार्थ जड हैं। लेकिन तुम अविनाशी तथा चैतन्य हो। चैतन्य एव अविनाशी होकर नाशवान जड को अपना मानना महान् भूल है। तुम्हारा हित तभी होगा जब तुम ससार के पदाथो को जड नश्वर एव सार–रहित मान कर इनसे मोह छोड दो ओर अपने चैतन्य–स्वरूप पर विचार करो। अपनी चैतन्यता का विचार करते रहने पर एक दिन वह होगा जब तुम जीवन मुक्त हो जाओगे। जीवन मुक्त होने पर, न तो तुम्हे इस ससार मे पुन जन्म लेना पडेगा, न मरना पडेगा, और न ही इसमे होने वाले सयोग–वियोगादि के दु ख ही उठाने पडेगे। इसलिए ससार से मोह छोडकर अपने चैतन्य–रूप पर विचार करो।

ससार में मोह छूटने और अपने चैतन्य रूप पर विचार करने की क्षमता सयम से होती है। सयम मन तथा इन्द्रियो के निरोध से होता है और मन तथा इन्द्रियो का निरोध त्याग–लालसाओ को सीमित करने से होता है। त्याग धर्म की शरण लेने से ही हो सकता है। धर्म को समझकर उसे अपनाने पर त्याग की बुद्धि होगी लालसाए सीमित होगी और मन वश मे रहेगा। मन वश मे होने पर इन्द्रियाँ अपने विषयो की ओर न दौडेगी और ऐसा होने पर धीरे–धीरे ससार से मोह छूटता जावेगा। ससार मे जैसे–जैसे मोह छूटता जावेगा, आत्मचिन्तन की क्षमता वैसे–ही–वैसे अधिक होगी। जब मोह पूरी तरह नष्ट हो जावेगा तथा आत्मा अपने रूप का भली प्रकार जान लेगा तब आत्मा जीवन–मुक्त हो जावेगा–अर्थात ऐसी अवस्था म पहुच जावेगा –

जिसमे न भय है, न शोक, न रोग है और न दुख। इस अवस्था मे पहुचा हुआ आत्मा 'सिद्ध' कहलाता है। यह सिद्धावस्था प्राप्त होने का मूल उपाय, धर्म की सेवा है। इसलिये धर्म को अपनाओ।

तुम कहोगे कि धर्म किसे कहते हैं और हम उसे क्यो कर पहचाने? इसका उत्तर यह है कि जो आत्मा को दुर्गति मे पडने से बचा कर सुगति प्राप्त करावे एव राग–द्वेष रहित वीतराग का कहा हुआ हो, उसका नाम 'धर्म' है। उन समस्त सद्कायो का समावेश धर्म मे हो जाता है जिन्हे आत्मा, नि स्वार्थ और निष्पक्ष होकर, समस्त प्राणियो को आत्मवत् समझता हुआ एव किसी को कष्ट मे न डालता हुआ करे। धर्म की यह व्याख्या सक्षिप्त मे ही बतलाई है पूर्ण व्याख्या समझने–समझाने के लिये तो विशेष समय की आवश्यकता है।

धर्म मे पुरुषार्थ प्रधान है। बिना पुरुषार्थ किसी भी कार्य मे सिद्धि नही मिलती तो धर्म मे – बिना पुरुषार्थ सिद्धि कैसे मिलेगी ? यद्यपि कुछ लोग ईश्वर काल स्वभाव और होनहार को कर्त्ता अवश्य मानते हैं लेकिन दूसरे को कर्त्ता मान कर आप बैठे रहना, अपने आपको कर्तव्य से मुक्त समझना भूल है। काल स्वभाव और होनहार को लोग जड मानते हैं। जड अपने आप को ही नहीं समझता तो वह कार्य सम्पादन मे समर्थ कैसे हो सकता है ? रही ईश्वर की बात ईश्वर कोई व्यक्ति विशेष नही है और वैसे सभी आत्मा ईश्वर है। लेकिन पूर्ण ईश्वर वही आत्मा है जो राग–द्वेष रहित हो गया है यदि ससार के सब प्राणी राग–द्वेष रहित हो जावे तो सभी प्राणी ईश्वर बन जावे। इस सासारिक आत्मा की अपेक्षा से तो ईश्वर कर्त्ता हो सकता है। लेकिन यदि ईश्वर का अस्तित्व आत्मा से भिन्न माना जावे तो यह भूल भी है और इस प्रकार के ईश्वर को कर्त्ता मानने से अनेक बाधाए भी होगी। ईश्वर आत्मा से भिन्न नही है, किन्तु कर्म–बन्धन रहित शुद्ध आत्मा ही ईश्वर है। इसलिए प्रत्येक प्राणी अपने सुख–दुख, हानि–लाभ आदि का कर्त्ता है। यह बात दूसरी है कि निमित्त रूप से दूसरे भी कर्त्ता हो। लेकिन प्रधान कर्त्ता आत्मा ही है। कर्त्ता प्रत्येक अच्छे या बुरे कार्य पुरुषार्थ से ही कर सकता है। इसलिये धर्म मे भी पुरुषार्थ ही प्रधान है। अत आत्मा को कर्त्ता और पुरुषार्थ को प्रधान साधन मानकर धर्म की शरण मे आओ। जिससे तुम्हारा कल्याण हो और ससार–विच्छेद करके मुक्ति प्राप्त कर सको।

भगवान का उपदेश समाप्त हो चुकने पर चारो ओर धन्य–धन्य और जय–जय की ध्वनि होने लगी। सब श्रोता भगवान के उपदेश को सुनकर

आल्हादित थे। लेकिन सकडालपुत्र कुछ और ही सोच रहा था। वह सोच रहा था कि देवता ने किन महामहान् के आगमन की सूचना दी थी ? क्या उसने श्रमण भगवान महावीर के लिए ही मुझसे कहा था कि वन्दना–नमस्कार करना और स्थान पाट–पाटले आदि प्रतिलाभना ? मैं तो सोचता था कि देवता ने मेरे धर्माचार्य गौशालक के पधारने की सूचना दी है, लेकिन जान पडता है कि देवता ने उनके विषय मे नहीं किन्तु इन्हीं के विषय मे सूचना दी थी। क्योकि यदि वह सूचना मेरे गुरु के विषय मे होती तो वे मेरे गुरु गौशालक अवश्य पधारते। वे नहीं पधारे और श्रमण भगवान महावीर पधारे हैं, इसलिये निश्चित ही देवता की दी हुई सूचना, मेरे गुरु के विषय मे नही थी। इन्ही के विषय मे थी। यद्यपि ये मेरे गुरु नही हैं फिर भी देवता के कथनानुसार मुझे इनकी सेवा करनी चाहिए।

सकडालपुत्र, अपने मन मे इस प्रकार के सकल्प–विकल्प कर रहा था, इतने ही मे भगवान महावीर ने सकडालपुत्र से पूछा कि सकडालपुत्र कल जब तू अपनी अशोक वाटिका मे बैठा था तब – क्या तेरे पास एक देव आया था और उसने महामहान् के आगमन की सूचना देकर तेरे से यह भी कहा था कि उन महामहान् को वन्दना–नमस्कार करना तथा भात पानी माट आदि प्रतिलाभना?

भगवान का प्रश्न सुनकर सकडालपुत्र चकित रह गया। उसने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि – हा भगवान ! देवता आया था ओर उसने ऐसा कहा था। सकडालपुत्र का उत्तर सुनकर भगवान ने उससे कहा कि – उस देवता के चले जाने पर, तेरे मन मे ये विचार भी आये थे कि देवता के कहे हुए गुण, मेरे गुरु गौशालक मे ही हो सकते हैं ! लेकिन हे सकडालपुत्र ! देवता ने गौशालक का आगमन नहीं दर्शाया था यह तू निश्चय समझ।

सकडालपुत्र को यह विचार कर आश्चर्य हो रहा था कि भगवान ने इन अप्रकट बातो को कैसे जान लिया ! अप्रकट बात भगवान से सुनकर सकडालपुत्र को विश्वास हो गया कि भगवान महावीर ही महामहान् उत्पन्न ज्ञान–दर्शन के धारक और तथ्यकर्म से प्राप्त सम्पदा से समृद्ध हैं। तथा देवता ने कल इन्ही के विषय मे सूचना दी थी। देवता की सूचनानुसार इनसे मेरी दुकान पर पधारने की प्रार्थना करनी चाहिये।

सकडालपुत्र ने भगवान महावीर की वन्दना नमस्कार कर के उनसे प्रार्थना की कि नगर के बाहर मेरी पाच सौ दुकान हैं कृपा करके आप वहा पधारिए वहा आपको सब प्रकार से सुविधा होगी।

सकडालपुत्र की विनम्र प्रार्थना देख–सुनकर, भगवान ने उसके यहा पधारना स्वीकार किया और पधारे। सकडालपुत्र की निर्दोष दुकान मे भगवान विराजे। देवता के कथनानुसार, सकडालपुत्र ने पाट–पाटले आदि प्रतिलाभ कर भगवान की सेवा की।

भगवान, त्रिलोकीनाथ, हैं। लेकिन उनका एक छोटे से छोटा भक्त भी उन्हे वश कर लेता है। उनके पास जाति–पाति या ऊच–नीच का भेदभाव नही है। यदि भगवान, जाति–पाति या ऊच–नीच का भेद मानते होते तो जिनकी सेवा के लिए इन्द्र भी लालायित रहता है, वे भगवान सकडालपुत्र (जो जाति का कुम्हार है) के यहा न पधारते। भगवान सर्वज्ञ हैं। वे यह जानते हैं कि इसके यहा अग्नि, पानी, मिट्टी, चाक घूमने आदि बहुत आरम्भ होता है और सकडालपुत्र ने यह भी प्रकट कर दिया था कि मेरी पाच सौ दुकाने हैं। फिर भी भगवान ने उसके यहा पधारने और विराजने मे, इस आरम्भ का विचार नही किया। इससे प्रकट है कि भगवान ने सकडालपुत्र के इस आरम्भ की अपेक्षा उसमे आतरिक गुण विशेष देखे। यदि ऐसा न होता तो भगवान उसके यहा पधारते ही क्यो ? उसके यहा भगवान यह दृष्टि मे रख कर ही पधारे होगे कि सासारिक जीवन, निरारम्भी नहीं हो सकता। हा, अल्पारम्भी हो सकता है और सकडालपुत्र का जीवन, महारम्भी नही है तथा इस आरम्भ के साथ ही इसमे आतरिक गुण विशेष हैं।

भगवान, सकडालपुत्र के यहा पधारे इससे यह शिक्षा मिलती है कि जाति–पाति या सूक्ष्म हिसा के कारण किसी से घृणा करना, किसी को पापी कहना – उचित नही है।

भगवान की सेवा से अवकाश प्राप्त करके, सकडालपुत्र अपना कार्य करने लगा उसने मिट्टी के चाक द्वारा बनाये हुए कच्चे बर्तन धूप और वायु द्वारा सुखाने के अभिप्राय से घर मे से निकाल कर बाहर रखे।

यद्यपि सकडालपुत्र के यहा पर्याप्त नौकर–चाकर थे, लेकिन वह स्वय भी कार्य करता था। केवल नौकरो के भरोसे या पूजी के आधार पर ही उसका जीवन न था। पूर्व समय के लोग अपना व्यवसाय नौकरो के आधार पर नही छोड देते थे न यह विचार कर अकर्मण्य ही बन जाते थे कि हमारी सम्पत्ति से कारोबार हो रहा है–इसलिए हम काम क्यो करे ? जिस समय ऐसा था उस समय आज की तरह पूजीपतियो के प्रति श्रम–जीवियों के हृदय मे द्वेष भी नही होता था। क्योकि जिस प्रकार श्रमजीवी काम करते थे उसी प्रकार उनके स्वामी पूजीपति भी काम करते थे और जिस रहन–सहन से

पूजीपति अपना जीवन निर्वाह करते थे उसी रहन–सहन से अपने यहा काम करने वालो के जीवन–निर्वाह का ध्यान रखते थे।

भगवान जानते थे कि सकडालपुत्र, गौशालक का अनुयायी है और होनहार को मानने वाला है। सकडालपुत्र की इस मान्यता को छुडाकर उसके हृदय मे पुरुषार्थवाद की स्थापना करने के उद्देश्य से ही भगवान, सकडालपुत्र के यहा पधारे थे। भगवान अपनी सर्वज्ञता से यह जानते थे कि अब सकडालपुत्र के मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का अन्त हो रहा है। इसलिये इस समय इसे सच्चे धर्म का स्वरूप बताने पर यह उसे धारण कर लेगा। भगवान ने यह जानते हुए भी सकडालपुत्र को समझाने का पुरुषार्थ किया होनहार के भरोसे नहीं रहे।

जिस समय चाक से उतारे हुए मिट्टी के कच्चे बर्तन बाहर धूप मे रखे थे, वह समय भगवान ने सकडालपुत्र को समझाने के लिए उपयुक्त समझा। भगवान ने सकडालपुत्र से पूछा कि–सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन किस प्रकार बने हैं ?

जो भगवान, त्रिलोकज्ञ और त्रिकालज्ञ हैं क्या वे यह नहीं जानते कि मिट्टी के बर्तन किस प्रकार बनते हैं ? वे सब कुछ जानते थे। उनसे कोई बात छिपी हुई नहीं थी। लेकिन उद्देश्य की सिद्धि के लिए भगवान ने सकडालपुत्र के मुख से ही यह कहलवाना उचित समझा कि ये बर्तन किस प्रकार बनते हैं ?

भगवान के प्रश्न के उत्तर मे, सकडालपुत्र ने कहा कि – भगवान ! इन बर्तनो को बनाने के लिए पहले मिट्टी लाई गई। उस मिट्टी मे राख आदि मिलाई गई और पानी से भिगो कर वह खूब रौंदी गई। जब मिट्टी, बर्तन बनाने के योग्य हो गई तब उसे चाक पर रखकर ये बर्तन बनाये गये।

भगवान ने, सकडालपुत्र को पूछा कि सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन पुरुषार्थ से बने हैं या बिना पुरुषार्थ ही बने हैं?

भगवान का यह प्रश्न सुनकर सकडालपुत्र को अपनी मान्यता का ध्यान आ गया। वह समझ गया कि भगवान महावीर मेरे गुरु के सिद्धात के स्थान पर अपना सिद्धात सिद्ध करना चाहते हैं। वह भगवान के उत्तर म कहने लगा कि–भगवान जो कुछ भी होता है वह सब होनहार से ही होता है पुरुषार्थ से कुछ नहीं होता। मिट्टी के बर्तन बनाने म हमने जो–कुछ किया है वह सब होनहार के वश होकर। इसलिए यह मिट्टी के बर्तन पुरुषार्थ के अभाव और होनहार के सद्भाव मे बने हैं।

सकडालपुत्र से भगवान फिर कहने लगे कि सकडालपुत्र, तूने अभी जो–कुछ कहा है उससे तो पुरुषार्थ की ही सिद्धि होती है। ये मिट्टी के बर्तन पहले नहीं थे, किन्तु बनाने से बने हैं, और जब बनाने से बने हैं, तो इनके बनाने मे क्रिया अवश्य ही की गई है। क्रिया है तो कर्त्ता भी अवश्य है। क्योकि बिना कर्त्ता के क्रिया नहीं हो सकती और बिना क्रिया के कर्म नही होता। क्रिया कर्त्ता के पुरुषार्थ से ही होती है। पुरुषार्थ के अभाव मे क्रिया नही होती। इस पकार इन बर्तनो के बनने मे पुरुषार्थ की ही प्रधानता है। कारण के होने पर कर्त्ता के पुरुषार्थ से ही कार्य होता है। प्रत्येक कार्य मे कारण और कर्त्ता की आवश्यकता है। इन बर्तनो को बनाने के लिए जो मिट्टी लाई गई वह मिट्टी बर्तनो का उत्पादन कारण है। फिर मिट्टी मे राख आदि मिलाई गई तथा पानी डाल कर रौंदी गई। इस बर्तन को बनाने के लिए तैयार मिट्टी को 'बर्त्तन' नहीं कह सकते। हा–पानी, राख आदि, बर्तन के निमित्त–कारण अवश्य हैं। फिर मिट्टी को चाक पर रख कर कर्त्ता द्वारा विशेष प्रकार की क्रिया की गई, तब बर्तन बने। बर्तन बनाने मे चाक भी निमित्त–कारण रहा। इस प्रकार, उत्पादन–कारण, निमित्त–कारण, तथा कर्त्ता के होने से बर्तन बने हैं और कर्त्ता द्वारा की गई बर्तन बनाने की क्रिया, पुरुषार्थ से ही हुई है। इसलिए, इन मिट्टी के बर्तनो को बनाने मे, पुरुषार्थ की ही प्रधानता है।

सकडालपुत्र ने, भगवान की बात सुनकर भी यही कहा कि भगवान, इन बर्तनो के बनने मे पुरुषार्थ की प्रधानता नहीं है, किन्तु होनहार की ही पधानता है। ये बर्तन, भवितव्यता से ही बने हैं।

भगवान ने सकडालपुत्र से कहा कि यदि ये बर्तन होनहार से ही बने है – इनके बनने मे पुरुषार्थ का अभाव है – तो एक प्रश्न होता है। वह यह कि यदि कोई आदमी इन बर्तनो को चुरा ले जावे इधर–उधर बिखेर दे या इनको फोड डाले तो तू उस आदमी के साथ कैसा व्यवहार करेगा? या तेरी जिस अग्निमित्रा स्त्री को जिसे तू बहुत प्यार करता है, उस पर कोई पुरुष बलात्कार करे तो उस पुरुष पर क्रुद्ध तो न होगा ?

भगवान का अन्तिम प्रश्न सुनकर सकडालपुत्र ने पति कर्तव्य के आवेश मे उत्तर दिया था कि, हे भगवान ऐसे दुष्ट पर मैं अवश्य ही क्रोध करू, उसे दण्ड दू, लात घूसे तथा लकडी से उस दुराचारी को मारू और आवश्यकता समझने पर उसको जीवन रहित भी कर डालू।

सकडालपुत्र का उत्तर सुनकर भगवान ने उससे कहा कि सकडालपुत्र तेरा ऐसा करना तो तेरे सिद्धात के विरुद्ध होगा न ? क्योकि, तू अभी कह

चुका है कि जो कुछ होता है, वह होनहार से ही होता है। जब तेरे कथनानुसार सब कुछ होनहार से ही होता है तब उस बर्तन चुराने फोडने फैंकने वाले या तेरी स्त्री के साथ दुराचार करने वाले का अपराध ही क्या रहा? जो तू उसे इस प्रकार का दण्ड दे? उसने जो किया है, वह तेरे सिद्धान्तानुसार होनहार के वश होकर, फिर उसे, तेरे द्वारा दण्ड मिलने का क्या कारण ? यदि तू ऐसे व्यक्ति को दण्ड दे, तब तो तूने होनहारवाद को नहीं माना किन्तु पुरुषार्थवाद को माना ! यदि तूने उसे दण्ड दिया, तब तो तेरा माना हुआ होनहारवाद झूठा ठहरता है।

भगवान की इस बात ने सकडालपुत्र का हृदय हिला दिया। वह, विचार में पड गया और अन्त मे इसी निश्चय पर पहुचा कि वास्तव मे, होनहार के आश्रित रहकर हम कुछ नहीं कर सकते, लेकिन पुरुषार्थ के द्वारा हम सब कुछ कर सकते हैं। होनहारवाद से तो जीवन मे आलस्य और अकर्मण्यता आती है।

पुरुषार्थवाद का बोध पाकर, सकडालपुत्र ने भगवान को वन्दना – नमस्कार किया और प्रार्थना की कि मैं आपकी युक्तियो से सहमत होकर पुरुषार्थवाद को प्रधान एव उपादेय तथा होनहारवाद को हेय मानता हू। अब मेरी इच्छा आपका कहा हुआ धर्म सुनने की है इसलिए कृपा करके मुझे धर्म सुनाइये।

सकडालपुत्र की प्रार्थना पर, भगवान ने उसको धर्म सुनाना प्रारम्भ किया। यद्यपि भगवान के कहे हुए धर्मोपदेश को ओर लोगो ने भी सुना, लेकिन इस समय सकडालपुत्र ही प्रधान श्रोता था, इसलिये, सकडालपुत्र को सम्बोधन करके, भगवान फरमाने लगे–

हे सकडालपुत्र ! दुर्गति से निकालकर सुमति मे पहुचाने वाला धर्म ही है। धर्म की सहायता बिना प्राणी दुर्गति से नहीं निकल सकता न सद्गति को ही प्राप्त कर सकता है।

परलोक के लिए हितकारी धर्म के मुख्यत दो भेद हैं– सूत्र धर्म ओर चारित्र्य धर्म। सूत्रधर्म का आचरण निग्रन्थ प्रवचनो पर श्रद्धा करना है। धर्म का प्रधान अग श्रद्धा ही है। जब तक धर्म पर श्रद्धा न हो तब तक धर्म सम्बन्धी की गई क्रियाए भी पूरी तरह सार्थक नही होती। इसलिए कवल प्ररूपित धर्म के आचरण म सबसे पहिला कार्य है निग्रन्थ प्रवचना पर श्रद्धा करना। धर्म के दूसरे भेद–चारित्र धर्म के दो भेद हैं एक आगार धर्म ओर दूसरा अनगार धर्म । आगार धर्म वह है जो सासारिक कार्य करत हुए भी

पाला जा सके, और अनगार धर्म वह है जो सासारिक कार्यो को त्याग कर पाला जा सके। आगार धर्म का पालन करने वाले सासारिक कामो को करते हुए धीरे–धीरे सुगति की ओर अग्रसर होते हैं और अनगार धर्म का पालन करने वाले ससार के समस्त कार्य त्याग कर केवल मोक्ष–पाप्ति के ही प्रयत्न मे जुटे रहते हैं। मोक्ष की पहिली सीढी, आगार धर्म है और दूसरी सीढी अनगार धर्म है। जो लोग धर्म से दूर हैं उन्हे अपनी शक्ति का विचार करके–यदि वे अपने आपको अनगार धर्म पालन करने मे असमर्थ समझते हैं तो उनके लिए आगार धर्म स्वीकार करना तथा उसका पालन करना ही श्रेयस्कर है।

आगार का अर्थ है सीमा। आगार धर्म पालन करने वाला अपनी लालसा और अपनी आवश्यकता की सीमा कर लेता हे ओर उस सीमा के अन्दर रह कर अपना सासारिक जीवन व्यतीत करता है, तथा त्याग एव सतोष को बढाता हुआ अपने आपको अनगार धर्म पालन करने के योग्य बनाता जाता है। आगार धर्म पालन करने वाला श्रमणोपासक' कहलाता हे। श्रमणोपासक का अर्थ है, श्रमण अर्थात साधु या अनगार की उपासना करने वाला। साधु अनगार धर्म का पालन करने वाला होता है। श्रमणोपासक आगार धर्म का पालन करता हुआ अनगार धर्म प्राप्ति की इच्छा रखता हे। अनगार धर्म पालन करने वाले साधु को श्रेष्ठ तथा आदर्श मानकर उनकी उपासना करता रहता है। आगार धर्म स्वीकार करने के लिए बारह व्रतो का धारण करना आवश्यक है। वे बारह व्रत ये हैं – स्थूल अहिसाव्रत, सत्यव्रत, अस्तेय व्रत ब्रह्मचर्यव्रत परिग्रह परिमाणव्रत, दिशि परिमाणव्रत, भोगपभोग परिमाण व्रत अनर्थ दण्ड निवर्तन व्रत, सामायिक व्रत पोषध व्रत और अतिथि सविभाग व्रत।

इन बारह व्रतो को धारण करके निरतिचार पालन करने वाला ही, आगार–धर्म का पूर्णरूपेण–आराधक है। जो प्राणी, आगार धर्म का पालन करता हुआ अनगार धर्म को श्रेष्ठ मानता है तथा श्रमणो की उपासना करता है वही श्रमणोपासक है। यद्यपि उत्तम तो अनगार धर्म ही है – अनगार धर्म का पालन करने पर ही प्राणी ससार के जन्म–मरण से मुक्त हो सकता है लेकिन अनगार धर्म पालने की क्षमता न होने पर, आगार धर्म का पालन करना भी अच्छा है। आगार धर्म पालन करते–करते प्राणी मे अनगार धर्म पालने की शक्ति भी आ जावेगी और इस प्रकार वह ससार के जन्म–मरण से छुटकारा पाकर अपना कल्याण कर सकेगा।

भगवान से धर्मोपदेश सुनकर सकडालपुत्र बहुत आनन्दित हुआ। उसकी इच्छा आगार धर्म स्वीकार करने की हुई। उसने भगवान से प्रार्थना की कि – हे भगवान, आपने धर्म सुना कर मुझे कृतकृत्य कर दिया। मैं अनगार धर्म पालने मे अपने को सशक्त नहीं देखता इसलिए मेरी इच्छा है कि मैं आगार धर्म स्वीकार करू। दया करके मुझे वे बारह व्रत धारण करा दीजिये जिनको–आगार धर्म स्वीकार करने वाले के लिए–धारण करना आवश्यक है।

सकडालपुत्र की नम्र प्रार्थना सुनकर भगवान ने श्रावक के बारह व्रत धारण कराये, और व्रत के वे अतिचार भी बता दिये, जिनसे बचना – व्रत पालने के लिए – आवश्यक है।

भगवान से व्रत धारण करके, सकडालपुत्र को वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसी निर्धन को धन और रक को राज्य मिलने से हुआ करती है।

भगवान से व्रत धारण करके और भगवान को वन्दना नमस्कार करके, सकडालपुत्र – पोलासपुर नगर स्थित अपने घर को आया। घर मे सकडालपुत्र अपनी अग्निमित्रा पत्नी से कहने लगा कि – हे प्रिये मैंने श्रमण भगवान महावीर से धर्म सुनकर आगार धर्म स्वीकार किया है। मुझे श्रमण भगवान महावीर का धर्म हितकर और रुचिकर मालूम हुआ। मैं तुम्हे भी यही सम्मति देता हू कि तुम भी जाकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार ओर उनकी सेवा भक्ति करो, तथा उनके पास से – श्रावक के बारह व्रत रूप–आगार धर्म स्वीकार करो।

अग्निमित्रा ने पति की बात बडे हर्ष से सुनी ओर स्वीकार की। तव सकडालपुत्र ने अपने यहा रहने वाले एक व्यक्ति को – अग्निमित्रा के लिए – धर्मरथ तेयार करके लाने की आज्ञा दी। स्नानादि से निवृत्त होकर तथा सुन्दर स्वच्छ, एव धर्म सभा मे जाने योग्य वस्त्र पहिन कर – अपनी सखियो सहित – अग्निमित्रा धर्मरथ मे सवार हुई ओर भगवान के दर्शन करने को चली।

शास्त्र के उक्त कथन से प्रकट है, कि उस समय के लोग धर्मसभा मे जाने के लिए – और स्थान पर जाने के लिए पहिने जाने वाले वस्त्रो से – भिन्न प्रकार के वस्त्र पहिनते थे। धर्म सभा मे जाने के लिए – प्रदर्शक स्वभाव मे चचलता उत्पन करने वाले एव स्वय के तथा दूसरो के हृदय मे विकार–वृद्धि करने वाले वस्त्रो का उपयोग करना धर्म का उचित सत्कार नही करना हे। सम्भवत इसी भावना को लेकर उस समय के लोग– धर्म सभा मे जाने के समय ऐसे वस्त्र पहिनते होगे जिनसे उक्त दोष उत्पन्न न हो।

भगवान महावीर की सेवा मे उपस्थित हो, अग्निमित्रा और उसकी सखियो ने भगवान को वन्दन नमस्कार किया। भगवान महावीर ने अग्निमित्रा सहित उपस्थित जन समुदाय को धर्म सुनाया। भगवान के मुख से धर्म सुन कर अग्निमित्रा बहुत आनन्दित हुई, तथा भगवान को वन्दना नमस्कार करके प्रार्थना करने लगी कि – हे भगवान मैं निग्रन्थ – प्रवचन को श्रद्धती हू और आपने जो कुछ कहा है, उसे सत्य मानती हू। मैं दीक्षा लेकर अनगार धर्म पालने मे तो असमर्थ हू, इसलिए पाच अनुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप – गृहस्थ–धर्म अगीकार करना चाहती हू। कृपा करके आप, मुझे श्राविका के बारह व्रत धारण करा दीजिये।

अग्निमित्रा की विनम्र प्रार्थना पर, भगवान ने अग्निमित्रा को श्राविका के बारह व्रत धारण कराये और उनके अतिचार भी बता दिये।

भगवान से बारह व्रत धारण करके अग्निमित्रा, बहुत हर्षित हुई और भगवान को वन्दना नमस्कार करके रथ पर सवार हो – अपने घर को लौट आई।

सकडालपुत्र पहले आजीविक मत का अनुयायी था, और अव केवली प्ररूपित धर्म का उपासक हुआ है। जिस प्रकार उसने, केवली–प्ररूपित धर्म स्वीकार करके, अपनी स्त्री से भी यही धर्म स्वीकार करने के लिए कहा–और अग्निमित्रा ने, भगवान का धर्म स्वीकार भी किया इसी प्रकार सकडालपुत्र जब गौशालक–मत का अनुयायी बना था, तब भी उसने, अग्निमित्रा से गौशालक का धर्म मत स्वीकार करने के लिए कहा होगा–और अग्निमित्रा ने स्वीकार भी किया होगा। अर्थात् सकडालपुत्र के साथ ही, अग्निमित्रा, भी आजीविक मत की अनुयायिनी रही होगी। ऐसा होते हुए भी, सकडालपुत्र ने गौशालक का मत त्याग कर भगवान महावीर का धर्म स्वीकार किया तब अग्निमित्रा ने भी – पति का अनुसरण करते यही किया। यही नहीं हुआ कि उसने गौशालक के मत का पक्ष लेकर, पति की बात या कार्य का विरोध किया हो, आप गौशालक मत की ही अनुयायिनी रही हो। जिस समय ऐसा था उस समय दाम्पत्य–जीवन भी कलहपूर्वक नहीं किन्तु सुखपूर्वक बीतता था। आज यह हो रहा है कि पति जिस धर्म का अनुयायी है, पत्नी उसके विराधी धर्म की अनुयायिनी है और पत्नी जिस धर्म की अनुयायिनी है पति उसके विरोधी धर्म का अनुयायी हे। पत्नी पति के गुरु को कुगुरु पति के धर्म को मिथ्या–धर्म और पति के धर्म–कार्य को पाप मानती है तथा पति पत्नी के गुरु को कुगुरु पत्नि के धर्म को मिथ्या धर्म एव पत्नी के धर्म–कार्य

को पाप मानता है। वह उसके धर्म तथा गुरु की निन्दा करती है। न पति ही, अपना माना हुआ धर्म, पत्नी को समझा सकता है, न पत्नी ही अपना माना हुआ धर्म पति को समझा सकती है। इस प्रकार धर्म भी दाम्पत्य–कलह का कारण बन रहा है। एक ही घर के लोग, और विशेषत दम्पति जब परस्पर विरोधी धर्म के अनुयायी हो, तब जीवन सुख–पूर्वक बीते तो कैसे ? और पत्नि पति की धर्मसहायिका तथा पति, पत्नी का धर्मसहायक कैसे माना जावे ? ऐसी दशा मे, यह भी कैसे कहा जा सकता है कि इनमे परस्पर विश्वास है। हा, यह दशा, पारस्परिक अविश्वास का द्योतक अवश्य है। पूर्व की जितनी भी कथाए हैं, उनमे यह प्रमाण कहीं भी नहीं मिलता है कि पति–पत्नी जीवन भर भिन्न–भिन्न और परस्पर विरोधी धर्म के अनुयायी रहे हो। बल्कि यह प्रमाण विशेष रूप से मिलता है कि या तो पति के स्वीकार किये हुए धर्म को पत्नी ने भी स्वीकार किया– जैसे कि सकडालपुत्र आनन्द आदि की पत्नियो ने या पत्नी के स्वीकार किये हुए धर्म को, पति ने भी स्वीकार किया– जैसे कि चेलना रानी के स्वीकार किए हुए केवली प्ररूपित–धर्म को, राजा श्रेणिक ने भी अपनाया था।

इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि सहयोग की दृष्टि से पति या पत्नी, किसी असत्य धर्म के उपासक बन जावे। किन्तु यह अर्थ है कि परस्पर निर्णय करके जो सत्यधर्म हो, उसे स्वीकार करना उचित है। घर मे एक व्यक्ति सत्य धर्म का उपासक हो और दूसरा असत्य धर्म का अनुयायी हो तो शान्तिभग होना स्वाभाविक है। इसलिये सत्य धर्म को पहिचान कर उसी का उपासक होना श्रेयस्कर है।

भगवान महावीर से आगार धर्म स्वीकार करके सकडालपुत्र श्रमणोपासक हुआ। उसने जीव अजीव आदि सव तत्त्वो को समझा और आगार धर्म का पालन करता हुआ, अपना जीवन सुखपूर्वक विताने लगा। कुछ समय तक पौलासपुर नगर में विराजकर भगवान महावीर भी अन्यत्र जनपददेश मे विहार कर गए।

उधर गौशालक ने सुना कि मेरे अनुयायी सकडालपुत्र ने होनहारवाद तथा आजीविक मत की श्रद्धा त्याग कर भगवान महावीर के पुरुषार्थवाद को मान लिया है ओर श्रमणोपासक बन गया हे। गोशालक ने यह सुनकर विचार किया कि में पोलासपुर जाकर सकडालपुत्र से श्रमण निर्ग्रंथ धर्म का त्याग कराऊँ और उसे फिर आजीविक मतानुयायी बनाऊ। इस प्रकार निश्चय करके गौशालक अपने सघ सहित पौलासपुर आया तथा आजीविक पथिया

की सभा मे अपने भण्डोपकरण रखकर, कुछ अनुयायियो को साथ ले वह सकडालपुत्र के यहा गया।

मिथ्या–मत के प्रचारक लोग, अपने अनुयायियो की सख्या बढाने के लिये प्रत्येक उपाय का अवलम्बन किया करते हैं। उन्हे धर्म–अधर्म की उतनी अपेक्षा नही होती जितनी अपेक्षा अपने अनुयायी बढाने की होती है। इसके लिए वे कभी नम्र से नम्र बन जाते हैं, कभी मूर्तिमान क्रोध बन जाते हैं और कभी सहृदय गुणग्राहक तथा विरोधी की प्रशसा करने वाले भी बन जाते हैं।

गौशालक को अपने यहा आते देखकर सकडालपुत्र समझ गया कि ये मेरे पूर्व गुरु अपना सिद्धात मुझसे मनवाने के लिए आ रहे हैं। उसने विचारा कि इस बात को भली–भाति समझ चुका हू, कि गौशालक का सिद्धात मेरे ही लिये नही, किन्तु सारे ससार के लिए अहितकर है। ऐसी दशा मे इनका सत्कार करना इन्हे अपना सिद्धात माने जाने की आशा दिलाना है। किसी आशावाले को निराश करने की अपेक्षा, आशा न होने देना ही अच्छा है। यदि, वे अतिथि या अभ्यागत के रूप मे आये होते, तब तो इनका आदर–सत्कार करना मेरा नैतिक कर्तव्य था लेकिन ये अपने मिथ्यामत का प्रचार करने आये हैं ऐसी दशा मे इनको सम्मान देना उनके मत को सम्मान देना है। ऐसे दिये हुए सम्मान का और लोगो पर बुरा असर पडेगा। इसके साथ ही तिरस्कार करना भी अच्छा नहीं है, इसलिए मुझे मौन धारण कर लेना ही ठीक है।

गौशालक सकडालपुत्र के यहा आया, लेकिन उक्त विचार से सकडालपुत्र गौशालक को देखकर न तो किसी प्रकार प्रभावित ही हुआ, न पहले की भाति उसने गौशालक का सत्कार ही किया। वह उसी प्रकार मौनस्थ रहा जिस प्रकार कि गौशालक के आने से पहले था। सकडालपुत्र के इस व्यवहार से गौशालक को बडा ही आश्चर्य हुआ। सकडालपुत्र की मुखमुद्रा पर से गौशालक समझ गया कि भगवान महावीर के उपदेश का इस पर बहुत प्रभाव पड चुका है इसी से अब यह मुझे और मेरे सिद्धात को आदर की दृष्टि से नही देखता है। यदि ऐसा न होता तो यह मुझे देखकर भी मौन तथा स्थिर भाव से न बैठा रहता।

गौशालक विचारने लगा कि मैं सकडालपुत्र की प्रार्थना पर नहीं किन्तु स्वेच्छा से इसके यहा हू। अब यदि मैं यहा से लौट जाता हू – तो यह मेरे अनुशासन से निकल ही गया है लेकिन मेरे अन्य अनुयायियो पर भी बुरा प्रभाव पडेगा। यद्यपि मै जिस उद्देश्य से इसके यहा आया हू उसमे सफलता मिलने की आशा तो नही दिखती लेकिन कम से कम आज तो जिस तरह बने

उस तरह इससे स्थान पाट आदि प्राप्त करने चाहिये जिससे दूसरे लोगो के हृदय मे मेरे या मेरे मत के प्रति अश्रद्धा न हो। यह एक मेरा प्रसिद्ध अनुयायी था। यदि मैं इसके यहा से इसी समय चला जाऊगा तो लोगो मे यह बात फैल जावेगी कि सकडालपुत्र अब गोशालक का उपासक नहीं रहा। इस बात का मेरे उपासको पर बुरा प्रभाव पडेगा इसलिए जैसे हो वैसे इससे स्थान पाट आदि लेकर इसी के यहा ठहरना चाहिए। ऐसा होने पर और लोग कम से कम यह तो समझेगे ही कि सकडालपुत्र भगवान महावीर और गौशालक को समान रूप से मानता है। इसके सिवा यदि मैं सकडालपुत्र के यहा रहूगा तो सम्भव है कि कभी इसके विचारो को अपने सिद्धान्त के अनुकूल भी कर सकू।

सम्भवत इस प्रकार विचार कर, ही गौशालक ने, भगवान महावीर की प्रशसा द्वारा, सकडालपुत्र से सम्मान प्राप्त करने का निश्चय किया। यह सकडालपुत्र से कहने लगा कि, देवानुप्रिय, क्या यहा महामहान् आये थे।

गौशालक का प्रश्न सुनकर सकडालपुत्र ने विचारा, कि यद्यपि अब मैं, गौशालक या इसके सिद्धात को पूर्व की भाति आदर की दृष्टि से नही देखता न मेरी इच्छा इससे बात करने की ही हे, लेकिन यह तो जानू कि गौशालक महामहान् कहता किसे हे ?

इस प्रकार विचार कर सकडालपुत्र ने गोशालक से पूछा कि – देवानुप्रिय महामहान् कोन ! अर्थात् आप महामहान किसे कहते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर मे, गौशालक ने कहा कि– में, श्रमण भगवान महावीर को महा–महान् कह रहा हू।

'श्रमण' का अर्थ है साधु। जो व्यक्ति ससार के समस्त पदार्थों से ममत्व त्याग कर अपने आत्मा को कल्याण मार्ग मे लगाये हुए हे और मोक्ष प्राप्ति ही जिसका ध्येय हे उसे श्रमण साधु या अनगार कहते हैं। भगवान' का अर्थ मालिक स्वामी या प्रभु है। जो ज्ञान का स्वामी हे अपने आत्मा पर जिसका पूर्ण आधिपत्य है, उसे भगवान कहते हैं। 'महावीर' का अर्थ हे वीरो का भी वीर। साधारण वीरो से न जीते गये– काम क्रोधादि पर जिसने विजय प्राप्त कर ली हे – उन्हे नष्ट कर दिया हे – उसे महावीर कहते हैं। श्रमण भगवान और महावीर ये तीना ही विशेषण हैं। इन विशेषणो द्वारा ही गोशालक ने चौवीसवे तीर्थंकर–सिद्धार्थपुत्र – का परिचय दिया हे तथा वे इन विशेषणो से ही प्रसिद्ध भी थे।

गौशालक के उत्तर देने पर भी सकडालपुत्र चुप रहा। तब गौशालक ने, सकडालपुत्र से फिर पूछा कि – हे देवानुप्रिय क्या यहा महागोप आये थे?

गौओ की रक्षा करते हुए उन्हे उनके स्थान पर पहुचा देने वाले को 'गोप' कहते है। गोप की तरह जो ससार के सभी प्राणियो को सुरक्षित रूप से–जीव के वास्तविक स्थान – मोक्ष मे पहुचाने का उपाय करता है उसे 'महागोप कहते हैं।

गौशालक के इस दूसरे प्रश्न को भी सुनकर सकडालपुत्र ने यही पूछा कि–हे देवानुप्रिय आप महागोप किसे कह रहे हैं ? गौशालक ने उत्तर दिया कि– मैं श्रमण भगवान महावीर को, महागोप कह रहा हू। सकडालपुत्र ने पश्न किया कि–आप किस अर्थ से उन्हे महागोप कह रहे हैं ? इसके उत्तर मे गौशालक कहने लगा कि – जिस प्रकार गौओ को वन मे भटकती रहने देने पर उनके विनाश का भय रहता है, चोरो द्वारा चुराये जाने का डर रहता है, इसलिये गोप लोग उन्हे डण्डे से घेर कर बाडे मे ले आते हैं और इस प्रकार उन गौओ को हिसक जीव चोर इत्यादि की ओर से सुरक्षित कर देते हैं उसी प्रकार इस ससार रूपी वन मे भटकते हुए प्राणियो को भगवान महावीर धर्म–रूपी डन्डे से निर्वाण रूपी बाडे मे पहुँचाकर जन्म–मरण के भय से मुक्त कर देते हैं। इसी कारण मैंने उन्हे महागोप कहा है।

गौशालक से महागोप की व्याख्या सुनकर भी सकडालपुत्र चुप रहा। तब गौशालक ने फिर पूछा कि–हे देवानुप्रिय क्या यहा महा–सार्थवाही आये थे ? गौशालक के इस प्रश्न को सुनकर, सकडालपुत्र ने पूर्व की भाति गौशालक से पूछा कि– देवानुप्रिय, महासार्थवाही कौन ? गौशालक ने उत्तर दिया कि श्रमण भगवान महावीर, महासार्थवाही हैं। सकडालपुत्र ने फिर पूछा कि – श्रमण भगवान महावीर, महासार्थवाही किस अर्थ से हैं ?

सकडालपुत्र के प्रश्न के उत्तर मे गौशालक कहने लगा कि जगल के भयानक तथा सकटपूर्ण पथ मे साथ रह कर जो सुरक्षित रूप से नगर मे पहुचा देता है, उसे सार्थवाही कहते हैं। श्रमण भगवान महावीर इस ससार रूपी भयानक वन मे प्राणियो को धर्म रूपी सरल मार्ग बताते हैं, और इस वन से निकाल कर निर्वाण रूपी नगर में पहुचा देते हैं, इसलिए वे महासार्थवाही हैं।

महासार्थवाही की व्याख्या सुनकर भी सकडालपुत्र गौशालक से कुछ न बोला। तब गौशालक ने सकडालपुत्र से फिर पूछा कि–हे देवानुप्रिय, क्या यहा महाधर्म कथी आये थे ? सकडालपुत्र ने गौशालक से फिर यही प्रश्न किया कि आप महाधर्मकथी किसे कहते हैं ? गोशालक ने उत्तर दिया कि–में

श्रमण भगवान महावीर को महाधर्मकथी कहता हू। सकडालपुत्र ने पूछा कि—आप उन्हे महाधर्मकथी किस अर्थ से कहते हैं। गोशालक उत्तर मे कहने लगा कि—इस ससार मे, बहुत से जीव चक्कर खाते फिरते हैं और नाना प्रकार से कष्ट उठा रहे हैं। भगवान महावीर मोक्ष प्राप्ति के लिए, उन जीवो को धर्म सुना कर सत्पथ पर लगा रहे हैं, इसलिये मैंने उन्हे महाधर्मकथी कहा है।

गौशालक से, महाधर्मकथी की व्याख्या सुन कर भी सकडालपुत्र चुप ही रहा। तब गौशालक ने फिर प्रश्न किया कि—हे देवानुप्रिय क्या यहा महानाविक आये थे। सकडालपुत्र ने पूछा कि आप, महानाविक किसे कह रहे हैं ? गौशालक ने उत्तर दिया कि—मैं श्रमण भगवान महावीर को महानाविक कह रहा हू। सकडालपुत्र ने पूछा कि—आप किस अर्थ से उन्हे महानाविक कह रहे हैं ? गौशालक ने कहा कि—इस ससार रूपी समुद्र मे बहुत से जीव त्रास पाते हैं, डूब रहे हैं और जन्म—मरण रूपी जल लहरो से टकरा रहे हैं। भगवान महावीर, ऐसे जीवो को , धर्म रूपी नाव मे बैठाकर ससार—समुद्र से पार करा देते हैं और मोक्ष रूपी नगर मे पहुँचा देते हैं – जहा वे जीव दु ख रहित हो जाते हैं। भगवान महावीर इस धर्म रूपी नाव के नाविक हैं। नाविक तो साधारण समुद्र मे ही नाव चलाता है, लेकिन भगवान महावीर की धर्म रूपी नाव, ससार रूपी महासमुद्र मे चलती है और जल मे चलने वाली नाव के डूबने का जैसा भय रहता है, वैसे भय से भगवान महावीर की वह – धर्मरूपी—नाव मुक्त है। इसी कारण से भगवान महावीर को मैंने महानाविक कहा है।

गौशालक ने सकडालपुत्र से कई बार प्रश्न किये लेकिन सकडालपुत्र ने उसकी इच्छानुसार उत्तर नहीं दिया। सकडालपुत्र ने गोशालक को इसलिये उत्तर नहीं दिया कि एक तो सकडालपुत्र यह जानना चाहता था कि भगवान महावीर के विषय मे, गौशालक कैसे उद्‌गार निकालता है। दूसरे, भगवान महावीर के विरोधी गोशालक के मुख से भगवान महावीर की प्रशसा सुनने मे सकडालपुत्र को आनन्द आता था। वह विचारता था कि यदि मैं गौशालक को उसके प्रश्न का उत्तर शीघ्र ही दे दूगा तो फिर वह भगवान महावीर की प्रशसा न करेगा। इसके सिवा मैं यह भी न जान सकूगा कि मुझसे उत्तर न पाने पर गौशालक भगवान महावीर के लिए कैसे उद्‌गार निकालता है। सम्भवत इस प्रकार सोचकर ही सकडालपुत्र न गोशालक स उसके द्वारा कहे हुए भगवान महावीर के विशषणो का अर्थ जानन क सिवा – और कुछ नहीं कहा। लेकिन जब गौशालक ने सकडालपुत्र स पाच बार प्रश्न किये और पाचो ही बार भगवान महावीर की प्रशसा की तब सकडालपुत्र

ने विचारा कि अब गौशालक से बातचीत नही करना, अनुचित होगा। अब तो इससे कुछ बातचीत करनी चाहिए।

इस प्रकार सोचकर और गौशालक से महानाविक का अर्थ जान कर सकडालपुत्र ने गौशालक से कहा कि – हे देवानुप्रिय, लोक मे आप बडे विचक्षण बुद्धिमान माने जाते हैं। आप इस तरह नयवादी, एव कुशल–वक्ता हैं अपनी बात सिद्ध करने मे, आपको देर भी नही लगती है और बात के तत्व को भी आप शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। आप मे, ये सब गुण दिखाई देते हैं, भगवान महावीर के गुणो से भी आप भिज्ञ हैं और उनकी प्रशसा भी करते हैं लेकिन यह समझ मे नही आता कि ऐसा होते हुए भी आप से और भगवान महावीर से मत–भेद क्यो है ? यदि भगवान महावीर की कोई बात आपको अयथार्थ मालूम होती है तो आप उनसे वाद–विवाद करके, वास्तविकता का निर्णय क्यो नहीं कर लेते हैं ?

सकडालपुत्र की बात के उत्तर मे, गौशालक ने कहा कि हे देवानुप्रिय, मैं भगवान महावीर से वाद–विवाद करने मे असमर्थ हू। जिस प्रकार, एक हृष्ट–पुष्ट शरीर वाले बलशाली मेघावी और व्यायाम किये युवक के हाथ से, भेड बकरी तीतर बटेर प्रभृति छोटे–छोटे पशु–पक्षी, अपनी शक्ति के बल पर नहीं छूट सकते उसी प्रकार मैं, भगवान महावीर से वाद–विवाद मे नही जीत सकता। भगवान् महावीर से वाद–विवाद करने का मेरा साहस करना वैसा ही होगा जैसा कि सिह से लडने के लिए, बकरी का साहस करना होता है।

गौशालक ने भगवान महावीर की जो प्रशसा की थी, वह हार्दिक नही थी किन्तु अपना उद्देश्य सफल करने के लिये थी। इसलिये गौशालक का यह कार्य न तो समदृष्टिपने का ही था, न भगवान की आज्ञा मे ही था। जो लोग अज्ञानी के दान मानादि भी समदृष्टि के दान–मान सम्मान की तरह भगवान की आज्ञा मे कहते हैं। उन्हे गौशालक के इस कार्य पर विचार करना चाहिए कि गौशालक ने भगवान की इतनी प्रशसा की, इस प्रकार गुणगान किया फिर भी वह भगवान का निन्दक क्यो कहलाया ? वास्तव मे बात यह है कि अज्ञानी का दान मान सम्मान हार्दिक नहीं होता, किन्तु बनावटी केवल लोगो को दिखाने या सासारिक कार्य सिद्ध करने के लिये होता है और समदृष्टि का दान मान सम्मान बनावटी लोगो को दिखाने या सासारिक कामना के लिए नहीं होता किन्तु हार्दिक तथा मोक्ष के हेतु होता है। इसलिये समदृष्टि के दान मान सम्मान भगवान मी आज्ञा मे नहीं हैं।

गौशालक की बात सुनकर सकडालपुत्र ने विचारा कि गौशालक ने मेरे गुरु भगवान महावीर की इतनी प्रशसा की है और उनसे वादविवाद करने मे उन्हे सिह, तथा अपने आपको बकरी के समान मान रहा है ऐसी दशा मे कम से कम इसे ठहरने के लिए स्थानादि तो देना ही चाहिए। इस प्रकार सोचकर, सकडालपुत्र ने गौशालक से कहा कि हे देवानुप्रिय आपने मेरे धर्माचार्य भगवान महावीर का, उचित और वास्तविक गुणानुवाद किया है इसलिये मै, आपको मेरी दूकान मे ठहरने एव पाठ शय्या, सथारा आदि लेने के लिए आमन्त्रित करता हू। आपको , जो चाहिये सो लीजिये।

गौशालक ने, भगवान महावीर की जो प्रशसा की थी वह इसी उद्देश्य से कि मुझे सकडालपुत्र, अपने यहा ठहरने का स्थानादि दे। अपने उद्देश्य मे सफलता मिलने से, गौशालक प्रसन्न हुआ और वह, सकडालपुत्र की दूकान मे शय्या सथारा आदि लेकर ठहर गया। वहा ठहर कर गौशालक सकडालपुत्र को फिर अपना अनुयायी बनाने की चेष्टा करने लगा। उसने सकडालपुत्र को, तर्क युक्ति सहित बहुत उपदेश दिया लेकिन वह सकडालपुत्र की अकाट्य युक्तियो के आगे, अपने उद्देश्य मे असफल रहा। सकडालपुत्र को अपना अनुयायी बनाने की ओर से गौशालक जब निराश हो चुका तब वहा से बिहार कर गया।

सकडालपुत्र श्रावक, भगवान महावीर से स्वीकार किये हुए व्रतो को सावधानी पूर्वक पालन करने लगा। व्रतो मे अनाचार होने देना तो दूर रहा अतिचार न होने देना का भी वह बहुत ध्यान रखता था। उसने चौदह वर्ष तक, भगवान महावीर से स्वीकार किये हुए व्रतो का घर मे रह कर–भली प्रकार पालन किया।

श्रावक–धर्म पालन करते जब चोदह वर्ष व्यतीत हो चुके और पन्द्रहवा वर्ष जा रहा था तब–आधी रात के समय सकडालपुत्र ने अपने मन मे विचार किया कि मुझ पर घर–गृहस्थी का बहुत भार है ओर कौटुम्बिक–प्रपच के कारण मैं इस आगार धर्म का भी पालन समुचित–रीति से नहीं कर पाता। मुझे अपनी सारी आयु, घर के कामो मे ही व्यतीत न करनी चाहिये किन्तु अन्त–समय मे काम आने वाले – धर्म से आत्मा को कुछ बलवान बना लेना चाहिये। जिस प्रकार मैंने सासारिक–वैभव सचय किया है उसी प्रकार मुझे धर्मरूपी धन भी सचय करना चाहिए। यह सासारिक धन –वैभव ता यही रह जावेगा साथ न जावेगा। साथ ता केवल धर्म ही जावगा। इसलिये मुझे उचित हे कि मैं सब के सन्मुख घर–गृहस्थी का भार अपन बड लडक

को सौंप– पौषध–शाला मे रहते हुए आत्मा को, निरन्तर धर्म चिन्तन मे लगा दू। अब मेरे लिये ऐसा ही करना श्रेयस्कर है, सासारिक–झगडो मे ही फसे रह कर मरना, ठीक नही है।

इस पकार निश्चय करके, सकडालपुत्र श्रावक ने अपने कुटुम्ब–परिवार के लोगो को, अपने यहा आमन्त्रित किया। आमन्त्रित लोगो को भोजन करा कर सब के सन्मुख सकडालपुत्र ने गृहस्थी का समस्त भार, अपने बडे लडके को सौंप दिया और आप इस भार से मुक्त हो गया।

पहले के लोग अपनी सन्तान के लिये जिस प्रकार यश, वैभव और कीर्ति सम्पादन करने का आदर्श रखते थे, उसी प्रकार, इनके–त्याग का भी आदर्श रखते थे। यही नही होता था, कि जिस प्रकार मकडी, जाल बनाकर फिर उसी मे फस मरती है उसी पकार सासारिक सम्पत्ति एकत्रित करके, उसी मे फस मरे। वे अपनी सन्तान को, नीतिपूर्वक सम्पत्ति–उपार्जन भी सिखाते थे और इसके साथ ही उसका त्याग भी सिखाते थे। किसी बात का प्रभाव कहने मात्र से ही नही पडा करता किन्तु आदर्श रखने से भी पडता है। बल्कि कहने की अपेक्षा करके बता देने का प्रभाव अधिक पडता है। इसके अनुसार पूर्वकालीन श्रावक पैतृक तथा स्वय की उपार्जित –सम्पदा को धर्म–सेवा के लिए त्याग कर अपनी सन्तान के सन्मुख क्रियात्मक–आदर्श रखते थे। 'जैसा पिता वैसा पुत्र' इस कहावत के अनुसार ऐसे त्यागियो की सन्तान भी त्यागिनी होती थी और वह भी धर्म के लिए बडी से बडी सम्पत्ति को त्यागने मे नही हिचकिचाती थी। आज इससे विपरीत हो रहा है कि घर सम्पत्ति सदा के लिए छोडना तो दूर रहा बहुत से लोगो को नियमित धर्मध्यान के लिए भी समय नहीं मिलता–इतनी देर के लिए भी सासारिक झझटो से अपने आपको मुक्त नही कर सकते–या यो कहो कि दो घडी के लिए भी वे ससार के काम नही छोड सकते। ऐसे लोगो की सन्तान के हृदय मे धर्म या त्याग के प्रति प्रेम उत्पन्न हो तो कैसे? हा अपने पिता के आदर्श को सामने रखकर सन्तान धर्म–प्रेम का ही त्याग चाहे कर डाले लेकिन ससार–त्याग का तो उसके सामने आदर्श ही नहीं रखा गया है इसलिए ससार–त्याग कैसे कर सकती? पूर्व समय के लोगो की भावना यह रहती थी कि हमारी सन्तान हमसे भी अधिक धर्मसेवी और सासारिक मोह त्याग करने वाली हो। इसके लिये वे स्वय सासारिक सम्पत्ति त्याग कर धर्म सेवा का आदर्श अपनी सन्तान के सामने रखते थे। ऐसा करके वे लोग अपना भी कल्याण कर लेते थे और अपनी सन्तान को भी कल्याण का मार्ग बता जाते थे।

सकडालपुत्र ने गृहकार्य का भार अपने बडे लडके को सौंप दिया ओर आप — इस ओर से स्वतन्त्र हो — श्रावक की ग्यारह प्रतिमाए स्वीकार कर पोषधशाला मे रहने लगा। धर्म–पालन करते हुए सकडालपुत्र को भगवान महावीर का धर्म छोडने के लिए देवता द्वारा बताये गये अनेक भय का भी सामना करना पडा लेकिन सकडालपुत्र न तो भयभीत ही हुआ न धर्म से विचलित ही हुआ। सकडालपुत्र को धर्म मे इस प्रकार दृढ देख कर अन्त मे देवता को भी भाग जाना पडा है।

सकडालपुत्र श्रावक बहुत दिनो तक तन–मन से धर्म की आराधना करता रहा। अन्त मे उसने सन्थारा कर लिया– अर्थात् समस्त खाद्य पदार्थों का त्याग कर धर्म के लिए शरीर उत्सर्ग कर दिया। इस अवस्था मे वह तीस दिन तक जीवित रहा और फिर शरीर छोड कर प्रथम देवलोक के अरुणभूत विमान मे देवतन धारण किया।

सकडालपुत्र श्रावक की उक्त कथा सुना कर गणधर भगवान श्री सुधर्मा स्वामी ने श्रीजम्बू स्वामी से कहा–कि हे जम्बू, भगवान महावीर के कथनानुसार सकडालपुत्र श्रावक ने अरुणभूत विमान मे चार पल्योयम का आयुष्य पाया हे। इस देव–गति के आयुष्य को क्षय करके वह महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होगा ओर वहा सयम को स्वीकार कर सिद्ध बुद्ध तथा मुक्त हो सब दु खो का अन्त करेगा।

उपसंहार

यह कथा एक ऐसे श्रावक की हे जो पहले सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म के विरोधी मत का अनुयायी था और फिर केवली–प्ररूपित धर्म का अनुयायी हुआ। विशेषत यह कथा धर्म को समझ कर पालन करने और धर्म' नाम धारी अधर्म' को त्यागने के आदर्श पर स्थित हे। कथा मे बताया गया है कि किसी असत्य मत के अनुयायी होने पर ओर यह समझ जाने पर कि मत असत्य है उस असत्य मत को किस प्रकार त्याग देना चाहिए तथा सत्य–धर्म के स्वीकार करने के पश्चात् उस पर किस प्रकार श्रद्धाविश्वास रखना एव उसका पालन करना चाहिए यह भी इस कथा मे दर्शाया गया है।

इस कथा म हिसा–अहिसा की गर्भित व्याख्या भी है। अर्थात यह भी बतलाया गया है कि सूक्ष्म और स्थूल हिसा म कैसा अन्तर हे तथा सूक्ष्म हिसा की अपेक्षा आन्तरिक शुद्ध परिणामा की किस प्रकार विशपता है। सकडालपुत्र कुम्भकार था इसलिय वाह्यदृष्टि स ता अपनी आजीविका क

लिए पृथ्वी पानी अग्नि आदि का आरम्भ करता था लेकिन उसके आतरिक परिणाम शुद्ध थे–बुरे न थे। इन शुद्ध परिणामो को दृष्टि मे रखकर ही देवता सकडालपुत्र के यहा आया था। देवता के इस आगमन से सिद्ध है कि शास्त्रकारो ने दव्य–हिसा की अपेक्षा भाव–हिसा को अधिक घातक–बुरा– माना है।

धर्मोपदेशक के लिये भी इस कथा मे यह बताया गया है, कि किसी झूठे मत मे फसे हुए व्यक्ति को उस झूठे मत से निकालने के लिये युक्ति प्रमाण आदि से किस पकार काम लेना चाहिए और उसे सत्य धर्म स्वीकार कराने के लिए किस पकार चेष्टा करनी चाहिए। स्वय भगवान महावीर ने भी, सकडालपुत्र के हृदय से असत्य मत निकाल कर, सत्य धर्म की स्थापना करने के लिए किन उपायो का अवलम्बन लिया है, यह बात धर्मोपदेशक को दृष्टि मे रखने योग्य है।

इस कथा मे एक विशेषता और है। वह यह कि धर्म पालन मे जाति–पात बाधक नही हो सकती। चाहे कोई किसी भी जाति का हो, धर्म मे उसे सबके समान ही अधिकार प्राप्त है। धर्मोपदेशक या धर्माचार्य को यह बात विशेष रूप से लक्ष्य मे रखनी चाहिये, कि कोई व्यक्ति जाति पाति मे हल्का होने के कारण धर्म से वचित न रहने पावे। भगवान महावीर का धर्म, विशेषत पीडित–जनो के लिए ही है। भगवान ने अपने धर्म मे तिरस्कृत जीवो को पहले स्थान दिया है। इसलिये पीडित और तिरस्कृत लोगो को धर्मोपदेश सुना कर शाति पहुचानी चाहिए और उन्हे धर्म का सेवक बनाना चाहिये।

सकडालपुत्र श्रावक की तरह जो लोग केवली प्ररूपित धर्म को समझ कर असत्यमत–त्याग सत्यधर्म का पालन करेगे उनका परम्परा पर सकडालपुत्र की तरह कल्याण होना स्वाभाविक है। इसलिये कथा की बातो को समझकर मिथ्यामत त्यागना और केवली प्ररूपित धर्म का पालन करना श्रेयस्कर है।

कथारम्भ

भारतवर्ष के अगदेश मे चम्पापुरी नामकी एक नगरी थी। चम्पापुरी बहुत प्रसिद्ध तथा उन्नत थी। भगवान महावीर के समय का वर्णन करते हुए कौणिक को भी चम्पा का राजा कहा है और दधिवाहन को भी। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि एक ही चम्पा के ये दोनो राजा प्रथम पश्चात् हुए अथवा चम्पा नाम की दो नगरिया थी, लेकिन जैन और बौद्ध साहित्य मे चम्पा का बहुत ही वर्णन मिलता है। उस वर्णन से प्रकट है कि उस समय चम्पा नगरी प्रत्येक दृष्टि से उन्नत थी। भगवान महावीर के वर्णन मे चम्पापुरी का बहुत उल्लेख हे। ओपपातिक सूत्र मे चम्पापुरी का विवरण देकर बताया गया है कि चम्पापुरी केसी थी? उस वर्णन मे आई हुई बातो पर विचार करने से ही चम्पापुरी की स्थिति और उसकी उन्नत दशा का पता लग सकता है। औपपातिक सूत्र मे चम्पापुरी का वर्णन करते हुए प्रारम्भ मे ही कहा गया है कि–

तेण कालेण तेण समयेण चम्पा नाम।
नगरी होत्था, रिद्धित्थिमिय समिद्धा।।

इस वर्णन से यह भी जाना जाता हे कि नगर मे तीन बातो का होना आवश्यक है। पहली बात हे ऋद्धि। ऋद्धि का अर्थ–हाट हवेली महल मकान, बाग तलाब कूप आदि। जल पवन ओर निवास आदि की सुविधा के साधनो की गणना ऋद्धि मे हे। दूसरी बात हे समृद्धि। नगर के लिए ऋद्धि के साथ समृद्धि का होना आवश्यक हे। समृद्धि का अर्थ हे –धन धान्यादि। यदि रहने के लिए महल मकान तो हो लेकिन खाने–पीने आदि जीवनोपयागी साधनो का कष्ट हो तो वे महल मकान आदि सुखदाई होने के स्थान पर दु खदायी हो जावेगे। ऋद्धि ओर समृद्धि के साथ ही नगरा के लिए तीसरी बात राजकीय सुव्यवस्था का हाना भी आवश्यक हे। समृद्धि तो हा परन्तु राजकीय सुव्यवस्था न हा किन्तु स्वचक्र–परचक्र का भय हो या परचक्र का

आधिपत्य हो तो वहा की ऋद्धि, समृद्धि थोडे ही समय मे भारत की ऋद्धि, समृद्धि की भाति नष्ट हो जावेगी। जिस नगर मे ऋद्धि भी हो, समृद्धि भी हो, राजकीय सुव्यवस्था भी हो, वह नगर सुखी एव उन्नत माना जाता है। शास्त्र के वर्णनानुसार चम्पापुरी मे ये तीनो ही बाते थी और इस प्रकार उस समय चम्पापुरी उन्नत नगरी थी। चम्पापुरी का सुधार केवल इहलौकिक सुधार तक ही सीमित न था, किन्तु उसका आध्यात्मिक सुधार भी था। शास्त्र के वर्णन से पाया जाता है कि भगवान महावीर चम्पापुरी मे बार–बार पधारते थे। इससे प्रकट है कि वहा के लोग धार्मिक थे। साथ ही चम्पापुरी मे चन्दनबाला ऐसी कन्या और सुदर्शन ऐसा पुरुष उत्पन्न हुआ था, इससे भी यह जाना जाता है कि वहा के लोगो का धार्मिक–जीवन भी अच्छा था। वैसे तो जहा अच्छाई होती है वहा किसी न किसी अश मे बुराई भी होती है। इसके अनुसार कपिला पडिता और अभया जैसी बुरे आचरण वाली स्त्रिया भी चम्पा मे ही हुई थी, लेकिन इनके कारण चम्पा को दूषण नही दिया जा सकता और ऐसा हो सकता है कि ये तीनो स्त्रिया चम्पा से बाहर की हो। भगवान महावीर के चातुर्मास साधु सन्तो का समय–समय पर आगमन और सती चन्दनबाला तथा सुदर्शन सेठ जैसे महापुरुष का जन्म चम्पा के लिये यही सिद्ध करता है कि चम्पा के अधिकाश निवासी धर्मात्मा थे।

चम्पापुरी के राजा का नाम दधिवाहन था। दधिवाहन प्रजाप्रिय, न्यायशील और नीतिनिपुण राजा था। राजा वही अच्छा माना जाता है जो क्षेमकर और क्षेमधर हो। जनता के कुशल के लिए पहले से जो मर्यादा बधी हुई है उसकी रक्षा करने वाला और नवीन परन्तु जनता के लिए हितकारी मर्यादा बाधने वाला राजा ही अच्छा समझा जाता है। दधिवाहन ऐसा ही राजा था। वह प्रजा का अच्छी तरह पालन करता था।

राजा दधिवाहन की पटरानी का नाम अभया था। अभया बहुत सुन्दरी थी इसलिये राजा दधिवाहन उसको स्त्रियो मे रत्न के समान मानता था और हृदय से चाहता था। सुन्दरी होने के साथ ही अभया त्रियाचरित्र मे भी कुशल थी। उसने अपने त्रियाचरित्र के बल से राजा दधिवाहन को अपना सेवक सा बना रखा था। उसको अपने रूप–सोन्दर्य एव अपनी चातुरी पर गर्व भी था। उसी ने सुदर्शन सेठ को अपने कपट–जाल मे फासकर शीलभ्रष्ट करना चाहा था और उसी के कृत्य के कारण सुदर्शन सेठ का चरित्र गाया सुनाया जाता है तथा सुदर्शन सेठ की जय बोली जाती है।

चम्पापुरी मे ही जिनदास नाम का सेठ रहता था। जिनदास धनसम्पन्न एव प्रतिष्ठित व्यक्ति था। राजा तथा प्रजा ने जिनदास को नगर–सेठ पद से विभूषित कर रखा था। उसकी पत्नी का नाम अर्हद्दासी था। अर्हद्दासी पतिभक्ता और धर्मपरायणा स्त्री थी। पतिपत्नी धार्मिक ओर श्रावक व्रतधारी थे। दोनो पारस्परिक सहयोग से सुखपूर्वक गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हुए श्रावक धर्म का पालन करते थे तथा अपने–अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करते थे। लेकिन इन दोनो से कोई सन्तान न थी। सन्तान न होने के कारण पतिपत्नी को किसी प्रकार का खेद न था, फिर भी स्त्री–स्वभावानुसार अर्हद्दासी को एक दिन यह विचार हो आया कि मुझे और सुख तो प्राप्त है, पति भी मुझ पर कृपा रखने वाले एव धर्मात्मा हैं, घर भी सम्पन्न है तथा लोकिक प्रतिष्ठा भी अच्छी है परन्तु पुत्र नही है, इसलिये भविष्य अन्धकारमय हे। पुत्र न होने के कारण हम लौकिक धर्म का भार किसको सौंपकर आत्म कल्याण मे लग सकेगे? हमारा उत्तराधिकारी कौन होगा? वास्तव मे गार्हस्थ जीवन के लिये पुत्र का होना आवश्यक हैं। पुत्र के बिना कुल उसी प्रकार सूना रहता हे, जिस प्रकार रात्रि मे दीपक के बिना घर सूना रहता है। वे स्त्रिया अवश्यमेव सद्भागिनी हैं, जिनको माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन में ऐसी हतभागिनी हू कि मेंने एक भी सन्तान को जन्म नही दिया। विवाह करके अपने पर जो ऋण चढाया जाता हे, वह ऋण विषय–विलास से नही उतरता है। किन्तु सन्तान का पालन–पोषण करने से ही उतरता हे। सन्तान की सेवा ओर सन्तान की अनुकम्पा दाम्पत्य जीवन मे होने वाले पाप से मुक्त भी कर सकती हे। मुझे ऐसा अवसर ही नही मिला कि जिससे में दाम्पत्य जीवन के ऋण से मुक्त होती। मेरे पर यह ऋण भी हे ओर मेरा भविष्य भी अन्धकारपूर्ण हे।

इस प्रकार विचार करती–करती अर्हद्दासी चिन्तित हो उठी। उसका प्रसन्न मुख फीका पड गया। जब मन मे किसी प्रकार की चिन्ता होती हे तव मनुष्य को खाना–पीना पहिनना–ओढना या हसना–बोलना आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसीके अनुसार अर्हद्दासी को भी सव कुछ बुरा लगन लगा।

अर्हद्दासी इस प्रकार की चिन्ता मे वेठी थी इतन ही म बाहर से सठ आया। अपनी पत्नी को उदास देखकर सेठ समझ गया कि आज पत्नी का कोई वडी चिन्ता ह इसीसे यह उदास हे। सठ ने सेठानी से पृछा–आज तुम्ह ऐसी क्या चिन्ता है जिसके कारण तुम इस प्रकार उदास हा? पति का अपन

सामने और इस पकार का पश्न करते देखकर अर्हद्दासी ने विचार किया कि मैं अपनी चिन्ता से पति को क्यो दु खी करूँ? यह विचारकर उसने अपनी चिन्ता दबा, पति से कहा–जिसे आप जैसा पति पाप्त हो उस स्त्री को किसी पकार की चिन्ता कैसे हो सकती है? मुझे कोई चिन्ता नही है।

इस पकार पति से पिय वचन कहकर अर्हद्दासी ने जिनदास को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की, लेकिन अर्हद्दासी का मुख यह स्पष्ट बता रहा था कि इसको किसी पकार की चिन्ता है। सेठ बुद्धिमान था वह समझ गया कि अर्हद्दासी मेरे सामने अपनी चिन्ता प्रकट करके मुझे अपनी चिन्ता के दु ख से दु खी नही करना चाहती। यह समझने के साथ ही सेठ ने विचार किया यह अपने कर्त्तव्य का ऐसा विचार रखती है, फिर क्या मेरा यह कर्त्तव्य नही है कि मैं इसकी चिन्ता मिटाऊ? बुद्धिमानो का कथन है कि पत्नी को सदा प्रसन्न रखना मुर्झाई हुई कभी न रहने देना। पत्नी अर्द्धागिनी होती है अत उसको मुर्झायी हुई रहने देना अपने आधे अग को ही मुर्झाया हुआ रखना है। इसलिये मेरा भी कर्त्तव्य है कि मैं इसकी चिन्ता मिटाने और इसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करू।

अर्हद्दासी की चिन्ता मिटाने के लिये जिनदास ने अनेक प्रयत्न किये। प्रसन्नता देने वाली बाते भी की अर्हद्दासी को खेल–तमासे भी दिखलाये तथा वन–उपवन मे भी घुमाया परन्तु यथेष्ट परिणाम न निकला। जिनदास ने देखा कि अर्हद्दासी ऊपर से तो प्रसन्नता दिखलाती है लेकिन इसका हृदय प्रसन्न नही है किन्तु चिन्ताग्रस्त ही है। इसको प्रसन्नता प्राप्त कराने के लिये किये मेरे सब कार्य रोग दूसरा और औषध दूसरी के समान व्यर्थ हुए हैं इसलिये अब इसीसे यह जानना चाहिये कि इसको क्या चिन्ता है।

जिनदास ने अर्हद्दासी से कहा कि–प्रिये मुझ को कष्ट न हो, इसलिये तुमने अपनी चिन्ता दबाने की चेष्टा की, लेकिन तुम्हारी आकृति यह स्पष्ट कह रही है कि तुम्हारे हृदय मे चिन्ता है। मैने तुम्हे चिन्ता मुक्त करने का प्रयत्न भी किया परन्तु मुझे मेरे प्रयत्न मे सफलता नही मिली। इससे मै समझ गया कि तुम्हे कोई ऐसी बडी चिन्ता है जो इन प्रयत्नो से नही दब सकती। यदि तुम उचित समझो तो मुझे भी यह बताओ कि तुमको किस चिन्ता ने घेर रखा है। तुम समझती हो कि चिन्ता प्रकट करने पर पति को कष्ट होगा परन्तु वास्तव मे मै तुम्हारी चिन्ता न जानने से दु खी हो रहा हू ओर मेरे हृदय मे यह विचार होता ह कि क्या मे तुम्हारी चिन्ता सुनने के योग्य नही हू।

पति की बात सुनकर अर्हद्दासी ने विचार किया कि पति मेरी चिन्ता जानने के लिए आतुर हैं और चिन्ता न जानने से दु खी हैं। इसलिए अब इनसे चिन्ता का कारण अप्रकट रखना ठीक नही। इस प्रकार सोचकर उसने जिनदास से कहा—नाथ आप यह क्या कह रहे है? ऐसी कौनसी बात हो सकती है जिसे सुनने के योग्य आप न हो? यह मेरा सद्भाग्य है कि मुझे आपसे पति मिले हैं जो मेरी चिन्ता को न जानने से दु खी हैं अन्यथा मेरी अनेक बहिनो को ऐसे पति मिले हैं, जो पत्नी की चिन्ता जानने—मिटाने के बदले स्वय ही पत्नी को दु ख देते हैं। मैं केवल यह सोचकार ही आपसे अपनी चिन्ता दबा रही थी कि मेरी चिन्ता का कारण सुनाकर मैं आपको दु खित क्यो करू? लेकिन आप तो मेरी चिन्ता का कारण न जानने से दु खित हैं इसलिये अब यह बताती हू कि मुझे किस बात की चिन्ता है। यह तो आप जानते हैं कि मैं अपनी कुछेक दूसरी बहिनो की तरह खाने—पीने या गहने—कपडे की चिन्ता नही कर सकती। पूर्व पुण्य के प्रताप से और आप की कृपा से खाने—पीने या गहने—कपडे आदि की कुछ भी कमी नही है और कदाचित् कमी भी होती तो मैं धर्म को समझती हू इसलिये इन चीजो के विषय मे चिन्ता नही कर सकती। स्वामिन, आपकी ओर से भी मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नही हे। मेरी अनेक बहिनो को तो ऐसे पति मिले हैं, जो पत्नी को अपमानित तथा दु खित करते रहते हें ओर जिनका आचरण भी पत्नी के लिये दु खदायी रहता हे। मेरे सद्भाग्य से मुझे इस ओर का कोई कष्ट नही हे बल्कि में तो यही मानती रहती हू कि जेसे सुयोग्य पति मुझे मिले हैं वैसे ही पति मेरी सव बहनो को मिले। इस प्रकार मुझे ओर किसी बात की चिन्ता नही हे केवल यही चिन्ता हे कि अपने यहा कोई सन्तान नही हे। आज अपन जिस धर्म का पालन कर रहे हें, अपने पश्चात् उस धर्म का पालन कौन करेगा ओर अपने लोकोत्तर—धर्म स्वीकार करके आत्म—कल्याण करने के लिए घर—वार आदि का बोझ किस पर डालेगे? अपना उत्तराधिकारी कोन होगा? इस भविष्य सबधी विचार से ही मेरे को चिन्ता हें। में रह—रहकर यही सोचती हू कि हमारा ८ —जीवन केवल विषय—भोग के लिये ही रहा। सन्तानोत्पति और उसके पालन—पोषण विषयक कर्त्तव्य पालन करने का अवसर हम नहीं मिला। पत्नी का कर्त्तव्य हे कि वह पति से जा कुछ लती हे उसक वदल म पति को सुयोग्य सतान दे। लेकिन में अपना यह कर्त्तव्य पूरा न कर पाई और ऋणी ही वनी रही इन्हीं विचारा स मे चिन्तित हू।

अर्हद्दासी का कथन सुनकर जिनदास समझ गया कि अर्हद्दासी को सतान-विषयक चिन्ता है और यह चिन्ता मेरे ऋण से मुक्त होने के लिये है। यद्यपि स्त्रियो को इस प्रकार की चिन्ता होना अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन मैं पुरुष हू और जिनभक्त हू। इसलिये मुझे मेरे योग्य ही काम करना चाहिये। इस प्रकार सोचकर जिनदास ने अर्हद्दासी से कहा कि प्रिये, सन्तान का होना न होना अपने हाथ की बात नही है। तुमने जानबूझ कर तो सन्तानोत्पति को रोका नहीं। यदि सन्तान होती तो तुम उसके पालन-पोषण द्वारा मातृ कर्त्तव्य पूरा करके दाम्पत्य जीवन के ऋण से मुक्त हो जाती। लेकिन जब सतान हुई ही नहीं तब तुम क्या कर सकती हो? ऐसी दशा मे इस विषयक तुम्हारी चिन्ता व्यर्थ है। तुम चाहे जितनी चिन्ता करो, तुम्हारी चिन्ता सन्तानोत्पति के लिए उपयोगी नही हो सकती। बल्कि इस विषय मे तुम्हारा चिन्तित होना, अपनी धार्मिकता को दूषित करना है, अपन जिनभक्त श्रावक है। अपने को इस प्रकार की चिन्ता होनी ही न चाहिये। इसलिये तुम चिन्ता त्यागो। रही उत्तराधिकारी की बात सो उत्तराधिकारी हो या न हो अपने आत्मा के कल्याण-अकल्याण पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। उत्तराधिकार के होने मात्र से अपने आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता और उत्तराधिकारी के न होने से अपनी आत्मा का अकल्याण नहीं हो सकता। इसलिए चिन्ता छोडो और दान-धर्म के कार्य विशेष रूप से करती हुई अपना धन सद्कार्य मे लगाओ। यदि अपनी पुत्र विषयक अन्तराय टूटनी होगी तब तो टूट ही जावेगी नही तो अपनी आत्मा का कल्याण तो होगा ही तथा अपना द्रव्य सद्कार्य मे लगेगा, किसी अयोग्य के हाथ न जावेगा। अयोग्य उत्तराधिकारी को द्रव्य सौंपने की अपेक्षा द्रव्य को सद्कार्य मे लगाना ही श्रेष्ठ है। वैसे तो तुम धर्म-कार्य करती ही रहती हो लेकिन अब से विशेष करो और अपना द्रव्य भी दानादि शुभ कार्यो मे विशेष रूप से लगाओ। इस प्रकार की चिन्ता सर्वथा त्याग दो।

जिनदास ने अपनी पत्नी अर्हद्दासी को इस प्रकार समझा-बुझाकर चिन्ता मुक्त किया। पति के वचनो से अर्हद्दासी सन्तुष्ट हुई और पति की आज्ञानुसार पहिले की अपेक्षा अधिक सुरूप से धर्म-ध्यान दानादि सद्कार्य करने लगी। जिनदास भी श्रावक धर्म का पालन करता हुआ विशेष रूप से धर्म-ध्यान करने लगा एव इस दिशा मे अर्हद्दासी का उत्साह बढने लगा।

सुभग के भव मे

आत्मा को जो भी सुख–दु ख तथा हानि–लाभ होता है इष्ट–अनिष्ट का सयोग–वियोग देखना पडता है अथवा स्वय का जो उत्थान या पतन होता है, वह वर्तमान भव की करणी का ही परिणाम नही होता किन्तु पूर्व के एक या अनेक भव की करणी का परिणाम भी उसके साथ रहता है। यह बात शास्त्र से भी प्रकट है और अनुभव से भी सिद्ध है। इस भव की करणी का परिणाम इस भव मे भी प्राप्त होता है और अगले भव मे भी, परन्तु अच्छी या बुरी करणी के परिणाम प्राप्त तो होते ही हैं। यह बात दूसरी है कि कारण विशेष की सहायता से इस तरह के परिणाम को विपाक मे भोगने के बदले प्रदेश से ही भोग लिया जावे अथवा परिवर्तन कर दिया जावे और प्रकट मे परिणाम का उस रूप मे भोगना दृष्टि मे न आवे लेकिन अपने कृत्य का परिणाम किसी न किसी रूप मे प्राप्त अवश्य होता है और वह परिणाम चाहे वर्तमान भव मे प्राप्त हो या अगले भव मे। कर्म की स्थिति जब परिणाम देने के योग्य होती है, तभी परिणाम प्राप्त होता है और ऐसा होने मे कभी–कभी अनेक भव का अन्तर पड जाता हे। यानी एक भव के कृत्य का परिणाम कई भव के पश्चात् भी मिलता हे।

कहने का मतलब यह हे कि सुख–दु ख अच्छाई–बुराई अथवा उन्नति–अवनति आत्मा के कृत्य का ही परिणाम है, फिर वह परिणाम चाहे इस भव के कृत्य का हो अथवा पूर्व के किसी भव के कृत्य का। एक आत्मा सुखी है ओर दूसरी दु खी है। एक इस ससार मे भ्रमण करने का कार्य करता हे ओर दूसरा ससार से निकलने का। यह सव आत्मा के भिन्न–भिन्न कृत्यो का ही परिणाम है।

जिस सुदर्शन सेठ की यह कथा है वह सुदर्शन सेठ लोकिक दृष्टि से भी सुखी था ओर लोकोत्तर दृष्टि से भी। उसको इहलोकिक सुख भी प्राप्त था ओर पारलौकिक सुख भी प्राप्त हुआ। इहलोकिक सुख की दृष्टि से वह स्वस्थ था सुन्दर था कुलीन था अनुकूल स्त्री–पुत्र वाला था धनी था ओर प्रतिष्ठा प्राप्त भी था। इन सव इहलोकिक सुख के प्राप्त होने पर किसी किसीको पारलौकिक सुख प्राप्त नहीं होता। वल्कि कोई–कोई एसे भी होते हें जो इहलौकिक सुखो की सामग्री प्राप्त होने पर परलोक के लिये ओर दु ख पैदा कर लेते हें। वे इहलौकिक सुख–सामग्री का उपयोग ऐसी रीति से करते हें जिससे आगामी भव मे या तो नरक तिर्यंच गति को प्राप्त होते हे अथवा आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसर नहीं कर सकते। लेकिन सुदर्शन सेठ ने

इहलौकिक सब सुख पाप्त होने पर भी आत्मा को मोक्ष की ओर अग्रसर किया और अतत उसी भव मे मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। यद्यपि इसमे सुदर्शन की वर्तमान भव की करणी का परिणाम भी है, लेकिन पूर्व भव की अच्छी करणी के बिना वर्तमान भव मे अच्छी करणी भी नही हो सकती और मोक्ष के लिये केवल वर्तमान भव की करणी ही पर्याप्त नही होती, किन्तु अनेक जन्म की करणी के एकत्रित परिणाम से ही आत्मा को मोक्ष प्राप्त होता है। यह बात जैन शास्त्रो को भी मान्य है और अजैन ग्रन्थो को भी। इसलिये सुदर्शन के विषय मे यह देखना है कि उसकी पूर्व भव की ऐसी कौनसी करणी थी जो उसे सुदर्शन के भव मे इहलौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त कराने वाली हुई। पूर्व–भव मे सुदर्शन ग्वाले का बालक था और वहा उसका नाम सुभग था। सुभग किस करणी के प्रताप से सुदर्शन का चरमशरीरी भव तथा मोक्ष पाप्त कर सका, यह देखना है। यद्यपि मोक्ष–प्राप्ति मे किसी न किसी रूप मे सुभग के पूर्व भव अथवा पूर्व भवो की करणी भी आभारी हो सकती है, परन्तु उन भवो का इतिहास नही है, इसलिये सुदर्शन के केवल एक ही पूर्व भव सुभग की करणी के विषय मे ही विचार किया जाता है।

पहले के प्राय सभी श्रावको के वर्णन से यह पाया जाता है कि उनके यहा गाये भी रहती थी। आनन्द, कामदेव आदि श्रावकों का वर्णन करते हुए शास्त्र मे बताया गया है कि उन लोगो के यहा हजारों गाये थी। पहले के लोग जीवन निर्वाह के लिये गाय का होना आवश्यक मानते थे। आज के लोग तो गोपालन को ओछा तथा असुविधापूर्ण कार्य मानते हैं। ऐसा मानने वाले लोगो ने गायो से उत्पन्न घी, दूध आदि खाना तो नहीं छोडा है, लेकिन गायो का पालना छोड दिया है। ऐसा करने से उनकी स्वय की भी हानि हुई है और गायो की भी। स्वय के लिये गाय पालने वाले मे और दूध का व्यवसाय करने के लिये गाये रखने वाले मे प्रत्येक दृष्टि से अन्तर है। जो स्वय के लिये गाय पालता है उसका लक्ष्य यह होता है कि गाय को अच्छी खुराक मिले, जिससे इसके द्वारा मुझे अधिक तथा शुद्ध एव स्वास्थ्यवर्द्धक दूध प्राप्त हो और इसका तथा इसके बच्चे का स्वास्थ्य भी अच्छा रहे। इस प्रकार वह गौ की रक्षा का भी ध्यान रखता है तथा उसके बच्चे की रक्षा का भी। चाहे वह दूध देती हो या न देती हो स्वय पर उसकी रक्षा का दायित्व समझता है इसलिये दूध न देने पर भी उसकी सुविधा एव उसके सुख का ध्यान रखता है और किसी भी समय उसे कष्ट नही होने देता। उसको अपने आत्मीय के समान मानता है। श्रावक मे तो ये बाते विशेषरूप से होती हैं। इसके विरुद्ध

जो लोग दूध का व्यवसाय करने वाले होते हैं वे उन बातो का विचार नही रखते। उनका ध्येय तो यह रहता है कि मुझे गाय के खाने–पीने आदि मे खर्च तो कम करना पडे लेकिन इसके द्वारा अधिक से अधिक दूध प्राप्त हो। फिर ऐसा करने मे गाय या उसके बच्चे को कष्ट ही क्यो न हो? बल्कि दूध का व्यवसाय करने के लिये गाय आदि दुधारू पशु पालने वाले कई लोग गाय–भैंस के बच्चो को पैदा होते ही उसकी माता से अलग कर देते हैं। माता अपने बच्चो को देख भी नहीं पाती। फिर उस बच्चे को या तो कसाई के हाथ बेच देते हैं या वह बच्चा भूख का मारा स्वय ही मर जाता है। वे लोग ऐसा इसलिये करते हैं कि यदि बच्चा उसकी माता की दृष्टि मे आया तो माता उस से प्रेम करेगी, उसके बिना दूध न देगी तथा इस कारण वह बच्चा अपनी माता (गाय या भैंस) का कुछ दूध पी लेगा जिससे दूध की हानि होगी या बच्चे के खाने–पीने मे व्यय करना पडेगा। इस प्रकार व्यय के भय से अपने स्वार्थ के लिये वे लोग गाय के बच्चे की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हत्या कर डालते हैं। साथ ही गाय को खुराक भी ऐसी देते हैं, जिससे उसका अधिक से अधिक रक्त दूध मे परिणत हो और वह अधिक दूध दे। उनका लक्ष्य केवल अधिक दूध प्राप्त करना रहता हे, यह लक्ष्य नहीं होता कि दूध भी मिले और गाय की रक्षा भी हो। उनका प्रयत्न यह रहता है कि गाय इसी बार मे सब दूध दे डाले इसके लिये वे ऐसे उपायो का अवलम्बन लेते हैं, जिससे गाय या भैंस उस बार तो अधिक दूध देती हे लेकिन आगे के लिए वह दूध देने के प्राय अयोग्य हो जाती हे। इतना ही नहीं, किन्तु बम्बई कलकता आदि शहरो मे तो दूध के व्यवसायी कई लोग जैसे ही गाय भैंस ने दूध देना बन्द किया वेसे ही उन्हे पशुवध करने वाले कसाइयो के हाथ मे बेच देते हैं। क्योकि दूध न देने पर उन पशुओ को अपने यहा रखकर उनका खर्च उठाना उन्हे भारी लगता है। इस प्रकार स्वय के लिये गाय भैंस रखने वालो मे ओर दूध का व्यवसाय करने के लिये रखने वालो मे बहुत अन्तर है। वहा दूध के व्यवसाय के लिये रखे गये पशुओ के साथ निर्दयता का व्यवहार किया जाता हे फिर भी लोग स्वय पशु पालकर दूध खाना कठिन वल्कि कोई–कोई तो पशुपालन म पाप तक मानते हैं और वाजारू दूध घी खाकर दूध व्यवसाय के कारण हाने वाल पशु वध मे किसी न किसी रूप मे सहायक बनते हैं। भारत की अवनति के कारणा मे से एक यह भी है कि भारत का अधिकाश पशु धन नष्ट हा गया हे तथा नष्ट होता जा रहा है। जिस भारत म दूध दही घृत आदि का वाहुल्य था वहा आज छोटे–छोटे वच्चो को भी दूध नही मिलता इसका कारण यही है

कि लोगो को गौ पालन बुरा मालूम होता हैं परन्तु वास्तव मे जीवन के लिये गाय का साहाय्य उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार पृथ्वी की सहायता आवश्यक है। पृथ्वी का नाम भी गौ है और गाय का नाम भी गौ है। गौ का अर्थ है– आधार देने वाली। पृथ्वी और गाय का गौ नाम सभवत इसी दृष्टि से रखा गया है कि जीवन के लिए इन दोनो के साहाय्य की समान आवश्यकता है। पृथ्वी रहने आदि के लिये आधार रूप है और गौ स्वास्थ्य वर्द्धक खान–पान की सामग्री देने के लिये। घी, दूध, अन्न आदि दूसरे खाद्य पदार्थ गाय की सहायता से ही प्राप्त होते हैं। इसीलिए पहले के लोग गाय का आदर करते थे अपने यहा गाय का होना आवश्यक मानते थे और गाय की सहायता से स्वय का जीवन सुख पूर्वक बिताते थे।

जिनदास सेठ के यहा भी गाये थी। उसके यहा कितनी गाये थी, इसका तो वर्णन नही मिलता लेकिन गाये थी अवश्य। उन गायो को चराने के लिए जिनदास ने अपने यहा ग्वाले का एक बालक रख छोडा था, जिसका नाम सुभग था। सुभग शरीर से सुन्दर था और स्वभाव से भी सरल, कोमल, तथा नम्र था। पूर्व के प्राय सभी लोग अपने यहा कार्य करने वाले सेवक को अपने घर का एक सदस्य ही मानते थे। श्रावक तो सभी को अपना आत्मीय मानता है इसलिये वह अपने यहा के सेवक को अच्छी तरह रखे, यह स्वाभाविक ही है। जिनदास और अर्हद्दासी का व्यवहार सुभग के प्रति बहुत ही प्रेम पूर्ण रहता था। उनके यहा कोई सन्तान न थी, इसलिए दोनो का सन्तति प्रेम भी सुभग को ही प्राप्त था। जिनदास सुभग से प्रत्येक काम प्रेम से लेता जिससे सुभग को यह अनुभव न होता कि मैं इनका सेवक हू और अर्हद्दासी तो धर्म जानने वाली श्राविका होने के साथ ही स्वाभाविक ही कोमल हृदया भी थी। इसलिए वह सुभग के खान पानादि का एव सुख–दु ख का उसी प्रकार ध्यान रखती, जिस प्रकार माता अपने पुत्र के खान–पान का ध्यान रखती एव व्यवस्था करती है। सुभग भी जिनदास और अर्हद्दासी के विषय मे यही समझता कि ये ही मेरे माता–पिता हैं तथा यह घर मेरा ही है। इसलिये वह प्रत्येक कार्य यही समझ कर करता कि यह कार्य तो मेरे घर का ही है। वह कभी कभी सेठ के साथ धर्म स्थान पर भी जाया करता था लेकिन बालक सुभग धर्म के विषय मे कोई विशेष जानकारी नहीं रखता था। केवल यदा कदा जिनदास के साथ धर्मस्थान पर जाता और जिनदास की देखादेखी महात्माओ को वन्दन नमस्कार भी कर लेता।

बालक सुभग प्रात काल भोजनादि से निवृत्त हो जिनदास के यहा की गाये लेकर उन्हे चराने के लिये जगल मे चला जाता। वहा वह प्रेमपूर्वक गायो को चराता रहता तथा जगल के वृक्ष पहाडो नदी, झरने आदि को देखकर प्रत्येक के कार्य का महत्व एव उनकी उपयोगिता का विचार करता रहता। जब सन्ध्याकाल समीप होता, तब वह गायो को लेकर घर लौट आता। यही प्राय उसका नित्यकृत्य था। जब वह जगल से गाये लेकर वापस आता तब जिनदास उससे कुशल समाचार पूछा करता, तथा वह कोई असुविधा अथवा कठिनाई बताता तो जिनदास उसे मिटाने का प्रयत्न करता। इसी प्रकार अर्हद्दासी भी सुभग के खान–पान, शयनादि की समुचित व्यवस्था कर देती।

एक दिन सुभग नित्य की तरह गाये लेकर जगल मे चराने के लिए गया। जिस जगल मे सुभग गाये चराने ले गया था उसी जगल मे एक महात्मा आये और एक वृक्ष के नीच ध्यान लगाकर बैठ गये। महात्मा कैसे हुआ करते हैं इसके लिए एक कवि कहता है–

ज्ञान के उजागर सहज सुखसागर
सुगुनरतनागर, विराग रस भर्‍यो है
शरण की रीति हरे मरण को न भय करे,
करण सो पीठ दै चरण अनुसर्‍यो है।
धर्म के मडन भर्म के विखडन है,
परम नरम व्है के करम सो लर्‍यो है,
ऐसे मुनिराज भुविलोक मे विराजमान
निरखी बनारसी नमस्कार कर्‍यो है।।

वे तपोधनी महात्मा भी ऐसे ही थे जो एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। उसी समय गायो को चराता हुआ सुभग उस ओर आ निकला। वृक्ष के नीचे ध्यान लगाये हुए महात्मा को देखकर सुभग को बहुत ही प्रसन्नता हुई। जिनदास के साथ सुभग कभी कभी धर्मस्थान भी जाया करता था तथा उसने वहा मुनिराज को देखा था और जिनदास और अर्हद्दासी से मुनिराज का स्वरूप तथा मुनि दर्शन का माहात्म्य आदि सुना करता था इसलिए सुभग ने जान लिया कि ये मुनिराज हैं। उन मुनिराज को देखकर सुभग उनकी ओर उसी प्रकार आकर्षित हुआ जिस प्रकार चुम्बक की ओर लोह आकर्षित होता है। वह अपने मन मे कहने लगा कि जब मैं सेठ के साथ धर्मस्थान पर जाया

करता हू, तब सेठ वहा विराजमान तथा भिक्षा के लिए घर आये हुए मुनिराज के विषय मे यह कहा करते हैं कि ये मेरे गुरु हैं लेकिन सद्भाग्य से आज यहा सेठ नहीं है केवल मैं ही हू। इसलिए ये तो मेरे ही गुरु हैं। इस प्रकार बालक की भाति अनेक विचार करते हुए सुभग ने सरलता, नम्रता और श्रद्धापूर्वक उन मुनिराज को नमस्कार किया। मुनिराज ध्यान मे थे, इसलिये वे कुछ भी नही बोले, न उनने सुभग की ओर देखा ही। मुनि को प्रणाम करके सुभग उनके सामने हाथ जोडकर खडा हो गया तथा उन मुनिराज की ओर एकटक देखने लगा। मुनिराज तो अरिहन्त या सिद्ध भगवान् का ध्यान कर रहे थे, परन्तु सुभग उन मुनिराज का ध्यान कर रहा था। मुनिराज के ध्यान मे तन्मय सुभग इस बात को भूल गया कि मैं कहा खडा हू, मेरी गाये कहा होगी या दिन व्यतीत हो चला है।

समय पर मुनि का ध्यान समाप्त हुआ। ध्यान समाप्त होते ही वे लब्धिधारी मुनिराज नवकार मन्त्र का उच्चारण कर आकाश मे उड गये। महात्मा को आकाश की ओर जाते देखकर उन्हे ठहराने के लिए सुभग गुरु महाराज, गुरु महाराज कहकर उन्हे पुकारने लगा, परन्तु वे निस्पृह महात्मा कब ठहर सकते थे। समय होने पर महात्मा भी उसी प्रकार स्थान पर गये बिना नहीं रुकते जिस प्रकार सूर्यास्त होने पर कमल मुकुलित हुए बिना नहीं रहते। सुभग उन महात्मा को पुकारता ही रहा, फिर भी वे महात्मा तो चले ही गये। जब सुभग की आखो से वे महात्मा अदृश्य हो गये, तब सुभग सोचने लगा कि आकाश की ओर उडने से पहले महात्मा ने अरिहताण–अरिहताण का जो मन्त्र पढा था उस मन्त्र मे तो बडी ही शक्ति है। मेरी समझ से उस मन्त्र की शक्ति से ही महात्मा आकाश मे उड गये हैं।

महात्मा के जाने पर सुभग की विचारधारा बदली और तब उसको ध्यान हुआ कि सूर्य अस्त होने वाला है तथा गाये न मालूम किधर चली गई है। वह गायो को इधर–उधर देखने लगा, लेकिन उसे गाये न मिली। सध्याकाल समीप जानकर सब गाये, घर और बछडो का स्मरण करके सुभग के बिना ही नित्य की तरह घर चली गई थीं। गायें न मिलने पर सुभग ने कुछ चिन्ह के आधार से यह निश्चय किया कि गाये घर को चली गई हैं। गाये मेरे बिना ही घर चली गई हैं इस कारण सेठ मेरे विषय मे चिन्ता कर रहे होगे और न मालूम क्या सोचते होगे आदि विचार करता हुआ सुभग जल्दी–जल्दी घर की ओर चला।

नवकार मन्त्र माहात्म्य

जेन धर्मानुयायियो मे ऐसा अभागा कोई ही व्यक्ति होगा जो नवकार मन्त्र न जानता हो। वास्तव मे जो स्वय को केवली प्रतिरूपित धर्म का अनुयायी मानता है, उसके लिये नवकारमन्त्र का जानना भी आवश्यक है। नवकार मन्त्र तो प्राय सभी जैन जानते हैं, लेकिन ऐसे बहुत कम लोग निकलेगे, जो नवकार मत्र का माहात्म्य तथा ठीक अर्थ जानते हो। जो नवकार मत्र जैन धर्म का प्राण है, उसके माहात्म्य एव अर्थ से सर्वथा अपरिचित रहना, एक बहुत बडी कमी है। जिस मत्र को हृदयगम किया जाता है, उठते, बैठते आदि प्रत्येक समय जिसका स्मरण किया जाता है उसका माहात्म्य ओर अर्थ यत्किचित् तो जानना ही चाहिये। वैसे तो माहात्म्य तथा अर्थ न जानने पर भी नवकार मत्र का ध्यान, स्मरण लाभकारी ही हे परन्तु नवकार मत्र के ध्यान स्मरण का पूर्ण लाभ तो तभी है जब उसका कुछ माहात्म्य तथा अर्थ समझा हुआ हो। नवकार मत्र धारण कराने वालो का यह कर्त्तव्य है कि वे नवकार मत्र धारण कराने के साथ ही नवकार मत्र का माहात्म्य ओर अर्थ भी बता दे, जिससे नवकार मन्त्र का धारक नवकार मत्र के ध्यान–स्मरण से होने वाला पूर्ण लाभ ले सके। जिनदास सेठ ने सुभग को नवकार मन्त्र बताने के साथ ही स्वय की बुद्ध्यानुसार उसे नवकार मत्र का माहात्म्य एव अर्थ भी बताया होगा। माहात्म्य तथा अर्थ समझने के कारण ही सुभग नवकार मत्र से वह लाभ ले सका जिसका वर्णन अगले किसी प्रकरण मे मिलेगा।

सुभग जिस समय जगल मे ध्यानस्थ महात्मा के सामने हाथ जोडकर खडा था उस समय वह मुनि के ध्यान मे ऐसा एकाग्र चित्त था कि उसको गायो की भी खबर नहीं रही समय की भी खबर नहीं रही ओर स्वय की भी खबर नहीं रही। मन की एकाग्रता के कारण वह तो दूसरी ओर से वेखबर था लेकिन सध्याकाल समीप आने पर गायो का ध्यान घर या बछडा मे जा लगा। इसलिए वे नित्य के समय पर चरना छोडकर सुभग के बिना ही घर को चली आई।

गायो को देखकर ओर उनके साथ सुभग का न देखकर जिनदास सेठ को चिन्ता हो गई। वह सोचन लगा कि सुभग सदा तो गाया के साथ ही आता था फिर आज वह गाया क साथ क्या नही आया? गाय अकली क्यो आई? कहीं वन मे किसी हिसक पशु अथवा चार डाकू ने सुभग को मार तो नहीं डाला? कोई उसको वहकाकर ल तो नही गया? इस प्रकार सोचना

हुआ सेठ उत्सुकता पूर्वक सुभग की प्रतीक्षा करने लगा। जैसे–जैसे समय बीतता जाता था सेठ की चिन्ता भी वैसे ही बढती जा रही थी। इधर सेठ तो सुभग की पतीक्षा करता था और सुभग इस बात की चिता कर रहा था कि मुझे देर हो गई है इसलिये सेठ मेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे और मेरे लिए चिंतित होगे। इस चिता के कारण सुभग जल्दी–जल्दी घर की ओर बढा चला आ रहा था।

सुभग की प्रतीक्षा मे सेठ द्वार पर खडा था, इतने ही मे उसने देखा कि सुभग जल्दी जल्दी चला आ रहा है। सुभग को आता देखकर सेठ को बहुत प्रसन्नता हुई। सुभग भी सेठ को आता देखकर प्रसन्न हुआ। सेठ ने दौडकर सुभग को छाती से लगा लिया। फिर उसने सुभग से पूछा कि–आज इतनी देर क्यो हुई? गायो के साथ ही क्यो नही आया?

सुभग सेठ के प्रश्न का उत्तर देना तो चाहता था, लेकिन हर्ष के मारे उसका गला भर आया इससे वह न बोल सका। सेठ ने उससे फिर विलम्ब का कारण पूछा, तब सुभग ने अपने हर्षावेग को रोककर कहा कि–पिताजी, आज जगल मे मुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ। मैं उस आनन्द मे ऐसा मग्न हो गया था कि मेरे को न तो समय की ही खबर रही, न घर की और न गायो की। सेठ ने पूछा कि–ऐसा क्या आनन्द था? यदि तेरी इच्छा हो तो उस आनन्द का वर्णन करके मुझे भी उसमे भाग दे।

सुभग कहने लगा–पिताजी, उस आनन्द का पूर्णतया वर्णन करने की शक्ति तो मेरे मे नही है फिर भी मैं कुछ वर्णन करता हू। आज जगल मे मैने वृक्ष के नीचे एक मुनिराज को ध्यानस्थ देखा। उनका दर्शन पाकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उनके मुखमण्डल से ऐसी शाति टपकती थी कि कुछ कहा नही जा सकता। मैं उनके सामने और सब बातो–बल्कि स्वय तक को भूल गया। इसी कारण गाये मेरे बिना ही घर चली आई।

सुभग का यह कथन सुनकर सेठ ओर भी अधिक प्रसन्न हुआ। वह बोला कि–बेटा, तुझ को धन्य है जो आज वन मे तुझे महात्मा का दर्शन हुआ और तूने उनकी भक्ति की। क्या वे महात्मा अभी जगल मे ही होगे? यदि हो तो मैं भी उनका दर्शन कर आऊ। सुभग ने उत्तर दिया–अब वे वहा नही है। यदि वे वही होते तब तो सभव था कि मैं अब तक भी घर न आता, किन्तु उनके सामने खडा ही रहता। ध्यान समाप्त होने पर वे मुनि अरिहन्ताण–अरिहन्ताण ऐसा मत्र पढकर आकाश मे उड गये। मैंने उनको बहुत पुकारा लेकिन वे नही ठहरे किन्तु चले ही गये। जब वे चले गये तब मुझे गायो का ओर घर का ध्यान आया और तभी म यहा आया हू।

सेठ ने कहा कि—तू सद्भागी है, इसीसे तुझे वन मे भी ऐसे मुनिराज का दर्शन हुआ। मैंने तो जघाचरण विद्याचरण मुनि के विषय मे केवल शास्त्र से बात ही सुनी है, परन्तु तूने तो ऐसे मुनि के दर्शन भी किये हैं। सद्भाग्य होने पर वन मे अनायास ही ऐसा सुअवसर मिल जाता है, लेकिन जब दुर्भाग्य होता है, तब मनुष्य इस प्रकार के प्राप्त अवसर को भी ठुकरा देता है। ऐसे मुनिराजो का दर्शन प्राय वन के निर्दोष वातावरण मे ही हो सकता है और सम्भव है कि इसी बात को दृष्टि मे रखकर श्रीकृष्ण ने गौ चराने के बहाने वन के अभ्यासी बनने का आदर्श जनता के सामने रखा हो।

सुभग से बाते करता हुआ सेठ उसको साथ लेकर घर मे आया। सेठ द्वारा कही गई बातो को सुनकर सुभग और आनन्दित होता जाता था। घर आने पर तथा सेठ का कथन समाप्त होने पर सुभग ने सेठ से कहा कि—पिताजी, मुनिराज दर्शन के कार्य का आपके द्वारा समर्थन सुनकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई, लेकिन मुझसे एक भूल हो गई है। जिस मन्त्र को कहकर वे मुनि आकाश की ओर उडे, वह मन्त्र मैंने सुना तो था परन्तु पूरा याद नही रहा। यदि वह सारा मत्र याद हो जाता तो बडा ही अच्छा रहता। मेरी समझ से वे मुनि उस मत्र की शक्ति से ही आकाश मे उड गये। मेरे को भी वह मत्र याद होता तो मैं भी आकाश मे उड जाया करता।

सुभग की बात के उत्तर मे सेठ ने कहा कि—उस मत्र का जो भाग तुमने मुझे सुनाया, उस पर से मैं समझ गया कि उन मुनि ने किस मत्र का उच्चारण किया था। तुम्हारी स्मृति मे उस मत्र का जो भाग रहा, वही बहुत है। मुनिराज ने जो मत्र पढा था, वह नवकार मत्र है। लो मैं तुम्हे वह सारा मत्र सुनाता हू, उसे सुनकर फिर बताओ कि मुनिराज ने यही मत्र उच्चारण किया था या दूसरा?

नमो अरिहन्ताण। नमो सिद्धाण।
नमो आयरियाण। नमो उवज्झायाण।
नमो लोए सव्व साहूण।

सेठ से मत्र सुनकर सुभग कहने लगा कि—उन महात्मा न यही मत्र उच्चारण किया था। सेठ बोला कि—इस मत्र की शक्ति स आकाश म उडने आदि सभी कार्य हो सकत हैं। ऐसा काई कार्य नही जा इस मत्र की शक्ति से न हो सके। भगवान् पार्श्वनाथ ने महान् विषधर साप का यह मत्र सुनाया था और उस साप ने अपने हृदय मे इस मत्र को स्थान दिया था ता वह साप भी मरकर देवो का स्वामी इन्द्र हुआ। नवकार मत्र क प्रभाव और इसकी शक्ति

के विषय मे बहुत सी कथाए प्रसिद्ध हैं। मै उनमे से एक कथा तुम्हे सुनाता हू।

यह कहकर जिनदास सुभग से कहने लगा कि—एक राजा ने एक चोर को शूली पर चढाने की आज्ञा दी। साथ ही यह आज्ञा भी दी कि इस चोर की कोई किसी भी रूप मे सहायता न करे। राजा की आज्ञानुसार नगर के बाहर उस चोर को शूली दी गई। शूली लगाने वाले लोग चोर को शूली पर बैठाकर चले गये, लेकिन कुछ सिपाही दूर रहकर इस बात का पता रखने लगे कि कोई आदमी इस शूली चढे हुए चोर की किसी तरह सहायता तो नही करता है। शूली पर चढे हुए चोर को प्यास लगी, परन्तु वहा उसको पानी पिलाने वाला कौन था? वह किसी मार्ग जाते हुए को पुकारता और अनुनय—विनयपूर्वक उससे पानी पिलाने के लिए भी कहता, लेकिन राजा के भय से उसके पास कोई न जाता, न कोई उसकी प्रार्थना स्वीकार करके पानी ही पिलाता।

योगायोग से उस ओर एक श्रावक निकला। चोर ने उसे पुकारा। चोर की आवाज सुनकर श्रावक उसके पास गया। चोर ने श्रावक से कहा कि—सेठजी मुझे बहुत ज्यादा प्यास लगी है। जितना दु ख इस शूली का नहीं है, उससे अधिक दु ख प्यास का है। इसलिए दया करके कहीं से पानी लाकर मुझे पिला दो।

चोर की प्रार्थना सुनकर सेठ के हृदय मे उसके प्रति बहुत दया हुई। सेठ ने उससे कहा कि—मैं पानी लेने तो जाऊगा, परन्तु मैं पानी लेकर आऊ उससे पहले ही यदि तेरी मृत्यु हो गई तो तू न मालूम किस नीच गति मे जावेगा। इसलिए तू मेरे से नवकार मत्र सुनकर उसका जाप कर। यदि मेरे आने से पहले ही तेरी मृत्यु हो गई और मरने के समय तू नवकार मत्र का जाप करता रहा, नवकार मत्र जपते—जपते मरा तो दुर्गति मे जाने से तो बच जावेगा।

चोर ने श्रावक का कथन मानना स्वीकार किया। श्रावक चोर को नवकार मत्र सुनाकर पानी लेने के लिए चला गया। चोर ने नवकार मत्र पहले ही पहल और केवल एक ही बार सुना था इस कारण उसको नवकार मत्र याद नही रहा और वह नवकार मत्र के स्थान पर जपने लगा कि—आणू—ताणू कुछ न जाणू सेठ वचन प्रमाणू।

यानि मै और कुछ नहीं जानता लेकिन सेठ का वचन प्रमाण है। इस प्रकार यह जपता हुआ चोर वह श्रावक पानी लेकर आया उससे पहले ही मर

गया। फिर भी दुर्गति मे नही गया, किन्तु नवकार मत्र को प्रमाण मानने के कारण देव हुआ।

चोर के मरने के पश्चात् सेठ पानी लेकर आया। सेठ ने देखा कि चोर मर गया है। वह सोचने लगा कि क्या मालूम चोर ने नवकार मत्र को हृदय मे स्थान दिया था या नही? यदि नवकार मत्र को हृदय मे स्थान न दिया होगा तो न मालूम किस गति मे गया होगा। सेठ इस प्रकार सोच रहा था इतने ही मे राजा के सिपाहियो ने आकर सेठ को पकड लिया तथा उस पर यह अभियोग लगाकर राजा के सामने उपस्थित किया कि आपकी आज्ञा के विरुद्ध इसने चोर की सहायता की है। राजा उस श्रावक पर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने कहा कि—मैं राजाज्ञा उल्लघन करने वाले को बहुत ही कठोर दड देता हू, इसलिए इस सेठ को भी मेरी आज्ञा के विरुद्ध चोर की सहायता करने के अपराध मे शूली पर चढा दिया जावे। राजा की ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर भी वह श्रावक पूर्व की भाति प्रसन्न ही रहा और हसने लगा। शूली की आज्ञा सुनकर भी श्रावक को हसता देखकर राजा अधिक क्रुद्ध हुआ। राजा ने श्रावक से पूछा कि—मैने तुझे प्राणदण्ड दिया है, फिर भी तू हसता क्यो हे? ओर क्या इस प्रकार हसना, मेरा अपमान करना नही है? राजा के प्रश्न के उत्तर मे श्रावक ने कहा कि—मैं आपका अपमान करने के लिए नही हस रहा हू , किन्तु इसलिए हस रहा हू कि मैंने चोरी या ऐसा ही कोई दूसरा अनैतिक अपराध नहीं किया हे फिर भी मुझे शूली लगाने का दण्ड दिया गया है, इसके सिवा जब मुझे मरना ही हे तब हसता हुआ क्यो न मरू? यह सुनकर राजा ने सिपाहियो को आज्ञा दी कि इसको जल्दी ही शूली पर चढा दो जिससे इसका हसना भी मिट जावे ओर यह चोर की सहायता करने के लिए परलोक मे भी जल्दी पहुच जाय।

राजा की आज्ञानुसार सिपाही लोग उस श्रावक को शूली के पास ले गये। जिस चोर की सहायता करने के अपराध मे श्रावक का शूली लगाने की आज्ञा हुई थी वह चोर मरकर देव हुआ था। उस देव को यह मालूम हुआ कि मेरी सहायता करने के अपराध मे श्रावक को शूली दी जा रही है। उसका आसन कम्पित हो उठा। वह तत्काल शूली के समीप उपस्थित हुआ ओर जेसे ही सिपाहियो ने सेठ को शूली पर विठाया वेसे ही उस देव ने शूली को सिहासन मे परिणत कर दिया। श्रावक ने चोर को नवकार मत्र का जो दान दिया था उस उपकार का प्रत्युपकार देवगति मे जन्मे हुए उस चोर ने इस प्रकार चुकाया।

यह कथा कहकर सेठ ने सुभग से कहा कि—यदि उस श्रावक ने चोर को नवकार मत्र न सुनाया होता और चोर ने नवकार मत्र पर विश्वास न किया होता तो आर्त्त रौद्र ध्यान करने के कारण वह चोर मरकर न मालूम किस नरक मे जाता। परन्तु नवकार मत्र सुनने तथा उस पर श्रद्धा करने के कारण ही देवगति प्राप्त करके अपने सहायक श्रावक का प्रत्युपकार करने मे समर्थ हुआ। नवकार मत्र का ऐसा प्रभाव है।

यह कथा कहकर जिनदास ने सुभग से कहा कि—नवकार मत्र का माहात्म्य बताने वाली ऐसी बहुत सी कथाए हैं, लेकिन वे कथाए न सुनाकर अब मै तुमको यह बताता हू कि इस मत्र का महान् फल क्या है? नवकार मत्र का फल बताने के लिए मत्र के साथ ही यह कहा जाता है कि—

ऐसो पच णमुक्कारो, सव्व पाव पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि पढम हवइ मंगल।।

अर्थात्—इन पाचो को नमस्कार करना सब पापो का नाशक है, सब प्रकार मगल करने वाला है और यही प्रथम मगल है।

नवकार मत्र सब पापो को नष्ट करने वाला है और सब प्रकार से मगल है। इस मत्र मे जिनको नमस्कार किया गया है, वे सब इस बात का आदर्श एव मार्ग बताते है कि पापो का नाश किस प्रकार किया जा सकता है। साथ ही उनके गुणो को देखकर इस बात का भी पता लगता है कि इन गुणो को हम भी प्रकट कर सकते हैं। हम मे भी ये गुण हैं तथा इन्हीं की तरह हम भी दु ख मुक्त हो सकते है। इस प्रकार नवकार मत्र आत्मा के लिए एक अनुपम सम्पत्ति है। जिसके पास नवकार मत्र की सम्पत्ति है, उसके पास चाहे कोई भौतिक सम्पत्ति न हो तब भी वह सम्पन्न है और जिसके पास नवकार मत्र की सम्पत्ति नही है उसको चाहे कितनी भी भौतिक सम्पत्ति मिली हो, पर दीन ही है। मैने नवकार मत्र का जो प्रभाव सुनाया, नवकार मत्र मे उससे भी बहुत अधिक शक्ति है लेकिन उसका परिचय तभी मिल सकता है, जब स्वय मे दृढता हो ओर मत्र के प्रति पूर्ण विश्वास हो। जो कष्ट के समय घबराता नही है जो कष्टो को अपनी कसौटी समझता हे नवकार मत्र द्वारा कष्टो को मिटाने की कामना नही करता उसी को नवकार मत्र की शक्ति मालूम हो सकती है। नवकार मत्र के स्मरण—ध्यान का फल प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हे कि चाहे जैसे भी कष्ट हो उनसे भय न करे, न यह विचार लावे कि मै नवकार मत्र जपता हू, फिर भी मुझे यह कष्ट क्यो हो रहा है और न नवकार मत्र से यह कामना ही करे कि मेरे ये कष्ट मिट जावे। इस

[illegible]

प्रकार जो कष्टो से भय नही खाता तथा निष्काम भाव से नवकार मत्र का जप करता है, नवकार मत्र से उसकी आत्मा का अवश्य ही कल्याण होता है।

प्रिय सुभग, मैंने नवकार मत्र के विषय मे तुम्हे जो कुछ सुनाया है, वह बहुत थोडे मे सुनाया है। इस विषयक सब बातो को न तो आज कहा ही जा सकता है, न तुम अभी समझ ही सकते हो और न मुझे सब बाते मालूम ही हैं। तुम जैसे–जैसे बडे होओगे, तुम्हारी बुद्धि विकसित होगी तथा तुम्हारे हृदय मे जिज्ञासा होगी, वैसे ही वैसे सत्सग द्वारा तुम इस विषयक अधिकाधिक बाते जान सकोगे।

नवकार मत्र का अर्थ

किसी वस्तु का पूर्ण स्वरूप अथवा किसी बात का पूर्ण अर्थ करने मे कोई भी समर्थ नही हो सकता। किसी साधारण मनुष्य की तो बात ही अलग है, महाज्ञानी भगवान तीर्थंकर स्वय भी ऐसा करने मे समर्थ नही हैं। वे भी जो कुछ जानते अथवा स्वय के ज्ञान मे देखते हैं उसे पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकते, किन्तु उसका अनन्तवा भाग ही कह सकते हैं। वस्तुत आत्मा के अनुभव की बात को जड वाणी पूरी तरह कैसे कह सकती है? कहने मे जो कुछ भी आता है, वह तो अपूर्ण ही है।

नवकार मत्र के लिए भी यही बात हे। नवकार मत्र का पूर्ण अर्थ कहने को कोई समर्थ नही हे लेकिन इस विचार से नवकार मत्र का अपूर्ण अर्थ न कहना या न जानना बुद्धिमानी नही हो सकती। पूर्ण अर्थ पूर्ण पुरुष ही जान सकते हें अपूर्ण पुरुप नही जान सकता। परन्तु पूर्ण होने का मार्ग अपनी अपूर्णता को क्रमश दूर करना ही हे। पक्षी अपने पखों क बल रो अनत आकाश का पार नही पा सकता लकिन इस कारण वह आकाश म उडना नही त्यागता किन्तु अपनी शक्ति भर अनन्त आकाश मे भ्रमण करता ही हे तथा इस विचार से ओर प्रसन्न होता हे कि जिसम मे भ्रमण कर रहा हू वह आकाश अनन्त हे। इसी प्रकार नवकार मत्र का पूर्ण अर्थ न जान सकन पर भी अपूर्ण अर्थ तो जानना ही चाहिए और इस विचार स प्रसन्न हाना चाहिए कि नवकार मत्र ऐसा हे जिसका अर्थ अनन्त ह। इस विषय म यह विचार कर हताश होने की आवश्यकता नही हे कि में नवकार मत्र का पूर्ण अर्थ नहीं जानता या नवकार एसा मत्र ह जिसका पूर्ण अर्थ काई नही कह सकता। किसी रत्न के लिए यदि काई वड स वडा जोहरी यह कह कि म इसकी कीमत नही कर सकता ता जाहरी का यह कथन सुनकर भी जिसके पास

ऐसा रत्न है वह व्यक्ति हताश न होगा, किन्तु प्रसन्न ही होगा। इसी प्रकार नवकार मत्र के लिए भी कोई पूर्ण अर्थ नही कह सकता या हम पूर्ण अर्थ नही जान सकते, इस विचार से हताश न होना चाहिए, किन्तु यह सोच कर प्रसन्न होना चाहिए कि मुझे वह नवकार मत्र प्राप्त हुआ है जिसका पूर्ण अर्थ कहने मे कोई समर्थ नही है। नवकार मत्र का पूर्ण अर्थ जानने के बाद तो कुछ बाकी ही नही रहता। ऐसा व्यक्ति तो पूर्ण ज्ञानी ही है। जो पूर्ण ज्ञानी है उसके लिए कुछ भी करना शेष नही है। जो कुछ करना है, वह अपूर्ण के लिए ही। अपूर्ण को ही पूर्ण बनाने की आवश्यकता है और इसका मार्ग यही है कि उत्तरोत्तर ज्ञान–वृद्धि का प्रयत्न किया जावे तथा तदनुसार क्रिया भी की जावे। इसलिए पत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह नवकार मत्र का अधिक से अधिक अर्थ जानने का पयत्न करे।

जिनदास सेठ से नवकार मत्र के प्रभाव की कथाए सुनकर सुभग बहुत ही हर्षित हुआ। वह कहने लगा कि–आपकी कृपा से मैंने नवकार मत्र का प्रभाव तो समझा लेकिन अब यह और जानना चाहता हू कि जिसका ऐसा पभाव है उस नवकार मत्र का अर्थ क्या है? जिनदास ने उत्तर दिया कि – नवकार मत्र का पूर्ण अर्थ बताने मे तो मैं समर्थ नहीं हू, फिर भी सन्त–महात्माओ की कृपा से मै जो कुछ भी जान पाया हू, वह थोडे मे तुम को सुनाता हू। तुम मेरे कथन को ध्यान देकर श्रवण करो।

नवकार मत्र का सस्कृत नाम नमस्कार मत्र है। नमस्कार शब्द नम और कार इन दो शब्दो के सयोग से बना है। नम का एक अर्थ नमन यानि झुकना है और दूसरा अर्थ, द्रव्य तथा भाव से सकोच करना है। नम्रता और भक्ति प्रदर्शन के लिए किसी के सामने झुकना यह नमन है। ऐसा नमन तीन प्रकार का होता है, एक तो द्रव्य से दूसरा भाव से और तीसरा द्रव्य तथा भाव दोनो से। द्रव्य नमन से मतलब है दो हाथ, दो पाव और मस्तक, इन पाच अगो को सकोचना इनको झुकाना। ऐसा करना द्रव्य नमन हे ओर आत्मा को अप्रशस्त भाव से निकालकर किसी के प्रशस्त गुणो मे लीन करना, यह भाव नमन है। किसी को द्रव्य और भाव इन दोनो से नमन करना द्रव्य–भाव नमन है।

नम शब्द के साथ कार शब्द जुडा हुआ हे, जो नमन की क्रिया का बोधक है। यानि नमस्कार का अर्थ नमन करने की क्रिया है।

नमस्कार के साथ आये हुए मत्र शब्द का अर्थ है– सदा स्मरण रखने योग्य कर्त्तव्य के अवधारण का नाम मत्र है। इस प्रकार नवकार–मत्र या

नमस्कार मत्र का अर्थ नमन करने की क्रिया का अवधारण करना–स्मरण रखना है।

नमस्कार मत्र मे पाच पद हैं, जिसमे से पहला पद 'नमोअरिहन्ताण' है। इस पद को 'नमो अर्हन्ताण या 'नमोअरुहन्ताण' भी बोला जाता है। इस पद के तीनो रूप का भिन्न–भिन्न क्या अर्थ होता है, यह बताता हू।

अरिहन्ताण पद मे आये हुए अरि शब्द का अर्थ है शत्रु या वैरी। आत्मा का वास्तविक शत्रु कर्म है। कर्म के आठ भेद हैं। जो उन आठ भेदो मे से ज्ञानावरणीय आदि चार घातिक कर्मों को हन डालते हैं यानि नष्ट कर देते हैं, उन्हें अरिहन्त कहा जाता है। नमो अरिहन्ताण का अर्थ यह है कि जिनने कर्म–शत्रु को नष्ट कर दिया है, उन अरिहन्त को नमस्कार करता हू।

इस पद का दूसरा रूप 'नमो अर्हन्ताण' है। अरह शब्द अरह पूजाया धातु से बना है, जिसका अर्थ है– पूजनीय। इसके अनुसार जो देवो मे प्रधान इन्द्र के भी पूज्य हैं, जो अष्ट महाप्रतिहार्यादि लक्ष्मी से युक्त हैं, उन्हे अर्हन्त कहते हैं। अथवा रह का अर्थ है गुप्त प्रच्छन्न रह शब्द के पूर्व अ लगाकर अरह शब्द वना है, जिसका अर्थ है कुछ गुप्त नही। यानि जिनसे कुछ गुप्त नहीं है, किन्तु जो समस्त लोकालोक को हस्तामलक के समान देखते हैं उन्हे अरह कहते हैं। अथवा रह का अर्थ रथ भी होता है। रथ सब प्रकार के परिग्रह का सूचक हे। रथ शव्द के पूर्व अ लग जाने से परिग्रह का निषेध हो जाता हे। इस प्रकार जो सब तरह के द्रव्य भाव परिग्रह से निकल चुके हैं उन्हे अरह कहते हैं। अथवा रह का अर्थ राग भी होता हे। रह के पूर्व लगा हुआ अ राग का निषेध करता हे। इस प्रकार राग ओर उपलक्षण से द्वेष को भी जीतकर वीतराग हो गये हें, उन्हे अरह कहते हैं। इस प्रकार 'नमो अरहन्ताण' का अर्थ यह ह कि जो इन्द्रो के भी पूज्य हैं जिनसे कुछ छिपा हुआ नही हे जो परिग्रह–रहित ओर वीतराग हे उन्हे नमस्कार करता हू।

इस प्रथम पद का तीसरा रूप 'नमो अरुहन्ताण' हे। जो ससार के बीज रूप कर्म को भस्म कर चुके हे ओर इस कारण जो अव भव ससार म भ्रमण न करेंगे उन्हे अरुहन्त कहत हे। 'नमो अरुहन्ताण' का यह अर्थ हुआ कि जो भव–ससार के वीज कर्म का जला चुक हें उन्ह नमस्कार हे।

नवकार मत्र का दूसरा पद 'नमा सिद्धाण' हे। जा अष्ट कर्म रूपी भारे को जाज्वल्यमान् शुक्लध्यान की अग्नि स भस्म करक उस सिद्धि स्थान को प्राप्त हो गये हें जहा स लोटकर फिर नहीं आना हाता अथवा जिनका काई कार्य शष नही ह किन्तु सव कार्य सिद्ध हा गय हें अथवा जिनक गुण

समूह ख्याति पाप्त कर चुके हैं और भव्य लोग जिनके गुण समूह को जानते हैं उन्हे सिद्ध कहते हैं। जिन के पकट गुणो का स्मरण करने से स्मरण करने वाले मे वे गुण पकट हो जाते हैं उन्हे सिद्ध कहते हैं। अथवा जिनके गुण और जिनके कार्य ससार के लिए मगल रूप हैं, ससार के जीवो को मगल बनाने के लिए आदर्श हैं वे सिद्ध हैं। 'नमो सिद्धाण' का अर्थ यह है कि सिद्धो को नमस्कार है।

तीसरा पद है 'नमो आयरियाण' जो मर्यादा बाधने वाले और मर्यादा का पालन करने वाले हैं जो भव्य प्राणियो द्वारा मर्यादा पूर्वक सेवित हैं। जो सूत्र का परमार्थ जानने और बताने के अधिकारी हैं जो अच्छी आकृति से तथा सुलक्षण युक्त है जो गच्छ के लिए आधारभूत हैं जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार चरित्राचार तपाचार और वीर्याचार मे रमण करते हैं, इनका दक्षता पूर्वक पालन करते हैं तथा दूसरे को भी इनका पालन करने मे लगाते हैं, हेतु दृष्टान्त युक्ति आदि द्वारा जो दूसरे को इन पाच आचार का महत्व बताकर इनके पालन का उपदेश देते हैं जो कार्य की व्यवस्था करने मे कुशल हैं जो गच्छ के साधुओ को यथायोग्य कार्य मे जोडना जानते हैं, और जिनको चतुर्विध सघ ने अपना मुखिया बनाया है वे साधु आचार्य कहे जाते हैं। आयरिय का अर्थ है, आचार्य और नमो आयरियाण का अर्थ है आचार्य को नमस्कार करता हू।

चौथा पद है 'नमो उवज्झायाण'। उवज्झाय का अर्थ है उपाध्याय। जिसके पास स्वाध्याय की शिक्षा मिलती है, जो शास्त्र की शिक्षा देते हैं, जो भगवान तीर्थकर द्वारा कहे गये द्वादशाग का स्वाध्याय करते, कराते हैं जिनके समीप जाने से सूत्र पाठ का स्मरण होता है अथवा सूत्र का पाठ समझने को मिलता है जो सूत्र की शिक्षा के लिए साक्षीदाता हैं जो सूत्र शिक्षा के विषय मे प्रमाण पत्र या उपाधि देने के अधिकारी हैं और जिनके समीप कुपठन अथवा दुर्ध्यान नही है तथा चतुर्विध सघ ने योग्यता के कारण जिनको यह कार्य भार सौपा है वे उपाध्याय है। नमो उवज्झायाण का अर्थ है उपाध्याय को नमस्कार करता हू।

पाचवा पद 'नमो लोए सव्व साहूण'। सव्व का अर्थ है सब और साहू का अर्थ है साधु। जो ज्ञानादिक की शक्ति से मोक्षसाधन मे लगा हुआ है, जो ज्ञान दर्शन चारित्र और तप की आराधना करता हे सब प्राणियो को आत्मतुल्य मानकर सब पर समान रूप से करुणा रखता हे सबके कल्याण की भावना रखता है और सबको कल्याण का उपदेश देता है वह साधु है। नमो लोए सव्व साहूण का अर्थ है लोक के सब साधुओ को नमस्कार है। लोए

का अर्थ लोक है यानि लोक के सब साधुओ को नमस्कार है। यहा लोक से मतलब मनुष्य लोक है। क्योकि साधु मनुष्य लोक मे ही होते हैं।

नमस्कार मत्र का इस प्रकार अर्थ समझाकर जिनदास ने सुभग से कहा कि--तुम अभी बच्चे हो, विशेष अर्थ समझने की शक्ति अभी तुम मे नही है, इसलिए मैंने तुमको नवकार मत्र का यह साधारण अर्थ बताया है जिसको तुम समझ भी सकते हो और स्मरण भी रख सकते हो। मैंने नवकार मत्र का जो अर्थ कहा उस पर से अनेक प्रश्न हो सकते हैं। जब तुम बडे होओगे और तुम्हारी बुद्धि मे वे प्रश्न उत्पन्न होगे, तब तुम किन्ही महात्मा से प्रश्नो का समाधान कर लेना। उस समय तुम उस समाधान को समझकर भली प्रकार हृदयगम कर सकोगे।

नवकार मन्त्र पर दृढता

किसी धार्मिक बात को श्रवण करने के पश्चात उस का मनन करने उसको स्वय मे रुचाने और उस पर श्रद्धा एव विश्वास लाने की आवश्यकता है। जो बात केवल सुनी गई है जिसका मनन नहीं किया गया है या मनन करके भी जो अपने मे रुचाई नही गई है जिस पर श्रद्धा–विश्वास नही है वह बात पूर्ण लाभप्रद नही हो सकती। इसलिए प्रत्येक धार्मिक बात को श्रवण करके उसका मनन करना चाहिए और उसको श्रद्धापूर्वक अपने मे रुचाना चाहिए। इतना ही नही किन्तु उस पर दृढता रखनी चाहिए।

कई लोग ऐसे होते हैं कि जो अनुकूल समय मे तो धार्मिक बातो पर श्रद्धा रखते हैं लेकिन अनुकूल समय बदलने के साथ ही श्रद्धा–विश्वास को भी बदल देते हैं। उस समय वे अपनी श्रद्धा ओर स्वय के विश्वास पर दृढ नही रहते। उनके हृदय मे प्रतिकूल अथवा विषम परिस्थिति के समय उस श्रद्धा के प्रति अविश्वास हो जाता हे इसलिए वे उसको छोड बेठते ह। हवा के झोके से पलटने वाली ध्वजा की तरह के ऐसे लोग किसी धार्मिक बात द्वारा होने वाला पूर्ण लाभ कदापि नहीं ले सकते। पूर्ण लाभ तो वही ले सकता है जो अपनी धार्मिक श्रद्धा पर अन्त तक दृढ रहता है। जो तन धन प्राण नष्ट होने के समय तक अथवा नष्ट हो जाने तक भी अपने धार्मिक विचारो को नहीं बदलता उन पर अविश्वास नहीं लाता और उनके प्रति अश्रद्धा नहीं होने देता। जिस व्यक्ति मे इस प्रकार की दृढता ह उस व्यक्ति की न तो कभी कोई हानि हुई ही हे न हो सकती है। कदाचित प्रकट म उसका तन धन प्राण नष्ट होता देखा भी जाता हो तब भी निश्चय म उसकी कोई हानि नहीं ह किन्तु उसका

लाभ ही है। गजसुकुमार मुनि के सिर पर आग रखी गई थी। उस समय उनके हृदय मे यह विचार हो सकता था कि मेरे सिर पर यह आग सयम के कारण रखी गई है और इस विचार से वे सयम के प्रति अश्रद्धा ला सकते थे, लेकिन उनमे दृढता थी, इसलिए उनके हृदय मे सयम के प्रति किचित भी अश्रद्धा नही हुई। परिणामत उनका भौतिक शरीर तो नष्ट हो गया, लेकिन उनकी आत्मा की कोई हानि नही हुई, किन्तु आत्मा ने मोक्ष प्राप्त किया। अरणक और कामदेव श्रावक ने भी पिशाच रूपधारी देव द्वारा विषम परिस्थिति उत्पन्न की जाने पर दृढता नही त्यागी थी। परिणामत उनकी कोई हानि नही हुई और वे आदर्श श्रावको मे माने गये। इस प्रकार जो विषम परिस्थिति मे भी धार्मिकता को नही त्यागता, धर्म या धर्म सबधी बातो पर अश्रद्धा नही लाता वही उसके पूर्ण फल को प्राप्त कर सकता है।

वयस्क स्त्री पुरुषो की अपेक्षा बालको मे विश्वास की मात्रा अधिक होती है। उनको अच्छी या बुरी जिस किसी भी बात पर विश्वास हो जाता है वे अपने उस विश्वास को प्राय दीर्धकाल तक नहीं जाने देते, किन्तु वे उस विश्वास के आधार पर ही कार्य करते हैं। यदि उनके हृदय मे किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान की ओर से भय हो जाता है तो वे उस व्यक्ति, वस्तु या स्थान का स्मरण आते ही भयभीत हो उठते हैं। इसी प्रकार यदि उन्हे किसी पर अनुकूल विश्वास हो जाता है तो वे उसके सहारे निर्भय भी रहते हैं। उदाहरण के लिए गाधीजी ने अपनी आत्म कथा मे लिखा है कि मुझे मेरी धाय–मा ने यह सिखाया था कि राम का नाम लेने पर किसी प्रकार का भय नही रहता। मुझे धायमा के इस कथन पर विश्वास हो गया इसलिए मैं निर्भय रहा करता। इस प्रकार वयस्क स्त्री, पुरुषो की अपेक्षा बालाको मे विश्वास की मात्रा अधिक होती है और उनमे दृढता भी अधिक रहती है। वे अपने विश्वास के आधार पर ऐसे–ऐसे कार्य भी कर डालते हैं वैसे कार्य करने मे वयस्क स्त्री, पुरुष को अनेक विचार हो सकते हैं। सुभग भी बालक ही था। इसलिए यह देखना है कि उसमे कैसी दृढता थी और उस दृढता के कारण उसने क्या कार्य किया।

सुभग जैसे–जैसे जिनदास का कथन सुनता जाता था वैसे ही वैसे उसको प्रसन्नता एव नवकार मन्त्र पर श्रद्धा होती जाती थी। जिनदास का कथन समाप्त होने पर सुभग ने गदगद होते हुए जिनदास से कहा कि–जिस मन्त्र का ऐसा प्रभाव ओर माहात्म्य हे मे वह मन्त्र अवश्य ही सीखूगा। आप कृपा करके मुझ नवकार मन्त्र याद करा दीजिये।

जिनदास सेठ ने सुभग को नवकार मत्र याद करा दिया। सुभग ने मत्र कठस्थ कर लिया। उसने केवल कठस्थ ही नही किया किन्तु उसे अपने मे रुचा लिया। वह प्रत्येक समय मत्र स्मरण करता रहता। जब गाये लेकर वह जगल मे जाता, तब वहा भी वह नवकार मत्र जपा करता तथा घर मे भी बेठते, उठते, चलते फिरते नवकार मत्र रटा करता। रात के समय जब वह सेठ के समीप बैठता तब सेठ उसको धर्म सबधी बाते सुनाया करता जिन्हे सुभग प्रेम और श्रद्धापूर्वक सुनता रहता। सेठ के समझाने से सुभग को नवकार मत्र पर दृढ और पूर्ण विश्वास हो गया। वह नवकार मत्र के सहारे स्वय को निर्भय मानने लगा। वह मानने लगा कि मैं नवकार मत्र जानता हू, इसलिए अब न तो मेरे को किसी प्रकार का रोग हो सकता है न दु ख। मैं सब भाति निर्भय हू। कही भी जाऊ मेरे को किसी प्रकार का भय नही है।

सुभग नवकार मत्र पर दृढ विश्वास रखकर विचारा करता। वह किसी भी समय और किसी भी स्थान पर भय न पाता। जैसे वह भय को जानता ही न था।

इस बात को कई दिन बीत गये। एक दिन सुभग जगल मे गाये चरा रहा था। उस समय घनघोर बादल उठा और गरजने लगा। साथ ही बिजली कडकने लगी तथा मूसलाधार वर्षा भी होने लगी। वह समय बडी अवस्था वाले लोगो के लिए भी भय देने वाला हो सकता हे, लेकिन बालक सुभग किचित् भी भयभीत नही हुआ। वह तो नित्य की भाति नवकार मत्र ही जपता रहा। उसके हृदय मे यह भी विचार नही हुआ कि मैं नवकार मत्र पर इस तरह श्रद्धा रखता हू, इस तरह नवकार मत्र का जप करता हू और नवकार मत्र मे ऐसी शक्ति बताई जाती हे फिर भी मे केसी आपत्ति मे पड गया हू? नवकार मन्त्र की शक्ति मुझे इस आपत्ति से छुटकारा क्या नही दिलाती? ओर जब नवकार मत्र जपते रहने पर भी मुझे इस आपत्ति का सामना करना पड रहा हे, तब यह कैसे माना जा सकता हे कि नवकार मत्र म काई शक्ति हे? कई लोगो के हृदय मे कष्ट के समय इस प्रकार के अनेक विचार हाने लगत ह ओर ऐसे विचारो का आधिक्य धर्म पर अश्रद्धा उत्पन्न करा देता ह। धर्म से जब किसी प्रकार की सासारिक कामना की जाती हे और वह सासारिक कामना पूर्ण नही होती तब धर्म पर अविश्वास हो जाता हे तथा फिर ऐसे लोग धर्म को कोसने लगत हैं एव छाड बेठत हे। कामना सहित धर्म की सेवा करने वालो के लिए ऐसा होना स्वाभाविक ही हे। लकिन सुभग की नवकार मत्र पर जो श्रद्धा थी वह कामना रहित थी। वह जानता था कि नवकार मत्र म ऐसी शक्ति हे फिर भी नवकार मत्र द्वारा अपनी काई इच्छा पूर्ण करा [illegible]

भावना नही रखता था। जिनदास ने उसको शिक्षा ही ऐसी दी थी। उसने सुभग को यह सिखाया था कि नवकार मत्र मे समस्त शक्ति है, लेकिन किसी सासारिक काम मे नवकार मत्र की शक्ति देखने की इच्छा रखने से नवकार मत्र का वह अनन्त फल नष्ट हो जाता है जो मोक्ष प्राप्त कराने वाला है। इस कारण सुभग ने यह विचार भी नही किया कि नवकार मत्र के प्रभाव से यह बिजली या वर्षा क्यो नही मिट जाती है। किन्तु वह तो यही सोचता रहा कि यह वर्षा बिजली मेरी परीक्षा कर रही है। मेरे हृदय मे नवकार मत्र के पति कितनी दृढता और कितना विश्वास है, इसकी कसौटी हो रही है। सेठ ने मुझ से कहा ही था कि जब विषम समय मे भी नवकार मत्र विस्मृत न हो और जब विषम समय से घबराया न जावे विषम समय को अनुकूल बनाने के लिए नवकार मत्र से कामना न की जावे तभी समझना कि स्वय मे नवकार मत्र के प्रति पूर्ण विश्वास है। स्वय मे नवकार मत्र के प्रति पूर्ण विश्वास है या नही, इस बात की परीक्षा विषम समय पर ही होती है। यदि विषम समय से घबरा गया उस समय नवकार मत्र से किसी प्रकार की सहायता चाही अथवा उस समय नवकार मत्र पर अश्रद्धा हो गई, तब तो स्पष्ट है कि नवकार मत्र पर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास नही है। लेकिन यदि उस समय घबराया नही, दृढ रहा, नवकार मत्र से किसी प्रकार की कामना नही की और न उस पर अविश्वास ही किया तो उस समय के लिए यह कहा जा सकता है कि नवकार मत्र पर पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण विश्वास है।

इस प्रकार विचार कर सुभग न तो वर्षा, बिजली से घबराया, न मन्त्र से किसी प्रकार की कामना ही की न नवकार मन्त्र पर अविश्वास ही किया। किन्तु जैसे-जैसे बिजली वर्षा का जोर बढता गया वैसे ही वैसे सुभग का नवकार मन्त्र-स्मरण करना भी बढता गया।

सन्ध्या के समय जब वर्षा का जोर कम हुआ, तब सुभग गायो को लेकर घर की ओर चला। मार्ग मे एक छोटीसी नदी पडती थी, जो वर्षा के कारण उस समय पूर हो आई थी। सुभग के लिये उस नदी को पार करना कठिन था। वह तैरना भी नही जानता था, इसलिये वह नदी के किनारे खडा होकर सोचने लगा कि इस नदी को किस प्रकार पार करू? गाये तो बच्चो का स्मरण करके नदी को तैरकर निकल गई लेकिन सुभग न निकल सका। वह किनारे पर ठहरकर नदी पार करने का उपाय सोचने लगा। उस को रह-रहकर यह विचार होता था कि गायो के साथ जब मैं न पहुचूँगा तब सेठ मेरे लिये चिन्ता करेगे। पहले भी एक दिन जब मैं आकाशगामी महात्मा के

ध्यान मे मग्न होकर रह गया था और गाये अकेली घर को गई थीं तब भी सेठ ने मेरे लिए चिन्ता की थी। इसलिये जिस तरह भी हो मुझे नदी पार करके शीघ्र ही घर पहुचना चाहिये जिससे मेरे लिये सेठ को चिन्तित न होना पडे। मै नवकार मन्त्र जानता हू, इसलिये मुझे किसी प्रकार का भय भी न करना चाहिये। नवकार मन्त्र जानने वालो को तो निर्भय रहना चाहिये। मैंने सेठ के मुह से नवकार मन्त्र के प्रभाव और नवकार मन्त्र की शक्ति के विषय मे अनेक कथाए सुनी है। मैंने प्रत्यक्ष भी उन महात्मा को नवकार मन्त्र का जप करके आकाश मे उडते देखा है और मुझको स्वय को भी यह अनुभव है कि नवकार मन्त्र पर विश्वास रखने से किस प्रकार की निर्भयता रहती है। ऐसी दशा मे मुझे इस नदी के पूर से भय करने का कोई कारण नहीं है। मुझे नवकार मत्र का स्मरण करते हुए नदी मे कूद पडना चाहिये और हृदय मे नवकार मत्र का अखण्ड ध्यान चलने देना चाहिये। यदि मैं नदी से पार हो गया तब तो ठीक ही है, लेकिन यदि नदी से जीवित पार न हुआ किन्तु नदी मे ही मर गया तो उस दशा मे भी कोई हर्ज नहीं है। मैंने सेठ के मुह से सुना है कि शूली लगा हुआ महान अपराधी चोर भी नवकार मन्त्र जपता हुआ मरा था तो देव हुआ था। इस प्रकार जीवित रहा तब भी अच्छा है और जीवित न रहा किन्तु मर गया तब भी अच्छा है।

इस प्रकार सरल भाव से नवकार मन्त्र पर विश्वास रखकर सुभग नदी के किनारे पर स्थित एक वृक्ष पर चढा और नवकार मन्त्र का स्मरण करता हुआ नदी मे कूद पडा। नदी मे जिस स्थान पर वह कूदा था उसी स्थान पर पूर के प्रवाह से गिरे हुए खेर के वृक्ष का खूटा लगा हुआ था। सुभग उसी खूटे पर गिरा जिससे उसके पेट मे वह खूटा घुस गया। पेट मे खूटा घुसने से सुभग को तीव्र वेदना हुई और वह थोडी ही देर मे मर भी गया लेकिन वह नवकार मन्त्र विस्मृत नही हुआ। मरने तक उसके हृदय मे नवकार मन्त्र का ऐसा अखण्ड ध्यान बना रहा कि उसको पेट मे खूटा लगने और वेदना होने का भी पता नही लगा। नवकार मन्त्र के उस अखण्ड ध्यान के प्रताप से सुभग मरकर जिनदास की पत्नी अर्हद्दासी के गर्भ मे उत्पन्न हुआ।

यहा यह प्रश्न होता है कि नवकार मन्त्र की शक्ति तो ऐसी बताई है कि नवकार मन्त्र के प्रभाव से साप भी फूलो की माला बन जाता है और शूली का भी सिहासन बन जाता है आदि। फिर इस समय नवकार मन्त्र की यह शक्ति कहा चली गई? सुभग के लिये वह खेर का खूटा सिहासन या मोम क्यो नहीं हो गया या वह सकुशल घर क्यो नहीं पहुच गया? नदी मे उसकी मृत्यु क्यो हो गई? बल्कि इस घटना पर से तो यही कहा जा सकता है कि नवकार मन्त्र पर विश्वास करने के कारण ही उसकी मृत्यु हुई अन्यथा मृत्यु न होती।

इस पश्न का उत्तर यह है कि नवकार मन्त्र का प्रभाव केवल भौतिक शरीर के जन्म–मरण या सुख–दु ख पर से ही न देखना चाहिए, किन्तु परम्परा पर आत्मा को क्या लाभ हुआ या आत्मा की क्या हानि हुई, यह देखना चाहिए। यदि केवल शरीर पर से ही देखा जावेगा, तब तो बहुत अनर्थ होगा। जैसे गजसुकुमार मुनि सयम लेकर और समभाव धारण करके श्मशान मे ध्यान लगाये खडे थे। उसी समय सोमल ने उनके सिर पर आग रख दी, जिससे उनका शरीर नष्ट हो गया। यदि शरीर नष्ट होने की ही बात पकडी जावे, तब तो यही कहना होगा कि सयम लेने, समभाव रखने या ध्यान का फल अच्छा नही होता। सयम लेने, समभाव रखने या ध्यान करने का फल मृत्यु है। इन्ही के कारण गजसुकुमार मुनि के सिर पर आग रखी गई और उनकी मृत्यु हुई। इस पकार शरीर को ही देखने पर तो कभी–कभी श्रेष्ठ कार्यों को भी दूषित ठहराना होगा। इसलिये यही कहा जावेगा कि गजसुकुमार मुनि के सिर पर आग का रखा जाना या उनका शरीर छूटना, सयम, समभाव या ध्यान का परिणाम नहीं है। सयम समभाव या ध्यान का परिणाम तो मोक्ष है, जो उन्हे प्राप्त हुआ है। रही शरीर छूटने की बात लेकिन मोक्ष–प्राप्ति के लिए शरीर छूटना आवश्यक था। बिना शरीर छूटे मोक्ष प्राप्त नही हो सकता था। मोक्ष पाप्त हुआ इसलिए शरीर का छूटना भी अच्छा हुआ। इसी प्रकार सुभग के लिए केवल यह देखना ठीक न होगा कि नवकार मन्त्र का ऐसा प्रभाव होने पर भी नवकार मन्त्र का श्रद्धालु और उस पर विश्वास रखने वाला सुभग क्यो मर गया? नवकार मन्त्र की शक्ति से सुभग को मोक्ष प्राप्त करना था और मोक्ष प्राप्त करने से पहले उसको अपना पुण्य भी भोगना था। पुण्य भोगने और फिर मोक्ष जाने के लिए सुभग का यह शरीर उपयुक्त न था। उसे सुदर्शन के भव मे पुण्य भोगने के लिये जो ऋद्धि सम्पदा प्राप्त हुई वह सुभग को कदाचित्त इसी भव मे प्राप्त भी हो जाती, तब भी जिस रीति से वह सुदर्शन के भव मे प्राप्त ऋद्धि सम्पदा आदि का उपभोग कर सका उस रीति से सुभग के भव मे न कर सकता था। उदाहरण के लिये उसे कितनी भी सम्पत्ति मिल जाती वह कैसा भी धनवान हो जाता तब भी वह कहलाता ग्वाले का लडका ही। कुल के कारण उसको जो बडाई सुदर्शन के भव मे मिली वह न मिलती। इसी प्रकार जिनदास के यहा जन्मने से उसे जो मान सम्मान मिला था वह भी इस शरीर मे रहने पर नही मिल सकता था। उसका अधिकाश बाल्यकाल व्यतीत हो चुका था इसलिये वह बाल्यकाल मे भोगे जाने वाले सुखो को भी न भोग सकता था। इन सब के सिवाय एक यह बात भी है कि ऋद्धि सम्पदा

मान–प्रतिष्ठा आदि भोगने के लिये जिन सस्कारो का होना आवश्यक हे सुभग मे वे सस्कार न थे। इन कारणो से आगामी भव और वैभव प्राप्त करने के लिए यदि सुभग को यह शरीर छोडना पडा तो इसको कुछ बुरा नहीं कहा जा सकता न शरीर छूटने को नवकार मन्त्र का फल ही कहा जा सकता हे। नवकार मन्त्र का फल, सुभग का सुदर्शन के भव मे जन्मना ओर फिर मोक्ष प्राप्त करना है। साधारण आत्मा को केवल एक ही जन्म की धर्म–कमाई से मोक्ष नहीं मिलता, किन्तु इसके लिए कई जन्म की कमाई की आवश्यकता हे। सुदर्शन ने मोक्ष प्राप्त किया है उसका वह मोक्षगमन केवल सुदर्शन के भव की धर्म करणी का ही परिणाम नहीं है। किन्तु उसके साथ सुभग के भव की धर्मकरणी भी सम्मिलित हे और हो सकता है कि सुभग के पहले के भव की करणी भी शामिल हो। गीता मे भी कहा हे–

अनेक जन्म ससिद्धि, ततो याति परा गतिम्।

यानि अनेक जन्म की धर्मकरणी से ही मोक्ष ऐसी परम–गति मिलती हे।

तात्पर्य यह हे कि सुभग का शरीर त्याग सुदर्शन के भव मे जन्मने के लिए ही था। इसलिए नवकार मन्त्र का फल शरीर त्याग न मानना किन्तु सुर्दशन का भव मिलना और मोक्ष प्राप्त होना मानना है। अच्छी वस्तु प्राप्त करने के लिए उस हल्की वस्तु का त्याग करना ही होता है। अच्छी पगडी बाधने या अच्छे कपडे पहनने के लिये पहले की पगडी उतारनी ही होती है ओर पहले के कपडे भी हटाने ही होते हैं। इसी के अनुसार सुदर्शन का भव प्राप्त करने के लिये सुभग को भी आयुष्यबल समाप्त होने से शरीर त्यागना पडा। इसलिए नवकार या दूसरी धर्मकरणी का प्रभाव शरीर तक ही न देखना किन्तु यह देखना कि इससे आत्मा को क्या लाभ हुआ और आत्मा को जो लाभ हुआ उसे ही नवकार मन्त्र या धर्मकरणी का फल समझना। सुभग नवकार मन्त्र का भक्त था और उसने नवकार मन्त्र जपते हुए शरीर छाडा था इसी कारण उसको सुदर्शन का उत्तम भव और फिर मोक्ष प्राप्त हुआ।

बालक सुदर्शन

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।
आल्हादित कुल सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी।।

अर्थात–विद्वान और अच्छ एक सुपुत्र द्वारा भी सारा कुल उसी प्रकार आनन्दित रहता हे जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा स रात्रि प्रकाशित रहती है।

आत्मा का जन्म पूर्व–भव की करणी और सस्कारो के अनुसार ही होता है। पूर्व भव की जैसी करणी और जैसे सस्कार होते हैं, जन्म भी उसी के अनुसार होता है। जिसकी पूर्व भव की करणी बुरी होती है, वह इस भव मे जनम कर दु खी होता है और जिसकी पूर्व भव की करणी अच्छी होती है वह इस भव मे जनम कर सुखी होता है। सुखी वह माना जाता है जिसे क्षेत्र, वास्तु स्वर्ण पशु और दास प्राप्त होते हैं, तथा जो मित्रवान्, ज्ञातिमान्, उच्च्य गोत्र वाला कान्तिमान निरोगी बुद्धिमान् कुलीन, यशस्वी और बलवान् है। जिसको इन दस बोल की योगवाई नही है वह सुखी नही माना जाता। इस बात को दृष्टि मे रखकर यह देखना है कि सरल प्रकृति और धार्मिक स्वभाव वाले सुभग का जन्म कहा हुआ।

सुभग तो उधर मर गया और इधर गायो के पहुचने पर जिनदास सुभग के लिए चिता करने लगा। अर्हद्दासी को भी सुभग के लिए बहुत चिन्ता हुई। जिनदास सुभग की खोज मे गया और उसने खोज भी की, परन्तु सुभग का कही पता न लगा। नदी पूर थी तथा अन्धेरा हो गया था, इस कारण सुभग की खोज के लिए जिनदास जगल मे न जा सका। प्रात काल होने पर नदी का पूर भी कम हो जावेगा और प्रकाश भी हो जावेगा तब सुभग को दूढेगे यह विचार कर जिनदास घर लौट आया। यद्यपि वह विवश होकर घर लौट आया था लेकिन उसको चैन न था। रह–रहकर उसे यही विचार होता था कि सुभग क्यो नही आया? वह जीवित भी है या नहीं। नदी पूर होने के कारण वह उस ओर जगल मे ही ठहर गया होगा तो न मालूम किस कष्ट मे होगा और नदी के पूर मे बह गया होगा तो उसकी न मालूम कैसी दशा हुई होगी तथा न मालूम कहा किनारे लगा होगा?

बडी रात तक जिनदास तथा अर्हद्दासी इसी विषयक बातचीत करते रहे और फिर अपने–अपने शयनागार मे जाकर लेट गये। जिनदास को तो सुभग की चिता मे बहुत रात बीतने पर भी नीद नही आई, लेकिन अर्हद्दासी सो गई। जिस समय अर्हद्दासी कुछ निद्रित अवस्था मे थी, उस समय उसने स्वप्न मे फूला फला कल्प वृक्ष देखा। स्वप्न देखकर अर्हद्दासी जाग उठी। वह सोचने लगी कि आज अनायास ही मैंने यह शुभ स्वप्न देखा है। इस शुभ स्वप्न का फल क्या हो सकता है? आज सुभग घर नही आया इससे चिता है फिर भी मैंने यह स्वप्न देखा है इस स्वप्न देखने मे अवश्य ही कोई रहस्य है।

इस प्रकार विचार करती हुई अर्हद्दासी प्रसन्न होती हुई अपने पति के शयनागार म गई। जिनदास उस समय जाग ही रहा था। पत्नी को

देखकर वह कहने लगा कि—क्या तुम्हे भी अब तक नींद नहीं आई है? मैं सोचता था कि सुभग के न आने की चिन्ता के कारण मुझे ही नींद नहीं आई है, लेकिन मैं देख रहा हू कि तुम भी जाग रही हो। परन्तु इस चिन्ता के समय मे भी तुम्हारे मुख पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दे रही है इसका क्या कारण है?

अर्हद्दासी बोली— नाथ! मैं आपके समीप से जाकर अपने शयनागार मे लेटी रही। कुछ देर तक तो सुभग की चिन्ता के कारण मुझे नींद नहीं आई परन्तु फिर नींद आ गई। मैं सो रही थी, उस समय स्वप्न मे मैंने फूला—फला कल्पवृक्ष देखा। स्वप्न देखकर मैं जाग उठी और सोचने लगी कि आज जिस समय सुभग के न आने के कारण चिन्ता है, यह शुभ स्वप्न देखा है तो इसका क्या फल हो सकता है? मैं आपको यह स्वप्न सुनाने के लिए आई हू और जानना चाहती हू कि इस स्वप्न का क्या फल होगा?

पत्नी का कथन सुनकर कुछ देर विचार करने के बाद जिनदास बोला कि—प्रिये, तुम्हारे इस स्वप्न का फल पुत्र प्राप्ति है। तुमने स्वप्न देखा इससे जान पडता हे कि अपनी पुत्र विषयक इच्छा पूर्ण होगी। तुमने कल्प वृक्ष का एक ही फल नही देखा है किन्तु सारे वृक्ष को ही फूल—फल से लदा हुआ देखा, इसलिये तुम अवश्य ही पुत्रवती होओगी और विलक्षण पुत्र की माता बनोगी।

पति—पत्नी ने सुभग विषयक बातचीत ओर धार्मिक चर्चा करते हुए रात बिताई। सवेरा होने पर जिनदास फिर सुभग को खोजने चला। खोजते—खोजते जिनदास को नदी मे पडा हुआ सुभग का शव मिला। सुभग का शव देखकर जिनदास बहुत ही दु खी हुआ। जैसे—तेसे उसने सुभग के शव की अन्त्येष्टि की। फिर घर आकर उसने सुभग की मृत्यु का वृत्तान्त अर्हद्दासी से कहा। सुभग की मृत्यु का समाचार सुनकर अर्हद्दासी को भी बहुत दु ख हुआ, परन्तु जिनदास ने समझा—बुझाकर अर्हद्दासी को धेर्य दिया। उसने अर्हद्दासी से कहा कि—प्रिये जन्मना—मरना तो ससार का नियम ही हे। इस नियम से कोई भी नहीं बच सकता। जो जन्मा हे वह मरने के लिये ही है। ऐसी दशा मे किसी के मरने पर दु ख करना एक प्रकार का अज्ञान हे। इसलिये दु ख त्यागो। वल्कि मेरा तो यह अनुमान हे कि सुभग तुम्हार यहा ही ह। आज रात को ही सुभग की मृत्यु हुई ओर आज रात का ही तुमने पुत्रदायक शुभ स्वप्न देखा। इसस जान पडता हे कि सुभग ही तुम्हार गर्भ मे आया है। सुभग नवकार मन्त्र का पूर्ण श्रद्धालु था। नवकार मन्त्र पर उसका

अडिग विश्वास था। मैंने उसका शव देखा है। उसके चेहरे पर वैसी ही पसन्नता थी जैसी पसन्नता सदा रहा करती थी। इससे जान पडता है कि वह मरने के समय भी नवकार मन्त्र का ध्यान ही करता रहा और नवकार मन्त्र के ध्यान मे ही उसकी मृत्यु हुई। इससे मैं तो यही अनुमान करता हू कि वह मरकर तुम्हारे गर्भ मे आया है। सुभग पुण्यवान था। वह तुम्हारा पुत्र होकर इस घर का स्वामी हो यह कोई आश्चर्य की बात भी नही है। इसलिये चिन्ता छोडो और पसन्न रहो।

जिनदास ने इस प्रकार अर्हद्दासी को धैर्य देकर सन्तुष्ट किया। अर्हद्दासी के गर्भ मे पुण्यवान और धर्मात्मा सुभग का जीव आया था, इसलिये अर्हद्दासी की इच्छाए भी वैसी ही अच्छी होने लगी। माता की भावना किसी न किसी रूप मे यह स्पष्ट कर देती है कि गर्भ का बालक पुण्यात्मा है या पापात्मा? गर्भवती माता की इच्छा गर्भ की ही इच्छा मानी जाती है। इसलिये उस समय की इच्छा बालक का भविष्य बता देती है। गर्भवती की इच्छा को दोहद कहा जाता है और जैसा दोहद होता है पुत्र भी वैसा ही पुण्यात्मा या पापात्मा होता है। जब कौणिक अपनी माता के गर्भ मे था, उस समय उसकी माता की यह इच्छा हुई थी कि मैं अपने पति श्रेणिक का कलेजा खाऊ। परिणामत कौणिक ऐसा जन्मा कि जो अपने पिता श्रेणिक के लिए दु खदायी सिद्ध हुआ। दुर्योधन जब गर्भ मे था तब गान्धारी की इच्छा सब कौरववशी लोगो के कलेजे खाने की हुई थी। दुर्योधन हुआ भी ऐसा ही। वह समस्त कौरववश के लिये कुठार रूप ही निकला। इसी प्रकार जब धर्मात्मा और पुण्यात्मा बालक गर्भ मे होता है तब माता की इच्छा भी धर्म–पुण्य के कार्य करने की ही होती है।

पुण्यात्मा सुभग का जीव अर्हद्दासी के गर्भ मे था, इसलिए अर्हद्दासी की इच्छाए धर्म–पुण्य के कार्य करने की ही होती थीं। ऐसी इच्छा को गर्भ की इच्छा जानकर अर्हद्दासी धर्म–पुण्य के कार्य करती रहती। जिनदास भी धर्म–पुण्य के कार्य विशेष रूप से करता रहता। उसने दान के लिये अपना भडार ही खोल दिया।

धर्म–पुण्य के कार्य करती हुई भी अर्हद्दासी, गर्भ की रक्षा के लिए बहुत सावधानी से काम लेती। खाने पीने चलने फिरने और सोने बैठने आदि मे वह इस बात का ध्यान रखती थी कि किसी प्रकार गर्भ को कष्ट न होने पाए। वह सदा ऐसे कार्य करती जिनसे गर्भ को सुख मिले। जिन कामो से गर्भ के बालक को कष्ट होता है उन कामो से वह बची रहती।

गर्भ–काल समाप्त होने पर अर्हद्दासी ने एक सर्वांग सुन्दर सम्पूर्ण बालक को जन्म दिया। पुत्र के जन्मने से माता–पिता को बहुत प्रसन्नता हुई। जिनदास के यहा पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह खबर सारे नगर मे फैल गई। इस शुभ समाचार को सुनकर राजा एव नगर–निवासियो को भी बहुत प्रसन्नता हुई।

जिनदास ने पुत्र जन्मोत्सव मनाया। लोगो के यहा से सेठ को बधाइया ओर भेट मिलने लगीं। सेठ ने भी मुक्तहस्त से दान–उपहार आदि दिया। राजा ने भी सेठ के यहा बधाई भेजी। साथ ही नगर सेठ के यहा पुत्र जन्मने के उपलक्ष्य मे अनेक बदियो को मुक्त किया, प्रजा को कर मे छूट दी और दूसरे भी अनेक सुधार किये। एक पुण्यात्मा अनेको के लिए सुखदायी होता है, इसके अनुसार सेठ के यहा पुत्र का जन्मना भी सबके लिये सुखदायी हुआ।

पुत्र–जन्मोत्सव मनाकर सेठ ने सब लोगो से यह सम्मति ली कि पुत्र का क्या नाम रखा जावे? लोगो ने कहा कि–इस बालक का जन्मना बहुत आनन्दकारी, और इसका दर्शन सबके लिए शुभ हुआ है इसलिये इस बालक का नाम सुदर्शन रख दिया जावे। हितैषियो की सम्मति मानकर जिनदास ने बालक का नाम सुदर्शन रखा।

बालक सुदर्शन, पाच धाय और अठारह देश की दासियो के सरक्षण मे वृद्धि पाने लगा। एक धाय सुदर्शन को दूध पिलाती। दूसरी स्नानादि कराती। तीसरी शरीर–मडन करती, वस्त्रादि पहनाती। चोथी धाय गोद खिलाती ओर पाचवी धाय खिलोनो द्वारा खिलाती तथा अगुली पकड कर चलाती।

प्रश्न होता हे कि इन कामो के लिए तो एक ही धाय का रखना पर्याप्त हो सकता हे। फिर एक बालक के लिए पाच धाय रखने की क्या आवश्यकता थी?

इसका उत्तर यह हे कि एक–एक कार्य मे एक–एक व्यक्ति की विशेष योग्यता होती हे। किसी धाय का दूध तो अच्छा होता हे बालक का पिलाने योग्य होता हे परन्तु उसमे दूसरे कार्य करने की याग्यता नही हाती। किसी धाय को बालक को नहलाना तो अच्छी तरह याद हे परन्तु वह बालक को वस्त्र पहनाने या उसका शरीर मडन करन म कुशल नही हे। इसी प्रकार एक–एक कार्य मे एक–एक व्यक्ति कुशल होता हे और जा जिस कार्य म कुशल ह वह कार्य उसक द्वारा अच्छी तरह सम्पादन हाता ह। इस दृष्टि स

तथा समय और पालन की दृष्टि से भी एक ही धाय से सब काम लेना उपयुक्त नही है। जब एक ही धाय द्वारा सब काम होने लगते हे तब अनियमितता होना भी स्वाभाविक है। जैसे, दूध पिलाने वाली धाय ही बालक को नहला या खिला रही है तो बालक असमय भी दूध पीने को माग सकता है या नहाते हुए खेलने की इच्छा कर सकता है। जब प्रत्येक कार्य के लिए अलग–अलग धाय नियत हो, तब इस प्रकार की अनियमितता नही हो सकती। बालक के लिये इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इसके वास्ते किस धाय का दूध उपयुक्त हो सकता है। यदि दूध पिलाने वाली धाय रुग्ण या अशक्त हुई तो बालक भी वैसा ही होगा। इसी प्रकार यह भी विचार लेना चाहिये कि बालक को किसकी गोद मे रखना उचित है। जिसकी गोद मे बालक रहता है बालक पर उस धाय का भी सस्कार रूप से असर आता है। किसी अच्छे वृक्ष के पौधे को यदि अच्छी भूमि प्राप्त नहीं है तो वह अपना प्रकृत गुण विकसित नही कर सकता। इसी प्रकार अच्छे माता–पिता से जन्मा हुआ बालक भी यदि अच्छी धाय की गोद मे नही रहता है तो वह अपने गुण विकसित नही कर सकता। स्नान कराने और शरीर मडन कराने आदि मे भी ऐसी ही बाते विचारणीय हैं। एक धाय तो बालक को इस प्रकार स्नान कराती है कि जिससे उसके अगोपाग विकसित होते हैं और एक इस तरह स्नान कराती है कि जिससे शरीर पर फोडे–फुन्सी आदि हो जाते है। एक इस तरह से शरीर मडन करती है कि जिससे बालक और साफ सुथरा रहता है तथा सुन्दर जान पडता है और एक इस तरह से शरीर मडन करती है कि जिससे बालक गन्दा बन जाता है। जैसे कई स्त्रिया तो बालक की आखो मे इस तरह काजल लगाती हैं कि आखो मे काजल जान ही नहीं पडता और कोई इस रीति से लगाती है कि सारा मुह काला हो जाता है। कोई बालक को इस तरह खेल मे लगाती और चलाती है कि जिससे बालक थकता भी नही हे तथा उसके शरीर का विकास भी होता है और कोई बालक से इस प्रकार खेल कराती है या बालक को इस तरह चलाती है कि जो बालक के लिये बोझ रूप हो जाता है तथा जिससे बालक की हानि भी होती है। इन्हीं दृष्टियो से योग्यता देखकर भिन्न–भिन्न कार्य के लिये भिन्न–भिन्न धाये रखी जाती हे। यह पुण्यवानी का चिन्ह भी हैं।

रही अठारह देश की दासियो की बात। वैसे तो अठारह दासिया एक ही देश की भी रखी जा सकती ह। फिर भी अठारह देश की अठारह दासी रखी जाती थी। इसका कारण यही हैं कि भिन्न–भिन्न देश की अठारह

दासियो के सम्पर्क मे रहने से बालक सहज रीति से खेल–खेल मे ही अठारह देश की भाषा–भूषा से परिचित हो जाता है। इसके लिए उसे अलग शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पडती। बालक को बचपन मे जिन बातो की शिक्षा सहज–रीति से मिल सकती है वडे होने पर उन्ही बातो के लिए श्रम करना पडता है। इसी दृष्टि से अठारह देश की दासिया रखी जाती थीं।

पाच धाय और अठारह देश की दासियो के सरक्षण से बालक सुदर्शन आठ वर्ष का हुआ। जब सुदर्शन आठ वर्ष का हो गया तब जिनदास ने सोचा कि अब इसको विद्या पढानी चाहिये और कला सिखानी चाहिये। जिससे यह ससार व्यवहार का भार वहन करने मे समर्थ हो सके, जीवन सुख से निभा सके ओर धर्म–प्राप्ति द्वारा आत्मा का कल्याण भी कर सके। नीतिकारो का कथन है कि–

साहित्य सगीत कला विहीन, साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन।
तृण न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेय परम पशूनाम्।।

अर्थात्–जो लोग साहित्य ओर सगीत आदि कला नही जानते वे साक्षात् विना सींग पूछ वाले पशु के समान ही हैं। यह सौभाग्य की वात है कि वह विना घास खाए ही जीवित हैं। यह पशुओ का परम सोभाग्य हे।

इसलिए सुदर्शन को विद्या कला आदि की ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे यह पशु न माना जावे किन्तु मनुष्यो मे श्रेष्ठ माना जावे ओर प्रत्येक दृष्टि से अपना जीवन स्वतन्त्रता पूर्वक बिता सके। अब सुदर्शन विद्या पढने ओर कला सीखने के योग्य भी हो गया हे। इसकी अवस्था आठ वर्ष की हा चुकी हे। इस अवस्था से पहले वालक पर विद्या पढने या कला सीखने का वोझ डालना उसके शारीरिक तथा मानसिक विकास की क्षति करना हे ओर आठ वर्ष का हो जाने पर वालक को इस दिशा मे न लगाना उस खत का सुखाने के समान है जो वीज वोने के योग्य हो गया हे। वल्कि वालक का विद्या कला आदि न सिखाना किन्तु उसे मूर्ख रखना खेत को सुखाने रा भी अधिक मूर्खता पूर्ण कार्य और वालक के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार हे। नीतिकारा का कथन ह–

माता रिपु पिता शत्रुर्येन वालो न पाठ्यते।
न शोभते सभा मध्ये हस सघे बको यथा।।

अर्थात–व माता पिता वालक क शत्रु हें जा वालक का पढाते नही हें। अपढ वालक विद्वाना की सभा म उसी प्रकार शाभा नहीं दत जिस प्रकार हसो की पक्ति म वगुला शाभा नही दता।

इस पकार सोचकर जिनदास ने अपने पुत्र सुदर्शन को पढने और कला सीखने के लिए कलाचार्य के पास बैठाया। थोडे ही दिनो मे सुदर्शन विद्या पढकर और बहत्तर कला सीखकर होशियार हो गया। जिसके पूर्व–सस्कार अच्छे होते हैं वह जल्दी सीख पढ जाता है और जिसके पूर्व सस्कार अच्छे नही होते वह या तो सीखने का अवसर ही नही पाता या बहुत देर मे सीख पाता है या पयत्न करने पर भी जैसा का तैसा ही रह जाता है, कुछ भी नही सीख पाता। सुदर्शन पुण्यवान् था। उसके पूर्व सस्कार अच्छे थे, इसलिए उसे विद्या कला सीखने मे बहुत समय नही लगा। वह थोडे ही समय मे सीख–पढकर अपने घर आया। उसकी नम्रता सरलता और शिक्षा देखकर जिनदास बहुत ही पसन्न हुआ। जिनदास ने सुदर्शन को शिक्षा देने वाले कलाचार्य को बहुत पुरस्कार दिया और उसका बहुत उपकार, आभार मानकर सम्मान सहित उसे विदा किया।

सेठ सुदर्शन

प्राय देखने मे आता है कि मनुष्य बचपन मे जैसा रहता है, बडा होने पर वैसा नही रहता। बचपन मे जो अनेक लोगो को प्रिय लगता है, अनेक लोगो के लिये भावी सदाशाओ का कारण होता है, वही बचपन से निकलने के पश्चात उन्ही लोगो को अप्रिय लगने लगता है और भविष्य के लिए भी दु खदायी जान पडने लगता है। यद्यपि ऐसा होना कोई नियम रूप नही है, न सभी के लिए ऐसा होता ही है लेकिन अधिकतर ऐसा ही होता है। अनेक माता पिता अपने पुत्र से भविष्य विषयक अनेक आशाए करते हैं, हृदय मे न मालूम किन–किन आशाओ को सींचकर पुत्र से प्रेम करते हैं तथा उससे लाड लडाते है लेकिन अनेक पुत्र उन्ही माता–पिता के लिए कुठार रूप निकलते हैं। राजकुमारो से प्रजा प्रेम करती है तथा यह सोचती है कि आगे चलकर इसके द्वारा हमे सुख होगा लेकिन उन्हीं राजकुमारो मे से अनेक प्रजा के लिए दु ख रूप सिद्ध होते हे। बचपन मे जिनसे जैसी आशा रखी जाती थी, आगे चलकर वे वैसे ही निकले और जैसे प्रिय बचपन मे रहे वैसे ही प्रिय आगे भी रहे ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलेगे। कुछ ऐसे लोग भी अवश्य निकलेगे जो आगे चलकर बचपन मे उनके विषय मे किये गये अनुमान से भी अधिक अच्छे निकले हो लेकिन ऐसे लोगो की सख्या से अधिक सख्या उन्ही लोगो की होगी जिनका वर्णन पहले किया गया हे। इसका कारण यह हे कि बचपन मे जो स्वाभाविक सरलता और नमता रहती हे युवावस्था उसको नष्ट कर

देती है। जो बचपन मे अत्यन्त सरल और नम्र था, वही व्यक्ति युवावस्था प्राप्त होने पर असरल और कठोर बन जाता है। युवावस्था अभिमान उत्पन्न कर देती है और जिसमे अभिमान हे उसमे सद्‌गुण कहा? अभिमान दुर्गुणों की खान है। इसी कारण युवावस्था मे मनुष्य मे कृत्याकृत्य का विवेक नहीं रहता और वह ऐसे ऐसे कार्य करने लगता है जो उसकी स्वय की तथा दूसरो की हानि करने वाले होते हैं। युवावस्था के साथ ही यदि धन–सम्पत्ति, सम्मान, प्रतिष्ठा और अधिकार मिल जावे, तब तो युवावस्था का जोर अत्यधिक बढ जाता हे। उस दशा मे कई लोग मनुष्यता से निकल कर पशुता मे पड जाते हैं। युवावस्था धन, सम्मान, प्रतिष्ठा और अधिकार ये सभी मादकता देने वाले हैं। इनका प्रत्येक नशा मनुष्यता को निकाल फैंकता हे। तो जहा ये सभी एकत्रित हो जावे, जिसको इन सभी का मद हो, उसके लिये तो कहना ही क्या है? और उस दशा मे मनुष्य यदि मनुष्यता को त्याग बैठे तो आश्चर्य ही क्या है? यद्यपि युवावस्था, धन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और अधिकार के प्राप्त होने पर अच्छे कार्य भी किये जा सकते हैं, लेकिन तभी, जब इनके साथ ही विवेक भी हो। यदि इन सबके साथ ही विवेक भी हुआ, तब तो इन सबका उपयोग सद्‌कार्य मे होता है और विवेक न हुआ तो इनका उपयोग दुष्कार्य मे होता है। लेकिन इनके साथ विवेक बहुत कम लोगो मे होता है। ज्यादातर तो अविवेकी ही होते हैं और इसी कारण ये सभी बाते हानि करने वाली हो जाती हैं।

बालक सुदर्शन भी लोगो को बहुत प्रिय था। उससे भी जनता अनेक प्रकार की आशाए करती थी। इसलिये यह देखना हे कि आगे चलकर वह कैसा निकला और युवावस्था, धन, सम्पत्ति सम्मान–प्रतिष्ठा तथा अधिकार की प्राप्ति का उस पर कैसा प्रभाव पडा?

पहले के लोग अपने पुत्र या अपनी कन्या का विवाह उस समय तक नही किया करते थे, जब तक पुत्र या कन्या मे युवावस्था नहीं आ जाती थी और उनके अजागृत नव अग जागृत नही हो जाते थे। जब वर कन्या योग्य हो जाते थे उनमे विवाह के नियमोपनियम समझने तथा पालने की क्षमता आ जाती थी और जब वे विवाह के कारण आने वाले बोझ को उठाने मे समर्थ हो जाते थे तभी उनका विवाह होता था। इस समय से पहले विवाह करना है भी हानिप्रद। वृद्ध विवाह बाल विवाह बेजोडविवाह प्रत्येक दृष्टि से हानिकारक सिद्ध हुए हें।

सुदर्शन युवावस्था को प्राप्त हुआ। उसके साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिये अनेक लोग जिनदास के यहा आने लगे ओर सुदर्शन

का विवाह अपनी कन्या के साथ करने के लिए जिनदास से प्रस्ताव रखने लगे। जिनदास सेठ सुदर्शन के विवाह के योग्य कन्या की खोज मे था, इसलिए उसने उन लोगो के प्रस्ताव टाल दिये कि जिनकी कन्या सुदर्शन के योग्य न थी। अन्त मे मनोरमा नामकी एक कन्या की सगाई आई। मनोरमा के पिता ने जिनदास के सामने सुदर्शन का विवाह मनोरमा के साथ करने का प्रस्ताव रखा। जिनदास को मनोरमा सुदर्शन की पत्नी योग्य जान पडी, फिर भी उसने एकदम से मनोरमा के पिता का प्रस्ताव स्वीकार नही किया, न अस्वीकार ही किया। किन्तु उससे यही कहा कि इस विषय मे मैं सुदर्शन की सम्मति लेकर ही कोई उत्तर दे सकता हू।

जिनदास ने मनोरमा के पिता से इस प्रकार कहकर कुछ दिन इस विषयक बातचीत स्थगित रखने के लिए कहा। मनोरमा के पिता ने भी जिनदास के इस कथन को ठीक माना और जिनदास से कहा कि–कोई जल्दी नहीं है आप सबकी सम्मति ले लीजिये और फिर जैसा ठीक जान पडे वैसा कीजिये।

यद्यपि सुदर्शन पूर्ण पितृभक्त था, इसलिये यदि जिनदास मनोरमा के साथ उसका विवाह करना स्वीकार कर लेता तो पिता द्वारा स्वीकृत विवाह सबध को सुदर्शन अस्वीकार न करता। फिर भी जिनदास ने सुदर्शन की सम्मति जाने बिना उसका विवाह सबध स्वीकार नही किया। वह सोचता था कि जिसको विवाह करना है, उसकी सम्मति जाने बिना उसका विवाह सबध स्वीकार कर लेना या उसको विवाह सबध मे बाध देना अनुचित है। क्योकि वह मेरा पुत्र है, फिर भी उसके हृदय के विचारो को मैं नहीं जानता। मुझे यह भी मालूम नही कि उसकी इच्छा विवाह करने की है भी या नही और यदि है तो वह कैसी पत्नी चाहता है? इसलिये मुझे उससे सम्मति लेनी चाहिये और उसकी सम्मति तथा स्वीकृति को दृष्टि मे रखकर ही विवाह सबध स्वीकार करना ठीक होगा। विवाह एक दिन के लिए नही होता है। यह जीवन भर का सबध है। इसलिये जिसके वास्ते जीवन सहचरी लानी है, उसको अधेरे मे रखना ठीक नही न उसकी इच्छा के प्रतिकूल किसी को उसकी सहचरी बना देना ही ठीक हो सकता है। इसी विचार से उसने सुदर्शन के विवाह का निर्णय सुदर्शन की इच्छा पर रखा। पहले के माता–पिता अपनी सतान का विवाह सतान की इच्छा जाने बिना नही करते थे। चाहे पुत्र हो या कन्या उसकी इच्छा जानकर और उसकी स्वीकृति लेकर फिर उसका विवाह पुत्र या कन्या की अभिरुचि के अनुकूल कन्या या वर के साथ करते

थे। हा, इस विषय मे वे अपनी सन्तान को अपने अनुभवो ओर भावी हानि–लाभ से अवश्य परिचित करा देते थे, परन्तु निर्णय का अधिकार सन्तान को ही प्राप्त रहता था। प्राचीन समय की यह रीति ही थी। श्रावक जिनदास इस नीति का उल्लघन कैसे कर सकता था? इसलिए उसने सुदर्शन की सम्मति, स्वीकृति लेना आवश्यक समझा।

जिनदास ने सुदर्शन का विवाह–सबध आने और मनोरमा की योग्यता आदि का समाचार अर्हाद्दासी को सुनाया, अर्हाद्दासी ने भी मनोरमा के साथ सुदर्शन का विवाह होना ठीक बताया और कहा कि इस विषय मे सुदर्शन की क्या इच्छा है? यह सुदर्शन से जानना चाहिए तथा उससे विवाह की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए।

अवसर देखकर जिनदास और अर्हाद्दासी ने सुदर्शन से कहा कि–प्रिय वत्स! तुमने हमारे यहा जन्म लेकर हमारे अन्धेरे घर को प्रकाशित किया है। साथ ही हमारे यहा पुत्र न होने से नगर के लोग नगर का भविष्य भी सूना मानते थे, वह सूनापन भी तुम्हारे जन्मने से मिट गया है। अब हमारी यह इच्छा हे कि तुम्हारा विवाह हो और पुत्रवधू आवे जिससे हमारे घर की शोभा बढे और तुम योग्य सहचारिणी के सहयोग से ससार–व्यवहार के कार्य करने मे समर्थ बन सको।

माता–पिता का यह कथन सुनकर सुदर्शन स्वाभाविक लज्जा से झुक गया। उसने नीची दृष्टि कर ली। फिर वह कहने लगा कि–यदि मैं विवाह न करू तो क्या इस घर की शोभा कम रहेगी? क्या ब्रह्मचर्य पालने वाले का घर पूर्ण शोभायमान नही होता? मेरी समझ से तो विवाह करने वाले की अपेक्षा वह व्यक्ति घर को अधिक सुशोभित करता हे, जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

जिनदास ने उत्तर दिया कि विवाह को मैं ब्रह्मचर्य से बढकर नही मानता। मै श्रावक हू, इसलिए ब्रह्मचर्य से विवाह को बढकर तो मान ही केसे सकता हू? परन्तु कई लोगो से ऐसा होता है कि जो ब्रह्मचर्य पालने के लिए विवाह नही करते, लेकिन फिर ब्रह्मचर्य भी नही पाल सकते ओर दुराचार म पड जाते हैं। ऐसे लोग किसी भी ओर के नही रहते। वे अपना जीवन भी खराब करते हैं और अपने कुल को भी दाग लगाते हैं। इस बात को दृष्टि म रखकर ही हम चाहते हैं कि तुम्हारा विवाह हो लेकिन तुम्हारी स्वीकृति के बिना हम तुम्हारे विवाह की योजना करना उचित नही समझत। इसलिए हम तुम्हारी स्वीकृति चाहते हैं। विवाह करके भी देशविरति ब्रह्मचर्य पाला जा

सकता है। जो व्यक्ति विवाह करके स्वदारसन्तोष और परदारविरमण रूप देशविरति ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह व्यक्ति भी धर्मात्मा ही माना जाता है। उसे पापी कोई नही कह सकता। विवाह करके भुक्तभोगी होकर–पूर्ण ब्रह्मचर्य की क्षमता आने पर–फिर पूर्ण ब्रह्मचर्य को अपनाना भी कुछ अनुचित नही है। इसलिए हम तुम से यही अनुरोध करते है कि विवाह करके गार्हस्थ्य–धर्म का पालन करो और जब अपने मे क्षमता देखो, तब पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना।

सुदर्शन ने उत्तर दिया–पिताजी, वास्तव मे मैं बाल–ब्रह्मचारी नही रह सकता इसलिए मुझे विवाह कर लेना ही ठीक है, लेकिन विवाह करने मे भी बहुत विचार होता है। विवाह किया और पत्नी अनुकूल न मिली तो जीवन दु खी हो जाता है। फिर दाम्पत्य–जीवन नीरस और कलह पूर्ण रहता है। इसलिए यदि मुझे अनुकूल पत्नी मिली तब तो मैं विवाह कर सकता हू, लेकिन यदि अनुकूल पत्नी न मिली तो अविवाहित ही रहूगा, फिर भी ऐसा कोई कृत्य कदापि नही कर सकता जिससे कुल को दाग लगे। मैं ऐसी पत्नी भी चाहता हू जो मेरे से अधिक सुन्दरी भी न हो और ऐसी कुरूपा भी न हो कि जिससे मेरे हृदय मे उसके प्रति घृणा हो। गृहस्थ के यहा बहुत सुन्दरी स्त्री का होना भी ठीक नही है। यदि पति की अपेक्षा स्त्री अधिक सुन्दरी हुई तो वह पति की उपेक्षा करती रहती है और पति के साथ उसका पूर्ण प्रेम नहीं रहता। इसी प्रकार यदि पति की अपेक्षा पत्नी अधिक कुरूपा हुई तो पति के हृदय मे पत्नी के प्रति प्रेम नही रहता हे। अनुरूप सुन्दरी होने के साथ ही मैं ऐसी पत्नी चाहता हू, जो न तो कोमल स्वभाव की हो, न अधिक कठोर स्वभाव की गृहकार्य मे चतुर हो विनम्र हो, मेरे काम मे सहायता देने वाली हो और मेरी इच्छा के अनुसार चलने वाली हो। इस तरह की पत्नी प्राप्त हो, तब मैं विवाह कर सकता हू, अन्यथा जीवन भर अविवाहित रहना ही अच्छा है।

सुदर्शन का उत्तर सुनकर जिनदास और अर्हद्दासी को बहुत प्रसन्नता हुई। वे सुदर्शन से कहने लगे कि–तुम जैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहते हो हमारी समझ से मनोरमा वेसी ही कन्या है। वह प्रत्येक दृष्टि से तुम्हारी पत्नी बनने के योग्य है। मनोरमा के पिता तुम्हारे साथ मनोरमा का विवाह सबध जोडने के लिए प्रस्ताव लेकर आये थे इससे जान पडता हे कि मनोरमा भी तुम्हारे साथ विवाह करना चाहती हे। यदि तुम्हारी स्वीकृति हो तो हम यह प्रस्ताव स्वीकार करले।

सुदर्शन पहले ही मनोरमा की प्रशसा सुन चुका था इसलिए माता–पिता द्वारा मनोरमा का नाम सुनकर वह प्रसन्न हुआ। उसने मनोरमा

को अपनी पत्नी बनने के योग्य मानकर माता–पिता से कहा कि–जब आप मनोरमा को मेरे योग्य मानकर उसे मेरी सहचारिणी बनाना चाहते हैं, तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? मैंने अपने विचार आपको सुना ही दिये। उनको दृष्टि मे रखकर ही आप मनोरमा के पिता का प्रस्ताव स्वीकार करना चाहते हैं, इसलिए मुझे इस सबध मे आपकी सम्मति के विरुद्ध जाने का कोई कारण ही नहीं है।

सुदर्शन की स्वीकृति पाकर जिनदास और अर्हद्दासी को प्रसन्नता हुई। उन्होने सुदर्शन के विचारो तथा उसकी विनम्रता की प्रशसा की ओर उसे आशीर्वाद दिया। जिनदास ने मनोरमा के पिता को बुलाकर उससे कहा कि मैंने सुदर्शन के विचार जानकर उसकी सम्मति ले ली है, इसलिए मनोरमा और सुदर्शन को विवाह–ग्रन्थि मे जोडने विषयक आपका प्रस्ताव स्वीकार है। स्वय का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए मनोरमा के पिता ने जिनदास को धन्यवाद देकर जिनदास का आभार माना।

मनोरमा के साथ सुदर्शन का विवाह हुआ। सुदर्शन की ही तरह मनोरमा भी सरल, विनम्र और धार्मिक विचार रखने वाली थी तथा पति अनुगामिनी थी। इसलिए पति–पत्नी दोनो ही एक दूसरे को आनन्द देते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। दोनो एक दूसरे का पूर्ण विश्वास करते थे। सन्देहजनित क्लेश कलह का उनके यहा नाम भी न था। दोनो ने आनन्द और शिवानन्दा की तरह श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। पति–पत्नी अपने व्रतो की रक्षा और गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए सुख से रहने लगे। जिनदास और अर्हद्दासी को भी पुत्र और पुत्रवधू की यह जोडी बहुत प्रसन्नता देती थी। वे आज्ञाकारी और धर्म पालन मे तत्पर, पुत्र पुत्रवधू को देखकर बहुत आनन्द पाते थे।

कुछ दिन व्यतीत होने के पश्चात् जिनदास ओर अर्हद्दासी ने विचार किया कि अब पुत्र, पुत्रवधू दोनो ही सब तरह से योग्य हैं। दोनो ही कुशल हैं, लोक व्यवहार एव गृहकार्य मे भी दक्ष हैं और हमारे गार्हस्थ धर्म का पालन भी भली प्रकार करते हैं। हमारे यहा पौत्र भी हो गये हैं। ऐसी दशा मे अव अपने लिए उचित नही हे कि अपन ससार व्यवहार का बोझ अपने पर ही लाद रहे ओर आत्मकल्याण के कार्य मे न लगे। योग्य सन्तान के होने पर भी गृहकार्य का बोझ स्वय पर लादे रहना ओर ससार–व्यवहार मे फसे हुए ही हाय–हाय करके मरना सतान के सामने ऐसा ही आदर्श रखना हे। जो लोग

ससार–व्यवहार मे फसे रहते है प्राय उनकी सन्तान भी ससार व्यवहार से नही निकल पाती वे आत्मकल्याण नही कर सकते। इसलिए अपने को गृह ससार के कार्य का भार सुदर्शन और उसकी पत्नी को सौंपकर आत्म–कल्याण मे लग जाना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके जिनदास और अर्हद्दासी ने गृह कार्य का समस्त भार सुदर्शन और उसकी पत्नी को सौंप दिया और स्वय व्यावहारिक कामो से अलग रहकर आत्म कल्याण के लिए धर्मध्यान करने लगे।

जिनदास नगर सेठ था। उसने व्यावहारिक कार्य त्यागने के साथ ही नगर सेठ पद का भी त्याग पत्र दे दिया। राजा और प्रजा ने सोचा कि जिनदास ने नगर सेठ पद का त्यागपत्र दे दिया है, इसलिए अब उनके स्थान पर किसी दूसरे को नगर सेठ बनाना चाहिए। विचार विनिमय के पश्चात् सब लोग इसी निर्णय पर पहुचे कि जिसने इस पद से त्यागपत्र दे दिया है, उन जिनदास का लडका सुदर्शन ही इस योग्य है कि जो नगर सेठ बनाया जा सके। वह बुद्धिमान व्यवहार कुशल एव सर्व प्रिय है, और उसमे नगर सेठ योग्य गुण पैतृक–सस्कार से भी आये हैं। इसलिए उसी को नगर सेठ बनाना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके राजा और प्रजा ने सुदर्शन को नगर सेठ बनाया। सुदर्शन ने पहले तो इस भार को स्वीकार करने मे आनाकानी की, परन्तु अन्त मे राजा और प्रजा के अनुरोध को न टाल सका। नगर सेठ का पद मिलने पर सुदर्शन विचारने लगा कि मुझे यह उत्तरदायित्व पूर्ण पद मिला है इसलिए इस पद के योग्य कर्त्तव्य का पालन किस प्रकार करना चाहिए। नगर सेठ राजा और प्रजा के बीच का पुरुष होता है। उस पर राजा भी विश्वास करता है और प्रजा भी विश्वास करती है। उसे राजा और प्रजा दोनो के लिए इस बात का ध्यान रखना होता है कि इनका अहित न हो। नगर सेठ का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा का भी हित करे और राज्य व्यवस्था की भी रक्षा करे। न तो राजा द्वारा प्रजा पर अन्याय अत्याचार होना चाहिए, न प्रजा द्वारा राज्य व्यवस्था ही भग होनी चाहिए। अधिकार का सदुपयोग करना, पद या सम्पत्ति पाकर गर्व न करना और अपने कर्त्तव्य का पालन करना बहुत ही कठिन है। मुझे नगर सेठ का पद और इस पद के योग्य जो अधिकार मिला है उसके उत्तरदायित्व को यदि मैंने न निभाया तो मैं धिक्कार का पात्र होऊगा। मुझे ऐसा कोनसा कार्य करना चाहिए जिससे नगर सेठ के कर्त्तव्य का भली प्रकार पालन हो।

इस विषयक विचार करने के लिए सुदर्शन बगीचे में जा बैठा। विचार करते हुए उसने देखा कि वृक्ष पर एक लता चढी हुई है उस लता मे फूल आ रहे हैं और भ्रमर तथा शहद की मक्खिया उन फूलो पर मडरा कर उनका रस ले रही हैं। यह देखकर सुदर्शन इस विचार से प्रसन्न हुआ कि यह बेल मुझे इस बात का बोध देती है कि किस कार्य को कर मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता हू। यह लता पृथ्वी से निकलकर वृक्ष का सहारा पाकर उन्नत बनी है। यह पृथ्वी और पानी के परमाणु लेती तो है, लेकिन उन्हे अपने मे ही नही रखती, किन्तु फूल के रूप मे प्रकट करती है और पृथ्वी की गन्ध अपने मे खींचकर फूल मे रखती हे। उन फूलो को बेल भी स्वय के लिए नही रखती और जिस वृक्ष के सहारे बेल उन्नत हुई है, वह वृक्ष भी उन फूलो को अपने अधिकार मे नहीं रखता। वृक्ष यह नहीं कहता कि लता ने मेरा सहारा लिया है, इसलिए फूलो पर मेरा अधिकार हे। जिसका फूल है उस लता ने और जिसका सहारा लेकर लता बढी है उस वृक्ष ने फूलो को शहद की मक्खियो के लिए छोड रखा है। वे दोनो शहद की मक्खियो को आमन्त्रित करके कहते हैं कि अय शहद की मक्खियो! तुम आओ और इन फूलो का रस लो। लेकिन तुम फूलो का रस ले जाकर खराब मत करना, किन्तु उससे शहद बनाना। जब मेरे फूलो का उपयोग हो, तभी मेरी यह ऋद्धि सफल है।

लता पर से यह विचार करके सुदर्शन आगे सोचने लगा कि यह लता तो प्राप्त सम्पत्ति का इस प्रकार सदुपयोग करती हे, लेकिन मनुष्य प्राप्त सम्पत्ति का किस प्रकार दुरुपयोग करते हैं? जो सम्पत्ति ओर किसी को भी प्राप्त नही हे, वह सम्पत्ति हम मनुष्यो को प्राप्त हे। फिर भी हम उसका सदुपयोग न करे, किन्तु दुरुपयोग करे तो यह हमारे लिए अवश्य ही धिक्कार के योग्य बात है। हम मनुष्यो को इस लता से शिक्षा लेनी चाहिए। दूसरे लोग लता से मिलने वाली शिक्षा को ध्यान मे ले या न ले, लेकिन मुझे तो इसकी शिक्षा अवश्य ही अपनानी चाहिए। मेरी शोभा तभी है जब इस लता का गुण मेरे मे भी आवे। मुझे पैतृक सम्पत्ति भी प्राप्त हुई हे और राजा तथा प्रजा ने मिलकर नगर सेठ पद भी दिया है। इसलिए मुझे उचित हे कि मैं दूसरो से जो कुछ लू, उसको स्वय के लिए ही न रखू और उसको दुरुपयोग न करू किन्तु जिस प्रकार लता प्राप्त सम्पत्ति को फूल के रूप मे विकसित करती हे ओर उसका रस शहद बनाने के लिए मक्खियो को देकर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करती हे उसी तरह मैं भी अपनी सम्पत्ति उन लोगो को दू, जो शहद बनाने की तरह अच्छे कार्य करते हैं। मुझे राजसत्ता या नगर सेठ पद

का अधिकार मिला है। मैं इसके सहारे से अपनी शक्ति विकसित करूगा और शक्ति का लाभ सज्जनो को दूगा।

इस प्रकार लता का कार्य देखकर सुदर्शन ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। निश्चित कर्त्तव्य के अनुसार ही वह कार्य भी करने लगा। उसने राजसत्ता के सहारे व्यापार–व्यवसाय आदि की ऐसी व्यवस्था की कि जिससे नगर मे कोई व्यक्ति निरुद्यमी न रहा। सब लोग धन्धे से लगकर कमाने खाने लगे और सुदर्शन की प्रशसा करके उसके लिए शुभ कामना करने लगे।

सासारिक और व्यावहारिक कार्य करने के साथ ही पत्नी सहित सुदर्शन धर्मकार्य भी बराबर और नियमित रूप से करता रहता। वह आत्मकल्याण मे लगे हुए अपने माता–पिता की भी साल–सम्हाल रखता और उन्हे धार्मिक सहायता देता रहता। समय पर सुदर्शन के माता–पिता कालधर्म को प्राप्त हुए। सुदर्शन ने उनके मरणकाल मे धार्मिक साहाय्य द्वारा उनका मरण सुध ारा और फिर उनके शव की योग्य रीति से अन्त्येष्टि की।

जिस प्रकार वृक्ष सभी को शाति देता है, जो उसका अपकार करता है उसका भी वह उपकार ही करता है। उसी प्रकार सुदर्शन भी सबको शाति देने वाला सिद्ध हुआ। प्रजा राजा और देशी–विदेशी सभी लोग उससे प्रसन्न थे। चारो ओर उसकी बडाई होती थी। सब लोग जिनदास को धन्य कहते कि उसने हमारी छाया के लिए सुदर्शन रूप कल्पवृक्ष दिया है।

कपिला के कपटजाल मे

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षित।
कुणक कामिनी मास, योगिभि कामिभि श्वपि ।।

अर्थात्–एक ही वस्तु तीन तरह से देखी जाती है। जिसे योगी लोग अतिनिन्दित पिण्ड रूप से देखते हैं उसे ही कामी लोग कामिनी रूप से देखते हैं और उसे ही कुत्ते अपने भक्ष्य–मास के रूप मे देखते हैं।

ससार के सब लोग एक ही रुचि स्वभाव और प्रकृति के नही होते। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न होती है रुचि भी भिन्न होती है और स्वभाव भी भिन्न होता है। इस कारण एक ही वस्तु अथवा एक ही व्यक्ति भिन्न–भिन्न लोगो के समीप भिन्न–भिन्न उद्देश्यो की पूर्ति का साधन माना जाता है। एक ही वस्तु अथवा व्यक्ति को लोग अपने स्वभाव प्रकृति और रुचि के अनुसार भिन्न–भिन्न दृष्टि से देखते ह तथा ऐसा होना स्वाभाविक भी है। एक व्यक्ति

या वस्तु को सब लोग समान देखे या माने, यह सभव भी नहीं है। यदि ऐसा हो यानि प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु को सभी लोग एक दृष्टि से देखे तब तो ससार मे किसी प्रकार का झगडा ही न रहे। परन्तु ऐसा न तो कभी हुआ है न होता है, न होगा ही। ससार के किसी भी भाग–प्रदेश का और किसी भी समय का इतिहास देखिये तो उससे यही पाया जावेगा कि ऐसा कभी नहीं हुआ और लोगो की रुचि एव प्रकृति की भिन्नता के कारण ऐसा हो भी नहीं सकता। कृष्ण अधिकाश लोगों की दृष्टि मे महापुरुष थे, तो कुछ लोग उन्हे अपना शत्रु भी मानते थे। पाण्डव अधिकाश लोगो को प्रिय थे तो कुछ लोगो को अप्रिय भी थे। भगवान महावीर को अधिकाश लोग तीर्थंकर मानते थे तो कुछ लोग उनको ढोगी कहने वाले और कष्ट देने वाले भी थे। इस प्रकार एक ही व्यक्ति, भिन्न–भिन्न लोगो के समीप भिन्न–भिन्न प्रकार का जान पडता है। एक ही व्यक्ति से लोग अपनी भिन्न–भिन्न रुचि पूरी करना चाहते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई उस व्यक्ति को या उस वस्तु को बिगाड कर लाभ लेना चाहता है, कोई उसको सुधार कर और कोई उसको उसी रूप मे रखकर। हिसक लोग पशु–पक्षियो को मारकर प्रसन्न होते हैं तो अहिसक लोग उनकी रक्षा करके प्रसन्न होते हैं। दुराचारी लोग किसी स्त्री का सतीत्व नष्ट करके प्रसन्न होते हैं तो सदाचारी लोग किसी दुराचारिणी को सत्पथ पर लगाकर प्रसन्न होते हैं अथवा किसी सती स्त्री को देखकर उसके सतीत्व के लिए प्रसन्न होते हैं। किसी सुन्दरी को देखकर कोई उसके लिए दुर्भावना लाता है और कोई उसकी पुण्य कमाई का विचार करके प्रसन्न होता है। इस प्रकार लोग, प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु को अपनी रुचि के अनुसार ही ग्रहण करना चाहते हैं, और इसका कारण है उनकी प्रकृति अथवा उनका स्वभाव।

सुदर्शन के लिए भी ऐसा ही हुआ। सुदर्शन सेठ सदाचारी था। सब लोग उसके सदाचार की प्रशसा करते थे तथा गृहस्थी के लिए उसका सदाचार आदर्श मानते थे। लेकिन कपिला ने उसे भी अपनी दुराचार की रुचि पूर्ण करने का एक साधन बनाना चाहा और इसके लिए ऐसा जाल रचा कि जिसमे फसने के पश्चात् पुरुष के लिए सदाचार का पालन करना कठिन है। परन्तु जिस तरह कपिला अपने विचार की पक्की थी उसी तरह सुदर्शन भी अपने विचार का पक्का था। वह दुराचार की रुचि पूर्ण करना चाहती थी तो सुदर्शन अपने सदाचार को नहीं त्यागना चाहता था। अपने–अपने विचारो को पूर्ण करने या उनकी रक्षा के लिए इन दोनो ने क्या–क्या किया कैसी–कैसी चाले चली और अन्त मे किसकी किस तरह विजय हुई इस प्रकरण मे यही देखना है।

चम्पापुरी मे ही कपिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह वेद, वेदाग , न्याय, दर्शन आदि का विद्वान् भी था और राजपुरोहित होने के कारण प्रतिष्ठित एव धनवान भी था। साथ ही सज्जन तथा सदाचारी भी था। वह इस बात का ध्यान रखता था कि मेरे द्वारा किसी भी समय कोई अनुचित कार्य न हो जावे। कपिल की पत्नी का नाम कपिला था। कपिला सुन्दरी थी। उसको अपनी सुन्दरता का बडा गर्व था। यद्यपि वह थी तो कपिल की पत्नी लेकिन कपिल और कपिला के विचारो मे बहुत वैपरीत्य था। कपिल का विचार तो यह रहता था कि मैं सदाचारी रहू, मेरी सम्पदा का उपयोग सद्कार्य मे हो और मेरे द्वारा किसी भी समय कोई बुरा कार्य न हो। परन्तु कपिला का विचार यह रहता था कि मनुष्य शरीर सुन्दरता और धन–सम्पत्ति पाने का लाभ अच्छे–अच्छे भोगोपभोग भोगना ही है। इस प्रकार दोनो के विचारो मे वैषम्य था।

सुदर्शन की प्रशसा सुनकर कपिल ने यह निर्णय किया कि मेरे लिए सुदर्शन मित्रता करने के योग्य है। मेरे और सुदर्शन के स्वभाव मे भी साम्य है और अवस्था मे भी। इसी प्रकार दूसरी बातो मे भी समता है। नीति मे कहा है कि–**समाने शोभते प्रीति** । वैर विवाह और प्रीति समानता वाले से ही अच्छी होती है। सुदर्शन प्रत्येक दृष्टि से मेरी समानता का है और मैं भी प्रत्येक दृष्टि से सुदर्शन की समानता का हू। इसलिए मेरी और सुदर्शन की मित्रता उपयुक्त होगी। इस प्रकार विचार कर कपिल ने सुदर्शन के पास पारस्परिक मैत्री सबध स्थापित करने का प्रस्ताव भेजा। कपिल की तरह सुदर्शन ने भी यह निश्चय किया कि कपिल से मित्रता करना अनुपयुक्त नही है। यह निश्चय करके उसने कपिल द्वारा भेजे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

कपिल और सुदर्शन मित्र बन गये। मित्र भी नाम मात्र के नही बने थे किन्तु सच्चे मित्र बने थे। दोनो मे से कोई भी किसी प्रकार की स्वार्थ भावना नही रखता था। दोनो ही मे निष्कपट और पूर्ण प्रेम था। आज के लोग तो स्वार्थ के लिए मित्रता करते हैं और अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए मित्र के साथ विश्वासघात तक कर डालते हैं। ऐसा करने वाले लोग मित्र नही, मित्र के रूप मे शत्रु हैं। सच्चे मित्रो का लक्षण क्या है इसके लिए भर्तृहरि ने कहा है–

पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्य च गूहति गुणान्प्रकटी करोति।
आपद्गत च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिद प्रवदन्ति सन्त ।।

अर्थात–सच्चे मित्र के लक्षण बताते हुए सन्त लोग कहते हैं कि जो पाप कार्य से रोकता है अच्छे हितकारी कार्य मे लगाता है गुप्त बातो को

छिपाता है, गुणो को प्रकट करता है, विपद्काल मे साथ नहीं छोडता और समय पर सहायता देता है, वही सन्मित्र है।

सुदर्शन और कपिल की मैत्री ऐसी ही थी। वे एक आत्मा दो शरीर की भाति थे, दोनो ही एक दूसरे का हित तथा कल्याण चाहते थे। अपने–अपने कार्य से छुट्टी पाकर वे एक दूसरे के यहा आया–जाया करते और धार्मिक व्यवहारिक तथा आमोद–प्रमोद की बाते किया करते। एक को देखे बिना दूसरे को चैन नहीं मिलता था।

कपिल सुदर्शन के यहा आया करता और सुदर्शन कपिल के यहा जाया करता। इस आवागमन के कारण कपिल की पत्नी कपिला ने सुदर्शन को देखा। सुदर्शन को बार–बार देखने से उसके हृदय मे सुदर्शन के प्रति अनुराग हुआ। वह सोचने लगी कि ये मेरे पति के मित्र सुदर्शन सेठ कितने सुन्दर हैं? इस तरह का सुन्दर किसी और को मैंने अब तक नहीं देखा। सुन्दर होने के साथ ही ये युवक भी हैं। जिस स्त्री को इनका सहवास प्राप्त है वह वास्तव मे सद्भागिनी है। मेरे पति की तो इनसे मित्रता है ही मुझे भी इनसे मित्रता करके इनके साथ सहवास सभोग का आनन्द प्राप्त करना चाहिए। मैं सुन्दरी हू, बुद्धिमती हू और त्रियाचरित्र मे कुशल भी हू। मैं यदि एक बार इनसे गुप्त मैत्री कर लूगी तो फिर तो ये मेरे और मैं इनकी हो ही जाऊगी। ये मेरे यहा आते जाते रहते हैं इसलिए मेरी और इनकी मैत्री का किसी को पता भी न लगेगा तथा पति को भी किसी प्रकार का सन्देह न होगा।

दुराचारिणी स्त्री अथवा दुराचारी पुरुष पर पुरुष ओर पर स्त्री की ताक मे ही रहा करते हैं। उनको सुन्दर पति अथवा सुन्दर पत्नी प्राप्त हो और दूसरी सुख सामग्री भी उनके यहा हो, फिर भी उनका मन इस ओर से अस्थिर ही रहता है। वे स्वय के पति अथवा स्वय की पत्नी से असतुष्ट रहकर पर पुरुष या पर स्त्री मे ही आनन्द मानते हैं। फिर चाहे वह पर पुरुष या पर स्त्री स्वय के पति या स्वय की पत्नी से कितनी भी खराब या कुरुपा क्यो न हो? कुलहीन क्यो न हो? और उसके कारण इहलौकिक एव पारलौकिक कितनी भी हानि क्यो न हो? स्वय के यहा सब प्रकार की भोगसामग्री होने पर भी दुराचारिणी स्त्री या दुराचारी पुरुष पर पति या पर दारा प्राप्त करने का ही प्रयत्न करते रहते हैं। इसको मोह या अज्ञान के सिवा और क्या कहा जावे? राजा भर्तृहरि की रानी पिगला के लिए कहा जाता है कि उसका एक सईस के साथ अनुचित सबध था। उस सबध को जानकर ही भर्तृहरि ससार से विरक्त हो गये थे और उसने कहा था–

या चिन्तयाभि सतत मयि सा विरक्ता,
साप्यऽन्यमिच्छति जन स जनोऽन्यसक्त ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् ता च त च मदन च इमा च मा च।।

अर्थात्–मैं जिसको सदा चाहता हू वह मुझे नहीं चाहती किन्तु दूसरे पुरुष को चाहती है। जिसको वह चाहती है, उस (मेरी रानी) को दूसरा पुरुष नही चाहता। वह दूसरा पुरुष (जिसे मेरी रानी चाहती है।) दूसरी ही स्त्री को चाहता है और जिस दूसरी स्त्री को वह चाहता है, जिससे वह प्रेम करता है वह स्त्री मुझे चाहती है। इसलिए उस (मेरी) स्त्री को धिक्कार है, उस पुरुष को धिक्कार है मुझको भी धिक्कार है और उस काम को धिक्कार है जो यह सब कुछ कराता है।

कपिला को भी किसी प्रकार की कमी न थी। उसको पति भी प्राप्त था और दूसरी सुख–सामग्री भी प्राप्त थी। पति न तो अशक्त या वृद्ध था, न कुरूप था, न रोगी था, फिर भी कपिला को उससे सतोष नहीं हुआ और वह सुदर्शन को चाहने लगी। उसने सुदर्शन से गुप्त प्रेम करने का अपने हृदय मे निश्चय किया लेकिन उसके सामने यह प्रश्न था कि सुदर्शन के सामने प्रेम–सबध का प्रस्ताव किस तरह रखा जावे जिससे वह अस्वीकार न कर सके। वह सोचती थी कि सुदर्शन सदाचारी भी माना जाता है और उसके घर मे पत्नी भी है। मेरे हृदय मे तो उसकी चाह है लेकिन उसको तो मेरी कोई चाह है नही। इसलिए उससे ऐसे समय और इस रीति से प्रस्ताव करना चाहिए जिससे वह अस्वीकार न कर सके।

कपिला अपने इस विचार को कार्यान्वित करने की चिन्ता मे रहा करती। कुछ दिनो के बाद एक दिन कोई ऐसा आवश्यक कार्य आ गया कि जिसके कारण राजा ने कपिल को अविलम्ब दूसरे गाव जाने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा पालन करने के लिए कपिल दूसरे गाव जाने की तैयारी करने के लिए घर आया। उसने आवश्यक वस्त्रादि साथ लेने की व्यवस्था करके कपिला से कहा कि मुझे राजा ने आवश्यक कार्य के कारण अमुक ग्राम को शीघ्रातिशीघ्र जाने की आज्ञा दी है। मैं वहा जा रहा हू। तुम सावधानी से रहना और यदि कोई कार्य हो तो मेरे मित्र सुदर्शन सेठ से कहना। यद्यपि अवकाश न होने के कारण मैं सुदर्शन सेठ से नही मिल सका हू फिर भी मुझे विश्वास है कि वे तुम्हारी सूचनानुसार प्रत्येक कार्य की व्यवस्था अवश्य कर देगे। तुम सुदर्शन को मेरे ही स्थान पर मानकर जो भी कार्य हो उसकी सूचना उन्हे देना। किसी प्रकार का सकोच न करना।

कपिल से ग्रामान्तर जाने का हाल सुनकर कपिला मन मे तो प्रसन्न हुई फिर भी उसने त्रिया–चरित्र के अनुसार ऊपर से पति–भक्ति दिखाई और कपिल से शीघ्र ही लौट आने का अनुरोध किया। राजा की आज्ञा पालन करने के लिए कपिल कपिला को सान्त्वना देकर ग्रामान्तर चला गया। कपिल के चले जाने पर कपिला सोचने लगी कि बहुत दिनो से मेरे हृदय मे जो अभिलाषा सचित है, अब उसके पूर्ण होने का अवसर आया है। मैं ऐसे अवसर की प्रतीक्षा मे ही थी। सौभाग्य से पति सुदर्शन से बिना मिले ही जा रहे हैं और पति ने यह भी कह दिया है कि सुदर्शन सेठ को मेरे ही स्थान पर मानना। ऐसा कहकर पति ने मुझे सुदर्शन के साथ वही व्यवहार करने की आज्ञा भी दे दी है जो व्यवहार मेरा पति के साथ है।

लोग प्रत्येक बात का अर्थ अपनी भावना के अनुसार ही लगाया करते हैं। चाहे धार्मिक बात ही क्यो न हो, उस बात का अर्थ भी ऐसा निकाला जाता है जिससे अपनी भावना का पोषण हो। यह बात अवश्य है कि अच्छी भावना होने पर बात का अर्थ अच्छा लगाया जावे और बुरी भावना होने पर बुरा अर्थ लगाया जावे, लेकिन बात का अर्थ अपनी भावना के अनुसार ही लगाया जाता है। कपिल ने कपिला से जो कुछ भी कहा था उसमे इस बात की स्वीकृति न थी कि कपिला सुदर्शन के साथ दुराचार करे परन्तु कपिला ने कपिल की बात से यही अर्थ निकाला। इसका कारण यह था कि कपिला की भावना ही खराब थी।

आज मैं सुदर्शन से अवश्य ही गुप्त मैत्री करके उनके साथ के सहवास सम्भोग का आनन्द लूगी, ऐसा निश्चय करके कपिला ने अपने शयनागार को इस प्रकार सजाया कि जिसमे पहुचते ही काम वासना जागृत हो उठे। फिर वह स्वय भी वस्त्राभूषण और अन्जन मजन से भली प्रकार सजी। यह करके कपिला त्रिया–चरित्र के सहारे घबराई हुई सी बनकर सुदर्शन के पास गई। मित्र की पत्नी को आई देखकर सुदर्शन ने उसको माता के समान मान–आदर दिया। फिर उसने कपिला से पूछा कि आज ऐसी क्या बात है जो आप घबराई हुई हैं ओर आपको स्वय को यहा आने का कष्ट उठाना पडा है? सुदर्शन के प्रश्न के उत्तर मे कपिला रोती शकल बनाकर आसू गिराती हुई कहने लगी कि मैं आपको बुलाने के लिये आई हू। आप मेरे साथ शीघ्र ही घर को चलिये। विलब मत करिये।

सुदर्शन–क्यो–क्यो कुशल तो हे न?

कपिला–कुछ कहा नहीं जाता। आपके मित्र के शरीर मे भयकर शूल चल रही है। उपाय भी किया परन्तु कोई परिणाम न निकला। इस समय व

आप ही के नाम की धुन लगाये हुए हैं, इसलिए आप जल्दी चलिए, जिसमे उन्हे सन्तोष हो।

कपिला का कथन सुनकर सुदर्शन घबराया। उसने कपिला से कहा कि ऐसे समय मे आप उनके पास से क्यो चली आई? किसी सेवक को भेज देती तो क्या मैं न चला आता? कपिला ने रोकर उत्तर दिया कि योगायोग से इस समय कोई दूसरा उपस्थित ही न था, कोई दवा लेने गया है और कोई कहीं गया है। इसी कारण मुझे आना पडा। अब जल्दी चलकर उनका उपचार करिये नही तो कोई अनर्थ हो जावेगा।

कपिला की घबराहट देखकर और उसका कथन सुनकर सुदर्शन से रहा न गया। वह अपने रुग्ण मित्र की सेवा करने के लिए उत्सुक हो उठा। उसने कपिला से कहा कि आप चलिये मैं आपके पीछे–पीछे अविलम्ब आता हू। कपिला ने उत्तर दिया कि नही, ऐसा नहीं हो सकता। आपके मित्र की आज्ञा है कि मैं आपको साथ लेकर ही आऊ। इसलिए आप मेरे साथ ही चलिये।

कपिला जो कुछ कह रही थी सुदर्शन उसको ठीक ही मान रहा था। वह नही जानता था कि कपिला झूठ बोल रही है और मुझे अपने कपटजाल मे फसाना चाहती है। इसलिये वह कपिल के यहा जाने के लिए उठ पडा और कपिला के आगे–आगे कपिल के घर को चला। आगे जाता हुआ सुदर्शन तो मित्र की बीमारी के विषय मे विचार करता जाता था कि मित्र को मैं किस प्रकार सन्तोष दे सकूगा और उसका उपचार किस तरह किसके द्वारा कराऊगा आदि। लेकिन सुदर्शन के पीछे जाती हुई कपिला इस बात के लिए अपने मन मे अभिमान करती जाती थी कि स्त्री होकर भी मैंने इन पुरुष को ठग लिया तथा अपने कपटजाल मे फसा लिया है और अभी थोडी देर मे ही मे इनके साथ के सहवास सम्भोग का आनन्द लूगी। लोग धर्म की दुहाई देकर कहते है कि कपट न करना चाहिए, कपट करना पाप है आदि। लेकिन मेरा तो अनुमान हे कि छल–कपट करने पर ही जीवन को आनन्द मिल सकता है।

कपिला के आगे–आगे सुदर्शन कपिल के घर आया। घर पर पहुच कर सुदर्शन ने कपिला से पूछा कि मेरे मित्र कहा पर हैं? कपिला ने वैसी ही आकृति बनाकर कहा कि उनकी तबियत अधिक खराब है इसलिए वे बाहर [illegible] सकते हे। वे भीतर है। आप भीतर उनके शयनागार मे चलिये।

यह कहकर कपिला सुदर्शन के आगे हो गई। सुदर्शन उसके पीछे–पीछे घर मे गया। घर मे पहुच कर कपिला ने सुदर्शन से कहा कि आप

चलिये, मैं आती हू। यह कहकर कपिला सुदर्शन के पीछे हो गई। सुदर्शन घर मे आगे की ओर बढा। इतने ही मे कपिला ने घर का द्वार बन्द कर दिया और जल्दी से चलकर फिर सुदर्शन के आगे हो गई। सुदर्शन को कपिला के छल का किंचित् भी पता न था, न हृदय मे किसी प्रकार का सन्देह ही था। जब कपिला ने किवाड बन्द किये तब सुदर्शन के मन मे यह प्रश्न तो हुआ कि इसने किवाड क्यो बन्द किये हैं, लेकिन इस प्रश्न का समाधान उसने यह विचारकर कर लिया कि द्वार पर कोई नहीं है, घर सूना है इसलिए इसने किवाड बन्द किये होगे।

सुदर्शन को साथ लिये हुई कपिला अपने शयनागार की ओर चली। मार्ग मे कभी तो शरीर का कोई अग खोलती थी और कभी कोई अग खोलती थी। उसने शयनागार को पहले ही कामोत्तेजक रीति से सजा रखा था, वहा पहुचते ही वह सुदर्शन की ओर देख मुसकराती हुई कहने लगी कि आप इस पलग पर बैठिये और एक नवीन मैत्री सबध जोडिये। इस प्रकार कह कर वह हसती और हाथ हिला–हिला कर हाव–भाव दिखाती हुई सुदर्शन से कहने लगी कि आप किसी प्रकार का भय या सकोच मत करिये। यह एकान्त स्थान है और सौभाग्य से आपके मित्र भी यहा नहीं हैं, किन्तु ग्रामान्तर गये हैं। मैं बहुत दिनो से यह सोचती थी कि पति के साथ तो आपकी मैत्री है ही मैं आपके साथ भी मैत्री करू, लेकिन इसके लिए उपयुक्त अवसर ही नही मिलता था। सद्भाग्य से आज ऐसा अवसर मिला है। इसलिए मैं पति की बीमारी के बहाने आपको यहा बुला लाई हू। अब आप मुझ से प्रेम–पूर्ण मैत्री करके सुख भोग करिये। **'तुम सम पुरुष नमो सम नारी'** कहावत के अनुसार मेरी और आपकी जोडी भी अच्छी है। मैं आपको सर्वस्व समर्पण करने के लिये तैयार हू लेकिन आप से एक यह प्रार्थना कर देना उचित और आवश्यक समझती हू कि अपना यह प्रेम–सबध किसी को ज्ञात न होने पावे। वैसे तो आप स्वय भी प्रतिष्ठित एव बुद्धिमान हैं इसलिये ऐसा कदापि न होने देगे, फिर भी भूल से इस विषय मे किसी के सामने बात न निकल जावे इसलिए मैंने आपको सावधान किया है।

सुदर्शन वैसे तो चतुर था फिर भी कपिल से मित्रता होने के कारण वह कपिला के साथ चला आया था। गृह के भीतर आने तक तो उसके हृदय मे किसी प्रकार का सन्देह न था लेकिन कपिला ने जब किवाड बन्द किये तब उसके हृदय मे कुछ सन्देह हुआ था जिसको उसने दबा दिया था। परन्तु जब कपिला उसको अपने शयनागार मे ले गई और सुदर्शन ने वहा कपिल

को न देखा तब उसके हृदय का पूर्वोत्पन्न सन्देह बढ गया। वह समझ गया कि मेरे साथ छल किया गया है। सुदर्शन इस प्रकार सोच–समझ रहा था इतने मे ही कपिला ने हाव–भाव और बातचीत द्वारा अपना वास्तविक रूप दिखा ही दिया और उद्देश्य भी प्रकट कर दिया। सुदर्शन सोचने लगा कि इसने तो मेरे को अपने जाल मे पूरी तरह फसा लिया है। मैंने इसके कथन पर विश्वास करके भूल की है। इस समय मुझे यह नीति वाक्य याद आता है, कि–

नदीना च नखीना च, शृगीणा शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्त्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च।।

अर्थात्–नदियो का, नखवाले जानवरो का, सींगवाले जानवरो का, शस्त्रधारी का स्त्री का और राजकुल वालो का विश्वास कदापि न करना चाहिए।

नीतिकारो का यह कथन ठीक ही है, लेकिन अब इसका स्मरण करना व्यर्थ है। मैं इस नीतिवाक्य को भूलकर इस पर विश्वास कर बैठा, इसीसे इसके जाल मे फस गया। अब मुझे किसी न किसी उपाय द्वारा यहा से निकल जाना चाहिये। मैं यहा से भागकर निकल भी सकता हू परन्तु ऐसा करने मे अनेक आपत्तिया दिखाई पडती हैं। यह स्त्री है। इसकी कामना पूर्ण न होने से यह क्रुद्ध होगी और उस दशा मे सम्भव है कि यह मुझ पर दुराचार का आरोप लगा दे। साथ ही जब मैं यहा से भागता हुआ निकलूगा तब देखने वाले को भी सन्देह हो सकता है। इसलिये भाग कर जाना ठीक नहीं है। यदि मै इस विषय मे इसको उपदेश देने लगू तो मेरा यह कार्य भी व्यर्थ होगा। यह इस समय पूरी तरह मोह मे डूबी हुई है इसलिए इसके समीप मेरा उपदेश उसी प्रकार व्यर्थ होगा जिस प्रकार भैंस के सीग पर मच्छर का डक व्यर्थ होता है। नीतिकारो ने कहा भी है–

अन्त सारविहीनानामुपदेशो न जायते।
मलयाचल–ससर्गान्न वेणुश्चन्दनायते।।

अर्थात–जिसका हृदय सारविहीन है गम्भीरता रहित हे, उसको उपदेश देना व्यर्थ है। मलयाचल के ससर्ग से दूसरे वृक्ष सुगन्धित बन जाते हैं लेकिन बास तो वैसा ही रहता है। क्योकि बास का हृदय सार–विहीन है।

इसके अनुसार इस समय इसको उपदेश देना व्यर्थ हे। इसलिये यहा से किसी ऐसे उपाय से निकलना चाहिये जिससे यह मेरे पर किसी प्रकार का अपवाद भी न लगा सके और मैं अपने शील की भी रक्षा कर सकू।

सुदर्शन युवक था और सुन्दर भी था। दूसरी ओर कपिला भी सुन्दरी और युवती थी। उसने अपने शरीर को इस तरह सजा भी रखा था और वह हाव-भाव भी ऐसे दिखाती थी कि जिससे पुरुष उस पर मुग्ध हो सके। इन सब बातो के साथ ही स्थान भी एकान्त था तथा इस प्रकार सजा हुआ था कि जहा जाते ही स्त्री या पुरुष मे काम जागृत हो उठे। इन सब कारणो के प्रस्तुत होते हुए अपने शील की रक्षा करना, समुद्र को हाथों के सहारे पार करने या अग्नि को पी जाने से भी अधिक कठिन काम है, लेकिन सुदर्शन उस समय भी अपने शील की रक्षा करने का उपाय-सोच रहा है। उसकी यह प्रतिज्ञा है कि प्राण चाहे जावे परन्तु परस्त्री गमन कदापि न करूगा। वह अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ है, इसी कारण कपिला के जाल से निकलने का मार्ग सोच रहा है।

अन्त मे सुदर्शन ने कपिला के षड्यत्र से निकलने का उपाय सोच लिया। उसने निश्चय किया कि किस तरह के कपट से इसके जाल से निकलना उचित है। कपटजाल से निकलने मात्र के लिए कपटपूर्ण उपाय का सहारा लेना, भयकर अपराध नही है। शील भग करने की अपेक्षा शील की रक्षा करने के लिए कपट का सहारा लेना कम पाप है।

इस प्रकार निश्चय करके सुदर्शन कपिला की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखकर मुसकराता हुआ कहने लगा कि वास्तव मे मेरे को जो सुयोग प्राप्त हुआ, वैसा सुयोग प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसे स्थान पर तुम ऐसी सुन्दरी का प्राप्त होना और प्रेम-भिक्षा करना कम सोभाग्य की बात नही है। तुम मुझ से धनादि की लालसा से प्रेम करती होओ ऐसी भी नहीं है न यह है कि तुम किसी पुरुष को पसन्द न होओ। तुम ऐसी सुरूपा स्त्री को प्राप्त करने के लिए लोग लालायित रहते हें ओर प्रयत्न करते रहते हैं फिर भी ऐसा सुयोग प्राप्त नहीं होता जैसा सुयोग मुझे प्राप्त हुआ है। में युवक ओर सुन्दर भी हू लेकिन मेरा दुर्भाग्य हे कि मेरी यह युवावस्था ओर सुन्दरता गन्ध रहित टेसू के फूल के समान व्यर्थ हे तथा मे इस अवसर का लाभ लेने मे असमर्थ हू। अन्यथा कौन बुद्धिमान ऐसे सुयोग को जाने दे सकता है।

सुदर्शन का उत्तर सुनकर कपिला को कुछ निराशा तो हुई फिर भी उसने सुदर्शन से पूछा कि ऐसा क्या कारण हे जिससे आप इच्छा होत हुए भी इस अवसर का लाभ नही ले सकते?

सुदर्शन-यद्यपि यह कारण गुप्त हे फिर भी यदि तुम शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करो कि मेरा वताया हुआ गुप्त कारण किसी पर प्रकट न करागी ता

मैं वह कारण तुम्हारे सामने प्रकट कर सकता हू। मैं जिस कारण से इस अवसर का लाभ लेने मे असमर्थ हू वह कारण किसी को भी मालूम नही है और उसके प्रकट हो जाने पर मेरी प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगेगा। मैं किसी को मुह बताने योग्य भी न रहूगा। मै भी तुम्हारे सामने शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करने को तैयार हू कि यह आज की तुम्हारी बात किसी भी रूप मे और किसी के सामने कदापि प्रकट न करूगा।

सुदर्शन से सोचा कि यह स्त्री है। स्त्रियो मे साहस भी बहुत होता है और भय भी बहुत होता है। यदि इसको आज की घटना प्रकट होने का डर रहा तो सम्भव है कि यह कोई दूसरा प्रपच रचे। इसलिए इसको आज की बात पकट न होने का विश्वास दिलाकर इसका भय मिटा देना चाहिए। इस विचार के कारण ही उसने कपिला से कहा कि मैं आज की बात किसी के सामने प्रकट न करने के लिए शपथ खाने को तैयार हू।

सुदर्शन के कथन के उत्तर मे कपिला ने कहा कि इसमे शपथ खाने या प्रतिज्ञा करने की कौनसी बात है। आप वह कारण प्रकट कर दीजिये। सम्भव है कि मैं उस कारण को अभी ही निर्मूल कर सकू।

सुदर्शन—यदि तुम उस कारण को मिटा सकी तब तो बहुत ही अच्छा है। यह बात तो मेरे लिए भी प्रसन्नता की होगी। लेकिन यदि मिटा न सकी तो उस दशा के लिए तुम शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करो कि मैं जो कारण बताऊ उसे तुम किसी के सामने प्रकट न करोगी। तुम्हारी तरह मैं भी शपथपूर्वक यह पतिज्ञा करने को तैयार हू कि आज की घटना किसी से प्रकट न करूगा।

कपिला—आप मेरा विश्वास रखिये मैं आपकी बात किसी पर भी प्रकट न करूगी। इस पर भी यदि आप मुझसे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा ही कराना चाहते है तो लो मै धर्म की शपथ खाकर यह प्रतिज्ञा करती हू कि आपकी कही हुई बात मै अपने हृदय मे ही रखूगी किसी पर भी प्रकट न करूगी।

सुदर्शन—मैं भी देव गुरु धर्म की शपथ खाकर यह प्रतिज्ञा करता हू कि मै आज की बात किसी पर भी प्रकट न करूगा।

कपिला—अच्छा अब तो प्रतिज्ञा हो चुकी इसलिए अब आप वह कारण प्रकट करिये।

सुदर्शन—प्रतिज्ञा हो जाने पर भी वह प्रकट करने मे मुझे लज्जा आती है इसलिए यही कहता हू कि जैसे किसी आदमी के सामने उत्तमोत्तम भोजन तैयार है फिर भी रोग होने के कारण वह आदमी सामने रखा हुआ भोजन नही खा सकता वही दशा मेरी भी समझिये। बस इतने मे ही सब बात समझ लो।

कपिला—स्पष्ट कहो कि क्या बात हे। जब में शपथपूर्वक प्रतिज्ञा कर चुकी हू, तब सकोच या लज्जा की क्या आवश्यकता हे?

सुदर्शन ने नीची गर्दन करके कहा कि में पुरुषत्वहीन हू। सुदर्शन के मुह से यह सुनते ही कपिला को सुदर्शन पर उतनी ही घृणा हुई, जितना वह सुदर्शन से प्रेम करती थी। उसके मुह से सुदर्शन के लिए यही निकला कि जा! निकल जा यहा से! सुदर्शन तो यह चाहता ही था इसलिए वह कपिला के यहा से निकल कर अपने घर आया। उस समय उसके हृदय मे वेसी ही प्रसन्नता थी जेसी प्रसन्नता व्याघ्री के मुख से छूटे हुए मृगशिशु को स्वय की माता से मिलने पर होती हे। वह सोचता था कि परमात्मा की कृपा से आज मेरे शील की रक्षा हुई अन्यथा में ऐसे जाल मे फस गया था कि जहा से शील बचाकर निकलना बहुत कठिन था। मैंने उससे कहा कि में पुरुषत्वहीन हू, यह मेरा कथन एक प्रकार से तो झूठ या कपट हे लेकिन दूसरी तरह से ठीक भी हे। मेरी प्रतिज्ञा हे कि मेरे लिए मनोरमा के सिवा समस्त स्त्रिया माता के समान हैं। साथ ही नीतिकार मित्र–पत्नी को भी माता कहते हें और अपनी माता के लिए प्रत्येक पुरुष पुरुषत्वहीन ही है।

इस प्रकार सुदर्शन कपिला के कपटजाल से छूटकर बहुत प्रसन्न हुआ। साथ ही उसको यह विचार हुआ कि आज जो घटना घटी हे उसके लिए माता कपिला को दोष देना व्यर्थ हे। वास्तव मे मैं स्वय ही दोषी हू। एक तो मेरा शरीर ऐसा है कि जिस पर कपिला लुभा गई। दूसरा मेंने पर–घर जाने का त्याग नही किया। यदि मेरा शरीर सुन्दर होने पर भी पर घर का त्यागी होता तो आज इस घटना का अवसर ही न आता। शास्त्र मे श्रावक के लिए पर घर प्रवेश का निषेघ इसीलिए किया गया हे कि श्रावक को कभी इस प्रकार की घटना मे पडकर शील भग का अवसर न आवे। में भी अब से यही निश्चय करता हू कि राजसभा के सिवा ओर किसी के घर न जाऊगा।

सुदर्शन ने तो घर पहुच कर अनेक विचारो के पश्चात पर–घर जाने का त्याग किया लेकिन सुदर्शन के जाने के पश्चात् कपिला सोचने लगी की यह सेठ देखने मे तो इतना सुन्दर हे परन्तु जब यह नपुसक हे तब यह सुन्दरता व्यर्थ ही हे। इसकी स्त्री सती कहलाती हे लकिन उसक ता पुत्र हें ओर वह सेठ नपुसक हे ऐसी दशा मे वह सती केसी? पति के नपुसक हान पर भी जब उसके पुत्र हें तथा होते हें तब अवश्य ही दुराचारिणी हे सती नही हे। आज में इस सेठ को जिस उद्देश्य से लायी थी मरा वह उद्दश्य ता पूरा

हीं हुआ लेकिन मुझे यह भेद तो मालूम हो ही गया कि इसकी सती कहलाने वाली स्त्री भी मेरी ही तरह की है। रानी के विषय मे तो मैं जानती ही थी कि वह कैसी है? आज सेठानी के विषय मे भी मालूम हो गया। वास्तव मे उस बेचारी का अपराध भी क्या है? जब उसका पति ही नपुसक है, तब वह सती कैसे रह सकती है। वह सती नही है फिर भी जिस तरह मैं ऊपर से सती बनी हुई हू उसी तरह वह भी सती बनी हुई है। यह भेद आज इस सेठ को लाने से अवश्य मालूम हो गया।

कपिल घर आया। कपिला को सुदर्शन की ओर से इस बात का भय न था कि वह कपिल के सामने कोई भेद प्रकट करेगा। वह सोचती थी कि सुदर्शन ने मेरे सामने शपथ खाई है, इसलिए भी वह पति से कोई बात प्रकट न करेगा और उसको यह भय भी है कि यदि मै कोई बात प्रकट करूगा तो मेरी नपुसकता का भेद खुल जावेगा। इन कारणो से वह पति से कोई बात प्रकट न करेगा। इस प्रकार के विश्वास के कारण उसने कपिल से सुदर्शन के विषय मे कोई बात प्रकट नहीं की, किन्तु इस प्रकार चुप रही कि जैसे कोई बात हुई ही नही थी।

सुदर्शन के यहा कपिल सदा की भाति जाया करता, लेकिन सुदर्शन कपिल के यहा न जाता। कपिल ने सुदर्शन से कहा कि—जिस तरह मैं आपके यहा आया करता हू, उसी तरह आप भी मेरे यहा आया करते थे। परन्तु कुछ दिनो से आप मेरे यहा नहीं आते इसका क्या कारण है? सुदर्शन ने उत्तर दिया कि—आप मेरे अभिन्न मित्र हैं। आपसे मिलने पर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। आपके घर न आने का कोई दूसरा कारण नही है, केवल यही कारण है कि मैने दूसरे घर जाने का त्याग कर दिया है फिर चाहे वह दूसरा सबधी हो अथवा मित्र हो। केवल राजसभा मे जाने का तो अवश्य आगार है, इसके सिवा उन सभी जगह जाने का त्याग कर दिया है, जहा कोई स्त्री रहती हो या उपस्थित हो। इस त्याग के कारण धर्मध्यान के लिए मेरा बहुत समय बच गया है। मेरा यह नियम जानकर आपको अवश्य ही प्रसन्नता हुई होगी और मुझे विश्वास है कि आप मुझे इस नियम का पालन करने मे सहायता देते रहेगे।

सुदर्शन का यह कथन सुनकर कपिल ने उसकी सराहना की। फिर उसने सुदर्शन से कभी भी यह नही कहा कि आप मेरे घर चलिये या मेरे घर क्यो नही आते?

अभया की प्रतिज्ञा

हृदय मे यदि किचित् भी कुटिलता होती हे, किचित् भी बुराई या दुर्भावना होती है तो वह कुटिलता, बुराई या दुर्भावना सयोग पाकर विस्तृत रूप धारण कर लेती है। भूमि मे यदि बीज पडा हुआ हो तो पानी का सयोग मिलने पर वह बीज अकुर रूप मे और फिर वृक्ष रूप मे हो ही जाता हे। किसी स्थान पर यदि बीज न हो तो वहा पानी बरसने पर भी कुछ नहीं उग सकता। अकुर या वृक्ष तो तभी उत्पन्न होगा जब बीज हो और उसको पानी का सयोग भी मिला हो। इसी के अनुसार जिसके हृदय मे किचित् भी कुटिलता या बुराई या दुर्भावना नहीं है उसके समीप कुटिलता, बुराई या दुर्भावनावर्द्धक कितने भी और कैसे भी कारण आवे सब व्यर्थ होते हैं। वृद्धि तो तभी हो सकती है जब मूल हो। जब मूल ही नही है तब वृद्धि किसकी हो? यही नियम सद्‌गुण, सरलता और नम्रता के लिए भी है। लेकिन साधन पाकर भी उनकी वृद्धि उस तरह की शीघ्रता से नही होती जैसी शीघ्रता से बुराइयो की वृद्धि होती है। पूरे साधन पाकर भी केले या आम का पौधा उतनी शीघ्रता से वृद्धि नहीं पाता जितनी शीघ्रता से थोडे साधन पाकर भी धतूरा, बबूल या आकडे का पौधा वृद्धि पाता है। इस प्रकार साधन मिलने पर भी अच्छाई मे उतनी वृद्धि नहीं होती जितनी वृद्धि बुराई मे होती है।

अभया के लिए भी ऐसा ही हुआ। अभया के हृदय मे दुराचार की थोडी बहुत भावना तो थी ही, तभी वह भावना साधन पाकर वृद्धि पाई फिर भी वह राजपत्नी थी, कुलवती थी और उसको अपने पद अपनी प्रतिष्ठा एव अपने वश का ध्यान था। इसलिए वह उस सीमा तक नही बढी थी जिस सीमा तक कपिला बढी। पडिता की सगति के कारण कपिला द्वारा आवेश पाने के कारण और कपिला द्वारा प्रतिज्ञाबद्ध की जाने के कारण दुराचार करने के लिए तेयार हुई। कुसगति से ऐसा होता ही है। स्वय के हृदय मे रही हुई किचित् भी बुराई कुसगति पाकर विशाल रूप धारण कर लेती है। केकयी मे राम के प्रति कुछ भेद तो भले ही रहा होगा लेकिन ऐसा दुर्भाव न था, जैसा दुर्भाव मन्थरा की प्रेरणा से हुआ। इसी प्रकार के ओर भी अनेको उदाहरण दिये जा सकते हैं लेकिन उदाहरण न देकर इस कथा से ही यह बताया जाता है कि कुसगति के प्रभाव से–दुराचारिणी द्वारा दिलाये गये आवेश मे आ जाने से–अभया ऐसा नीच कार्य करने के लिए तेयार हुई जो कि उसके लिए प्रत्येक दृष्टि से अनुचित था।

पहले के राजा लोग प्रजा के मनोरजन और प्रजा म जागृति लाने के लिए उत्सवादि की व्यवस्था किया करते थे। इसके अनुसार चम्पापुरी म

भी इन्द्रोत्सव नाम का उत्सव हुआ करता था। कपिला की घटना के कुछ दिन बाद इस उत्सव का समय आने पर चम्पा के राजा दधिवाहन ने नगर मे यह घोषणा कराई कि कल इन्द्रोत्सव है। अत सब स्त्री पुरुष उत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर जावे।

नगर के बाहर उत्सव मनाने की व्यवस्था हुई। राजा के दरबार के लिए भी डेरा–शामियाना लगा और रानी के दरबार के लिए भी। यानि स्त्री और पुरुषो के बैठने आदि की अलग–अलग व्यवस्था हुई। राजा–रानी और नगर के दूसरे स्त्री पुरुष उत्सव मनाने के लिए नगर के बाहर गये। सुदर्शन की पत्नी मनोरमा भी अपने पाच पुत्रो सहित रथ मे बैठकर उत्सव मे भाग लेने के लिए नगर के बाहर जहा रानी का दरबार लग रहा था वहा गई। मनोरमा ने रानी अभया का उचित अभिवादन किया और अभया रानी ने मनोरमा को आदर दिया। कपिला भी सज धजकर रानी के सामने उपस्थित हुई। उसने भी रानी का अभिवादन किया। रानी ने उसका आदर करके उससे कहा कि–तुम सभी के बाद आई। मैं तो बडी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी कि पुरोहिताइनजी इधर आ जावे तो सब घूमने के लिए चले। रानी के कथन के उत्तर मे कपिला ने कहा कि–मैं आपकी सेवा मे जल्दी ही उपस्थित होना चाहती थी लेकिन कार्यवश विलम्ब हो गया। अभी घूमने का समय तो नही बीता है इसलिए पधारिये।

जहा कोई उत्सव होता है और अधिक सख्या मे लोग एकत्रित होते हैं वहा दुकाने भी लग जाती हैं और एक प्रकार का मेला भर जाता है। इसके अनुसार इन्द्रोत्सव के कारण चम्पा के बाहर भी मेला लग गया था। जहा मेला होता है वहा अनेक प्रकार के लोग आते हैं। कोई किस विचार से आता है और कोई किस विचार से आता है। उत्सव मे भाग लेने के लिए अभया भी आई है कपिला भी आई है और मनोरमा भी आई है, लेकिन तीनो का स्वभाव भी भिन्न था। तीनो की प्रकृति भी भिन्न थी और तीनो के विचारो मे भी भिन्नता थी। यद्यपि सदाचार को महत्व तो अभया भी नही देती थी वह भी सासारिक भोग विलास को महत्त्व देती थी और उसके लिए सदाचार को ठुकरा सकती थी फिर भी वह कपिला की तरह उच्छृखल स्वभाव की न थी। वह कपिला की अपेक्षा गम्भीर भी थी तथा उसको अपने पद एव प्रतिष्ठा का भी ध्यान रहता था। इसके विरुद्ध कपिला सासारिक भोग–विलास को ही महत्त्व दने वाली थी उच्छृखल स्वभाववाली भी थी तथा चपल भी थी। लेकिन मनोरमा का स्वभाव इन दोनो से ही भिन्न था। वह सदाचार को अपना

आभूषण मानती थी, उसके स्वभाव मे गम्भीरता थी ओर उसकी दृष्टि सदा नीचे की ओर ही रहती थी। इन कारणो से तीनो के विचार मे भी अन्तर था।

अभया ने वहा उपस्थित स्त्रियो के साथ उत्सव मे घूमने जाने के लिए तैयारी की। सब स्त्रिया अपने–अपने वाहन मे बैठ गईं। अभया भी अपने रथ मे बैठी और मनोरमा भी अपने पुत्रो को लेकर अपने रथ मे बेठी। कपिला अभया के साथ अभया के रथ मे ही बैठी। वाहनो मे बैठकर सब स्त्रिया चलीं। सबसे आगे अभया का रथ था। अभया के रथ के पीछे मनोरमा का रथ था और मनोरमा के रथ के पीछे दूसरी स्त्रियो के रथ थे। उत्सव मे घूमने के लिए निकलने पर भी मनोरमा नीची दृष्टि किये हुए बैठी थी लेकिन अभया और कपिला चारो ओर देखती हुई कभी किसी की निन्दा करती थी और कभी किसी की प्रशसा करती जाती थी। सहसा कपिला की दृष्टि मनोरमा पर पडी। वह मनोरमा की ओर बार–बार देखने लगी। रानी ने कपिला से पूछा कि–तुम पीछे की ओर बार–बार क्या देखती हो? कपिला ने उत्तर दिया कि–मैं इस पीछे वाले रथ मे बैठी हुई स्त्री को देख रही हू कि यह कैसी सुन्दरी है और इसकी आकृति कैसी सौम्य है। मैंने ऐसी सुन्दरी स्त्री आज तक नहीं देखी। यह उत्सव मे आई है और इसका रथ आपके रथ के पीछे ही है इससे यह तो जान पडता है कि यह अपने नगर की कोई प्रतिष्ठित स्त्री है, परन्तु अपने नगर की होने पर भी मैं यह निश्चय नही कर सकी कि यह स्त्री कौन है?

कपिला के कथन के उत्तर मे अभया कहने लगी कि–क्या तुम इनको नही पहचानती? वास्तव मे तुम्हारी आखे और तुम्हारा मन दूसरी ओर रहता होगा, इसलिए इनको पहचानो भी कैसे? इनको तुम एक बार नही किन्तु कई बार देख चुकी होगी, फिर भी तुम्हारी स्मृति मे कोई स्त्री कैसे रह सकती हे। हा, यदि किसी सुन्दर पुरुष को तुमने देखा होता तो वह तो चाहे तुम्हारे स्मरण मे रहता।

यह कहकर अभया हसने लगी। अभया के इस कथन का कपिला पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने अभया से कहा कि–आप तो हसती हैं लेकिन मैं आपसे एकदम सत्य कहती हू कि मैं इसको नही जानती। सम्भवत पहले कभी मैंने इसको देखा भी नहीं ओर यदि देखा भी होगा तो इस समय मेरे स्मरण मे नहीं है।

अभया ने कहा कि–कभी तुम स्वय को भी मत भूल जाना। ये यहा के नगरसेठ सुदर्शन की सेठानी हैं।

कपिला ने कहा—ये नगरसेठ की सेठानी हैं? और ये बालक किसके हैं?

अभया—इन्ही के हैं।

ये नगरसेठ के बालक हैं। यह कहकर कपिला ठहाका मारकर हसी। कपिला को इस प्रकार हसती देखकर अभया समझ गई कि इस हसी मे कोई रहस्य है। उसने कपिला से पूछा कि—तुम हसी क्यो?

कपिला—कुछ नही, वैसे ही हसी थी।

अभया—मुझसे भी कपट। अच्छा मत कहो।

कपिला—आपसे मैं कपट करू यह कैसे सम्भव है? लेकिन मैंने हसी का कारण बताने के लिए इस अवसर को ठीक नही समझा, इसी से चुप रही थी। फिर भी आप नाराज होती हैं तो लो मैं बता देती हू।

यह कहकर कपिला ने साकेतिक भाषा मे अभया से कहा कि—इसका पति तो नपुसक है फिर भी यह पाच पुत्र लेकर सती बनी बैठी है यह देखकर मुझे हसी आ गई। यह बैठी तो है सती बनकर लेकिन है दुराचारिणी। पति के नपुसक होने पर दुराचार किये बिना इसके पुत्र कहा से हो सकते थे?

अभया—तुम झूठ कहती हो। किसी ने तुमसे यह बात गलत कही है।

कपिला—नही मै बिलकुल ठीक कह रही हू।

अभया—तुम्हे क्या पता कि इसका पति नपुसक है यह बात तुम्हे कैसे मालूम हुई?

कपिला—और किसी की कही हुई बात तो झूठ भी हो सकती है लेकिन मैं जो कुछ कह रही हू वह स्वय इसके पति के मुह से निकली हुई बात है।

अभया—इसके पति ने किससे कहा था?

कपिला—स्वय मेरे से।

कपिला के इस उत्तर मे अभया समझ गई कि इसने कभी सेठ को अपने जाल मे फसाना चाहा था लेकिन वह स्वय को नपुसक बताकर इसके जाल से निकल गया है। इसीसे यह कहती है कि सुदर्शन सेठ नपुसक हैं। उसने कपिला से कहा कि—तुम स्वय को बहुत होशियार और त्रियाचरित्र—कुशल मानती हो लेकिन तुम्हारी बातो से जान पडता है कि तुमने नगरसेठ सुदर्शन से धोखा खाया है और वह तुम्हे धोखा देकर तुम्हारे पजे से निकल गया है। इसीसे तुम कह रही हो कि वह नपुसक है।

कपिला—क्या मैंने धोखा खाया है?

अभया–स्पष्ट धोखा खाया है। इन लडको को देखकर सुदर्शन सेठ को जानने वाला एक मूर्ख व्यक्ति भी कह सकता है कि ये बालक सुदर्शन सेठ के हैं। इनकी आकृति सेठ की आकृति से सर्वांश मे मिलती–जुलती है। यदि ये सेठ से उत्पन्न न होते किन्तु किसी दूसरे पुरुष के ससर्ग से उत्पन्न होते तो इनकी आकृति सेठ की आकृति से कैसे मिलती? इसके सिवा सेठानी को देखकर भी कोई यह नही कह सकता कि यह दुराचारिणी है, पर–पुरुषगामिनी की आखे छिपी नहीं रहतीं। जो स्त्री एक बार भी पर–पुरुपगमन कर चुकती है उसकी आखे प्रकट या अप्रकट रूप मे सुन्दर और युवक पुरुष की खोज मे ही रहती हैं। सेठानी इतनी देर से अपने साथ है फिर भी इसकी आखे नीची ही हैं। इसने किसी पुरुष की ओर देखा तक नहीं। ऐसी दशा मे यह पर–पुरुषगामिनी कैसे कही जा सकती है और तुम्हारा कथन सत्य कैसे हो सकता है? तुम्हारे कथन को सुनकर और वास्तविकता देखकर यही समझा जाता है कि तुमने धोखा खाया है। अब तुम यह बताओ कि सेठ को तुमसे यह कहने की आवश्यकता क्यो हुई कि मैं नपुसक हू?

अभया का अन्तिम प्रश्न सुनकर कपिला कुछ हिचकिचाई। उसने कहा कि–सेठ की मेरे पति से मित्रता है। मेरे पति से वह अपनी नपुसकता का हाल कह रहा था। तब मैंने भी सुना था।

अभया–तुम झूठ बोलती हो। पहले तुम स्वीकार कर चुकी हो कि इसके पति ने स्वय मेरे से यह कहा था कि मैं नपुसक हू। फिर इस तरह कपट करने और बात को छिपाने से क्या लाभ? तुम्हे सच्ची बात कहनी ही होगी।

कपिला ने सोचा कि मैंने सेठ के सामने शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारी नपुसकता की बात किसी से न कहूगी। बात ही बात मे मैं इस प्रतिज्ञा को तोड चुकी हू फिर अब दूसरी बात छिपाने से क्या लाभ है? मुझ मे और रानी मे किसी प्रकार का भेदभाव तो हे नही। रानी की गुप्त बातो को मैं जानती हू और मेरी गुप्त बातो को रानी जानती हे। इसके सिवा में इस तरह की अनेक शपथो को तोड चुकी हू। शपथ दूसरे को धोखा देने के लिए ही है, उससे बध जाना मूर्खों का काम हे।

इस प्रकार सोचकर कपिला ने स्वय का सुदर्शन पर मुग्ध होने तथा पति के ग्रामान्तर जाने पर सुदर्शन को अपने घर लाने आदि समस्त वृत्तान्त अभया को सुनाया। जब कपिला सब वृत्तान्त सुना चुकी तब अभया न कहा कि–मेंने तो तुमसे पहले ही कह दिया कि तुमको सेठ ने धाखा दिया हे। वास्तव मे वह नपुसक या पुरुपत्वहीन नही हे।

कपिला— यदि वह मुझे भी धोखा दे गया, तब तो फिर उसको कोई भी स्त्री अपने अधीन नही कर सकती। जब उससे मै भी धोखा खा गई, तब तो किसी मानवी की तो यह शक्ति हो ही नही सकती कि वह सुदर्शन को अपने जाल मे फसावे। बल्कि मेरी तो यह धारणा है कि उसको कोई देवागना भी ठगने मे समर्थ नही हो सकती।

अभया—बस—बस! रहने दो! बहुत बाते मत करो। तुम्हारे इस कथन का तो यह अर्थ हुआ कि ससार मे तुम से बढकर कोई भी स्त्री त्रिया—चरित्र कुशल है ही नही और जिस कार्य को तुम नहीं कर सकी, उसे कोई भी नही कर सकती। तुम्हारा यह कथन निरा व्यर्थ एव असगत है। अभी तुम त्रियाचरित्र सीखो। इतना अभिमान मत करो। जो स्त्रिया अच्छी तरह से त्रियाचरित्र जानती है, उनके सामने सेठ जैसे साधारण पुरुष की तो गणना ही क्या है? वे बडे—बडे ऋषि, मुनि और देव—दानव तक को डिगा सकती हैं। इसलिए इस तरह की अभिमान पूर्ण बाते न कहकर यह मान कि अभी मैं त्रिया—चरित्र मे निपुण नहीं हू और मैंने धोखा खाया है।

कपिला—हा आपका यह कथन तो ठीक है कि बडे बडे ऋषि, मुनि और इन्द्र—नरेन्द्र को भी डिगाया जा सकता है, लेकिन सुदर्शन के विषय मे तो मुझे यह दृढ विश्वास है कि सुदर्शन को शील से कोई भी स्त्री नही डिगा सकती। इसके साथ ही मुझे स्वय के लिए भी यह विश्वास है कि मैं त्रिया—चरित्र मे पूर्ण कुशल हू। कोई साधारण पुरुष मेरे जाल से कदापि नहीं छूट सकता।

अभया—तुम्हारा यह विश्वास तुम्हारे पास ही रहने दो। इस विश्वास के आधार पर कोई अभिमान भरी बात मत कहो।

कपिला—मैं किसी को मेरे से बढकर तब देखूगी जब कोई स्त्री सेठ को अपने अधीन कर लेगी और तब मेरा विश्वास आप ही मिट जायेगा। इससे पहले तो कैसे मिट सकता है?

अभया—अभी मेरे लिए तुम्हे यह पता नहीं है कि त्रियाचरित्र मे मैं कैसी हू, इसीसे इस तरह की बात कर रही हो।

कपिला—आप कैसी होशियार हैं यह मैं अच्छी तरह जानती हू, लेकिन सुदर्शन से तो आपको भी हारना ही पडेगा।

अभया—और यदि मैंने सुदर्शन को वश मे कर लिया तो?

कपिला—तो मे आपकी शिष्या बन जाऊगी लेकिन यदि ऐसा न कर सकी तो?

अभया–मैं तुम्हे मुह न दिखाऊगी, किन्तु इस ससार से सदा के लिए विदा हो जाऊगी।

कपिला–ठीक है, परन्तु इस प्रतिज्ञा की कोई अवधि भी होगी?

अभया–केवल एक वर्ष।

कपिला–महारानी जी, अपनी इस प्रतिज्ञा के विषय मे एक बार पुन विचार करलो। ऐसा न हो कि प्रतिज्ञा अपूर्ण रहने पर आपको शर्माना भी पडे और जीवन को भी विदा देनी पडे।

अभया–मैंने अच्छी तरह सोच लिया है। मैं कपिला नहीं हू, जो कोई मुझे धोखे मे डाल सके।

कपिला–यह बात तो समय पर ही मालूम होगी।

अभया ने कपिला के सामने सुदर्शन को भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की। कपिला ने जोश दे–देकर अभया को प्रतिज्ञा के बधन मे बाध लिया और अपने मन मे प्रसन्न होने लगी। कपिला और अभया मे मार्ग भर इसी विषयक बातचीत होती रही, अन्त मे उत्सव का भ्रमण समाप्त करके रानी अपनी सखी सहेलियो एव नगर की स्त्रियो सहित डेरे पर लौट आई और मनोरमा आदि सब स्त्रिया अपने–अपने घर को चली गईं।

पंडिता का पाण्डित्य

स्त्रियो मे छल–कपट, प्रपच ओर धूर्त्तता स्वाभाविक ही होती हे। यह बात दूसरी हे कि स्त्रियो मे कोई अपवाद स्वरूप ऐसी भी हो जिनमे कई दुर्गुणो का अभाव हो अन्यथा स्त्रियो मे छल–कपट प्रपच ओर धूर्तता होती ही हे। स्त्रिया बडे–बडे ऋषि–मुनि को भी छल सकती हैं। अपने कपटपूर्ण व्यवहार से स्वय को अनेको की बना सकती हैं फिर भी प्रकट मे सती ही बनी रहती हें ओर वास्तव मे किसी की भी नहीं होती। स्त्रियो मे प्रीति केसी होती है, इसके लिए एक कवि कहता हे–

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन, पश्यत्यऽन्य सविभ्रमा ।
हृदये चितयत्यऽन्य न स्त्रीणामेकतो रति ।।

अर्थात्–स्त्रिया बात तो किसी से करती हें ओर विलासपूर्वक देखतीं किसी दूसरे को ही हैं तथा हृदय मे ध्यान किसी तीसरे का ही करती हें। इस प्रकार स्त्रियो की प्रीति किसी एक मे ही नही होती।

स्त्रियो मे प्रपच तो इतना अधिक होता हे कि वे बाता ही बाता म राई को पहाड और तिल को ताड बना देती हें। आपस मे लडा देना भेद डाल

देना बदनाम कर देना आदि बाते तो उनके समीप लीला मात्र के समान हैं। इसके लिए कौणिक–चेडा मे जो युद्ध हुआ था, उसका बीजारोपण करने वाली पद्मावती विख्यात ही है। स्त्रियो की बुद्धि भी ऐसी होती है कि वे इस तरह के कार्य मे तत्काल ही बात बना सकती हैं, उपाय निकाल सकती हैं और सैकडो–सहस्रो ही नही, किन्तु लाखो, करोडो मनुष्यो की आखो में भी धूल डाल सकती हैं। वे अपना कार्य साधने के लिए कभी महान् वीरता धारण कर सकती हैं कभी सीमातीत कायरता दिखला सकती हैं। कभी रो सकती हैं, कभी हस सकती हैं। कभी प्रेम दिखला सकती हैं, कभी घृणा कर सकती हैं, कभी सरल बन जाती हैं, कभी मायावी। कभी विनम्र हो जाती हैं, कभी कठोर। कभी दयालु कभी हिसक। इस प्रकार अपना कार्य बनाने के लिए जिस समय जैसी आवश्यकता देखती हैं, उस समय वैसी ही बन जाती हैं और उसी प्रकार का व्यवहार करने लगती हैं। उनके इस प्रकार के व्यवहार का नाम ही त्रिया–चरित्र है स्त्रियो मे त्रिया–चरित्र स्वभावत होती ही है। नीतिकारो का कथन है कि–

अनृत साहस माया, मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचित्व निर्दयत्व स्त्रीणा दोषा स्वभावजाः।।

अर्थात्–झूठ बोलना बिना विचारे ही काम मे लगने का साहस कर डालना हठ करना छल–कपट करना, मूर्खता, लोभ अपवित्रता और निर्दयता ये दुर्गुण स्त्रियो मे स्वभाव से ही होते हैं।

इन दुर्गुणो की सहायता लेना ही त्रियाचरित्र है। ये सब बाते स्त्रियो मे स्वभावत होती हैं फिर भी सभी स्त्रिया ऐसी नही होती। बहुत सी स्त्रिया इन दुर्गुणो से बची हुई भी रहती हैं। जो स्त्रिया कुलटा या दुश्चरित्रवान् होती हैं वे ही त्रिया–चरित्र को अपना बल मानती हैं एव उसके सहारे स्वय को सब कुछ करने मे समर्थ समझती हैं। वे त्रिया चरित्र को अपना एक अमोघशस्त्र समझती हैं, उसके सहारे निर्भय रहती हैं तथा उनकी सहायता से जो कुछ चाहती है प्राय वह कर भी डालती हैं। धुरधर नीतिज्ञो के नीतिजाल से बचना और उसे तोड डालना तो सरल भी हो सकता है, लेकिन स्त्रियो के त्रियाचरित्र रूपी जाल से बचना और उसे तोड डालना बहुत ही कठिन है। अनेक बडे–बडे वीर योद्धा विद्वान् और सदाचारी लोग भी त्रियाचरित्र मे फसकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। त्रियाचरित्र के जाल मे फस जाने के पश्चात कोई विरले ही व्यक्ति अपने ध्येय पर स्थिर रह सकते हैं। सुदर्शन के सदाचार को नष्ट करने के लिए अभया ने जो प्रतिज्ञा की वह स्वय की

सहायिकाओ के त्रियाचरित्र के बल पर ही की है। इसलिए अब यह देखते हैं कि सुदर्शन को शीलभ्रष्ट करने के लिए किस प्रकार का त्रियाचरित्र किया जाता है।

अभया की धाय का नाम पडिता था। अभया अपनी इस धाय को अपने पिता के घर से साथ लेती आई थी। पडिता बातचीत मे कुशल त्रियाचरित्र मे निपुण और अभया की विश्वास पात्र थी। अभया अपनी गुप्त से गुप्त बात भी पडिता से कहा करती और अभया के गुप्त कार्यों मे पडिता सहायता करती रहती। पडिता के भरोसे पर अभया कठिन से कठिन गुप्त कार्य को भी सरल माना करती थी। उत्सव से लौट कर अभया ने पडिता से वह समस्त बातचीत कही जो उसके और कपिला के बीच मे हुई थी। सब बातचीत सुनाकर अभया ने पडिता से कहा कि—मैंने कपिला से जो होड की है वह तेरे ही सहारे की है। यदि मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी न हुई तो मुझे मरना पडेगा। इसलिये ऐसा उपाय कर कि मेरी बात रह जावे और मुझे मरना न पडे।

अभया का कथन सुनकर पडिता ने उससे कहा कि—इसमे घबराने की कोई बात नही है। यह कार्य करना मेरे बाये हाथ का खेल है। तुम्हारी प्रतिज्ञा किस तरह पूरी हो सकेगी इसका उपाय भी मैंने सोच लिया है। तुम निश्चिन्त रहो लेकिन मैं जैसा कहू वैसा करती जाओ। तुम हा—हू करके तानकर इस तरह सो जाओ जैसे किसी यक्षादि ने सताया हो। फिर मेरा सकेत मिले तब उठ जाना। बस इसके बाद तो मैं सब कुछ कर डालूगी।

पडिता की बात मानकर अभया अपने कपडे—लते फेककर ओर शरीर को अस्त—व्यस्त करके इस तरह हा—हू करने लगी कि जैसे उसके शरीर मे किसी देव या यक्ष का प्रकोप हो। त्रियाचरित्र मे तो अभया कुशल थी ही इसलिये उसने यह दृश्य पूरी तरह दिखाया उसके समीप की दासिया रानी की यह दशा देखकर घबराई। वे रानी को सभालने लगी लेकिन सभली हुई रानी को कौन सभाल सकता था? वह तो हा—हू करती थी कभी शरीर को कपाने लगती थी और कभी रोती या हसने लगती थी। वहा उपस्थित दासियो मे से एक दासी दौडी हुई राजा दधिवाहन के पास गई। उसने दधिवाहन से कहा कि—महाराज—महारानी को न मालूम क्या हो गया हे इसलिए आप शीघ्र पधारिये।

रानी की तबीयत खराब हे यह सुनकर दधिवाहन घबराया। वह दौडा हुआ रानी के डेरे मे आया। राजा आ रहे हैं यह जानकर अभया कपडा

तानकर सो गई और हा–हू, ऊ–आ करने लगी। पडिता वहा उपस्थित ही थी। राजा के पहुचते ही वह राजा से कहने लगी कि–महाराज, देखिये, महारानी को न मालूम क्या हो गया है? इनका चित्त अस्थिर है, इनकी चेष्टा भी विचित्र है और जान पडता है कि ये अपने आपे मे नही हैं। इनकी दशा देखकर मेरे को इनके जीवन के विषय मे भी भय हो गया है, इसलिये शीघ्र ही उपचार होना चाहिए अन्यथा अनर्थ हो जायेगा।

कपडा तानकर पडी हुई रानी से राजा कहने लगा–प्रिये, तुम्हे क्या हुआ है? राजा बार–बार इस तरह के प्रश्न करके रानी के शरीर का कपडा हटाना चाहता था लेकिन रानी कपडे को तानकर अधिक–अधिक ऊ–हू करती थी और कोई जवाब नही देती थी। वह शारीरिक चेष्टा द्वारा भी यही प्रकट करती थी कि शरीर मे किसी देवादि का प्रकोप है। रानी की इस चेष्टा से राजा की घबराहट बढ गई। वह पडिता से कहने लगा कि–इनको क्या हो गया है कुछ समझ मे नहीं आता।

पडिता–मेरी समझ मे नही आता कि इनको क्या हो गया है? अभी थोडी देर पहले तो ये उत्सव से लौटकर आई हैं। हा, मेरे को इसी समय एक बात याद आई है। सम्भव है कि उसी के कारण महारानी की तबियत अचानक इस प्रकार हो गई हो।

राजा–वह बात क्या है?

पडिता–आप जब युद्ध के लिए पधारे थे, तब पतिव्रता महारानी ने आपकी कुशल के लिये अनेक प्रकार के तप नियम और बहुतसी मान–मिन्नते की थी। उसी समय महारानी ने कामदेव की यह मान की थी–हे कामदेव! आज जिस तरह मैं महाराजा की पीठ देखती हू, उसी तरह जब महाराजा लौट कर आवेगे और मै उनका दर्शन कर लूगी तब उत्सव पूर्वक आपकी पूजा करूगी तथा जब तक उत्सवपूर्वक आपकी पूजा न कर लूगी, तब तक महल से बाहर पेर न दूगी। महारानी द्वारा की गई आपकी कुशल कामना कामदेव की कृपा से पूर्ण हुई। आप युद्ध मे विजय प्राप्त करके आनन्दपूर्वक वापिस पधार गये लेकिन आपको पाकर महारानी कामदेव की पूजा करने की अपनी प्रतिज्ञा भूल गई। इन्होने कामदेव की पूजा नही की और आज आपकी आज्ञानुसार ये महल से बाहर यहा चली आई। इस प्रकार इसने देव से की हुई स्वय की प्रतिज्ञा का पालन नही किया। मेरी समझ से यह उन देव का ही प्रताप है तथा इसी से महारानी की तबियत अनायास इस प्रकार खराव हो गई है।

पडिता का कथन सुनकर दधिवाहन कहने लगा कि--महारानी ने यह बहुत बडी भूल की, जो देव से प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं किया।

पडिता--महाराज, कार्य हो जाने के पश्चात् ऐसा होता ही है। पतिव्रता पति को पाकर परमात्मा को भी भूल जाती हे, तो महारानी आपको पाकर कामदेव को भूल जावे इसमे क्या आश्चर्य है?

राजा--जिसकी कृपा से इष्ट सिद्धि हो उसको भूलना है तो अनुचित ही। उनसे की गई प्रतिज्ञा का पालन तो करना ही चाहिये था और जब तक प्रतिज्ञानुसार पूजा नही करली थी तब तक महारानी को महल से बाहर नहीं निकलना चाहिए था।

पडिता--कोई पतिव्रता स्त्री पति की आज्ञा--पालन करने मे कब विलम्ब कर सकती है। जब आपने महारानी को नगर से बाहर आने की आज्ञा दी तब महारानी कैसे रुक सकती थी?

राजा--जो होना था सो हुआ, लेकिन अब क्या उपाय किया जावे जिससे महारानी स्वस्थ हो?

पडिता--यदि महारानी देव प्रकोप के कारण ही अस्वस्थ हुई हैं तब तो देव प्रकोप शान्त हुए बिना महारानी की तबियत कैसे अच्छी हो सकती है?

राजा--हा, यह तो ठीक है लेकिन देव प्रकोप शात कैसे हो सकता है?

पडिता--आप देव की पूजा कीजिये और अपने पर उनकी पूजा का भार लीजिये। सभव हे कि ऐसा करने से देव तुष्टमान हो जावे ओर महारानी की तबियत अच्छी हो जावे।

राजा--देव की प्रार्थना किस तरह करनी चाहिए?

पडिता--पहले तो आप शुद्ध जल से हाथ--पाव धोइये। फिर हाथ जोडकर देव से प्रार्थना कीजिये कि महारानी की यह भूल हे कि उन्होने अपनी प्रतिज्ञानुसार आपकी पूजा नहीं की ओर आपकी पूजा करने से पहले ही महल से बाहर यहा चली आई। आप महारानी का यह अपराध क्षमा कीजिए। अव महारानी को मैं इसी समय महल भेजे देता हू। भविष्य मे महारानी जव तक उत्सवपूर्वक आपकी पूजा न कर लेगी महल से बाहर न निकलगी। साथ ही मैं भी अपने पर आपकी पूजा का भार लेता हू। इसलिये अव आप कृपा करिये ओर शान्त हो जाइये।

यह कहकर पडिता ने कहा कि–इस प्रकार आप देव की प्रार्थना करिये। मेरा विश्वास है कि आपकी प्रार्थना से देव का प्रकोप शान्त हो जावेगा और महारानी स्वस्थ हो जावेगी। फिर जब महारानी स्वस्थ हो जावे तब उन्हे महल मे भेज दीजिये और आज्ञा दीजिये कि वे उत्साहपूर्वक कामदेव की पूजा करे। साथ ही उत्सव और पूजा की सब व्यवस्था करने एव इस कार्य मे किसी पकार की बाधा न हो आदि बातो के लिये अधिकारियो को भी सूचित कर दीजिये।

पडिता ने जिस तरह से बताया था, राजा ने उसी तरह से हाथ–पाव धोकर कामदेव की प्रार्थना की। राजा द्वारा की गई प्रार्थना समाप्त होते ही पडिता भी अभया को हाथ लगाकर कहने लगी कि–हे कामदेव महाराज, आप महाराजा की प्रार्थना स्वीकार करके महारानी पर से अपना प्रकोप हटा लीजिये। अब महाराजा ने आपकी पूजा का भार अपने पर ले लिया है और ये महारानी की भूल स्वीकार करके आपसे क्षमा प्रार्थना करते हैं, अत आप महारानी की भूल क्षमा कीजिये। महारानी बहुत भोली हैं। इन्हे प्रत्येक बात विस्मृत हो जाया करती हैं और मनुष्य से भूल होना अस्वाभाविक भी नहीं है। आप हम मनुष्यो पर कृपा करने वाले हैं, इसलिये महारानी पर सतुष्ट होइये। अब महारानी बहुत शीघ्र ही द्विगुण उत्साह के साथ आपकी पूजा करेगी और जब तक आपकी पूजा न कर लेगी तब तक पूर्व की प्रतिज्ञानुसार महल से बाहर न निकलेगी।

यह कहकर पडिता ने अभया के शरीर मे लगे हुए अपने हाथ से अभया को सकेत किया। पडिता का सकेत पाकर अभया पडिता की बात समाप्त होते ही उठकर बैठ गई। उसने शरीर से आलस्य तोडकर राजा की ओर देखकर लज्जा का ढोग दिखाया। कपडा तानकर पडी हुई रानी जैसे ही उठकर बैठी वैसे ही पडिता कहने लगी कि–देखिये महाराज, मेरी बात ठीक निकली न? महारानी की यह दशा देव प्रकोप के कारण ही थी। पडिता के साथ ही वहा उपस्थित दूसरी दासिया भी कहने लगी कि–वास्तव मे महारानी देव–प्रकोप से ही पीडित थी। महाराज की प्रार्थना देव ने स्वीकार की और महारानी उठ बैठी यह बहुत प्रसन्नता की बात है। अच्छा हुआ कि इन पडिता को महारानी द्वारा कामदेव की मान की जाने का हाल ज्ञात था जो इन्हे इस समय स्मरण हो आया और महाराजा की प्रार्थना से देव सन्तुष्ट हो गये अन्यथा बडे अनिष्ट की सभावना हो गई थी।

अभया को उठकर वेठी देख दधिवाहन को भी वहुत प्रसन्नता हुई। वह अभया से कहने लगा कि महारानी, तुमने मेरी कुशलता की कामना से देव से प्रार्थना की थी तथा उसके साथ जो प्रतिज्ञा की थी वह प्रतिज्ञा पूरी नहीं की और तुमने प्रतिज्ञानुसार कामदेव की पूजा नही की, इससे पहिले ही महल से बाहर चली आई, इससे देव प्रकोप के कारण आज तुम्हारा जीवन सकट मे पड गया था। कुछ समय पूर्व तुम्हारी जो दशा थी उसे देखकर मेरे हृदय मे बहुत चिन्ता हो गई थी लेकिन प्रसन्नता की बात हे कि पडिता को सब बात मालूम थी तथा इस समय वह बात स्मरण भी हो आई और देव ने भी मेरी प्रार्थना स्वीकार करली। अन्यथा न मालूम क्या होता? देव के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा को इस प्रकार विस्मृत भी न होना चाहिए था, न प्रतिज्ञा पूरी करने मे उपेक्षा ही करनी चाहिए थी।

राजा की बात का उत्तर देने के लिये अभया उठकर खडी हो गई ओर हाथ जोडकर कहने लगी कि—महाराज, आपकी बात सुनकर मुझे यह तो याद आया कि आप जब युद्ध मे पधारे थे तब मैंने कामदेव से आपकी कुशलता के लिए प्रार्थना की थी तथा उसके साथ पूजा की और जब तक पूजा न करलू महल से बाहर न निकलने की प्रतिज्ञा भी की थी लेकिन आपका दर्शन होने पर में की हुई प्रतिज्ञा को भूल गई। फिर क्या हुआ इसका मुझे कुछ भी पता नही है।

पडिता—पता भी कहा से होता? आप अपने वश मे ही न थी, आपके शरीर और मन पर तो देव का आधिपत्य था ऐसी दशा मे आपको क्या पता कि कुछ देर पहले आपकी क्या दशा थी?

राजा—अभी तुम्हारी क्या दशा थी ओर तुम्हारे जीवन के विपय मे किस प्रकार की आशका उत्पन्न हो गई थी आदि बाते पडिता से पूछ लेना। अब इस समय तो तुम महल को जाओ ओर भविष्य मे जब तक कामदेव की उत्सव पूर्वक पूजा न कर लो, तब तक महल से बाहर न निकलना। साथ ही उत्सवपूर्वक कामदेव की पूजा भी कर दो। अब इस कार्य मे विलम्ब न होना चाहिए। इसके लिए जो व्यय या सुविधा चाहिए मुझसे कहो।

पडिता व्यय तो साधारण ही हे कुछ विशेष नही हे। वह तो जेसी—जैसी आवश्यकता होगी हम कोष से लेती जावेगी। आप कोपाध्यक्ष को यह स्वीकृति दे दीजिये कि वह आवश्यकतानुसार खर्च देता जावे। साथ ही किसी कर्मचारी को यह आज्ञा दीजिये वह आवश्यकतानुसार हम जिरा

तरह कहे उस तरह सब व्यवस्था कर दे और पहरेदारो को भी यह आज्ञा दे दीजिये कि वे उत्सव के कारण होने बाले बार–बार के आवागमनादि मे किसी पकार की बाधा न पहुचावे।

राजा यह सब हो जावेगा अब तुम महारानी को महल मे ले जाओ।

अभया पडिता और दासिया उत्सव से लौटकर महल मे आई। उधर राजा ने सबधित कर्मचारियो को कामदेव की पूजा और उत्सव सबधी सब व्यवस्था करने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार पडिता ने अभया की प्रतिज्ञा पूरी कराने और सुदर्शन को फसाने के लिए रचे जाने वाले षड्यन्त्र की मजबूत नीव डाल दी। महल मे आकर पसन्न होती हुई पडिता अभया से कहने लगी कि–लो आपका कार्य जिस तरह हो सकता है उसका प्रबन्ध मैंने कर लिया। अब आपका कार्य सरलता से हो जावेगा। अभया ने पूछा कि–मेरी समझ मे नही आया कि तुमने यह सब किस उद्देश्य से किया। मेरे शरीर मे देव लाने और महाराजा से कामदेव की पूजा एव उत्सव करने की स्वीकृति का क्या रहस्य है?

पडिता–महारानी आप त्रिया–चरित्र जानती तो हैं, लेकिन अभी पूरी तरह नहीं जानती। जाने भी कहा से? आखिर तो मेरे ही सामने जन्मी हैं ओर मैंने ही आपको दूध पिलाकर बडी की है। मैंने जो कुछ भी किया–कराया है, वह सुदर्शन को आपके पास तक लाने के लिए हीं। अब सुदर्शन को आप तक लाना मेरे लिए कुछ भी कठिन नहीं है। मैं सुदर्शन को आपके पास ला दू, फिर तो आप उसको अपना बना लोगी न?

अभया–फिर क्या है? फिर तो मैं उसे अपना कर ही लूगी, परन्तु तुम उसको लाओगी किस तरह?

पडिता–कामदेव की पूजा के उपाय से।

अभया–क्या पूजा करके कामदेव को बुलाओगी?

पडिता–कामदेव कहा है और उसको कौन बुला सकता है? मैं तो उसकी पूजा का बहाना करके एक सुदर्शन की आकार की मूर्ति बनाऊगी जिसे दासियो की सहायता से बाहर ले जाऊगी और भीतर लाऊगी। बस इसी आवागमन मे मैं सुदर्शन को आपके महल मे ले आऊगी। आप इस विषयक ज्यादा विचार मत करो मैं सब ठीक कर लूगी।

पडिता का कथन सुनकर अभया बहुत प्रसन्न हुई। उसने पेट भरकर पडिता की प्रशसा की उसका गुणगान किया और उत्साह बढाने के लिए उसको पुरस्कार देकर आगे के लिए भी आश्वासन दिया।

राजमहल में सुदर्शन

दुष्ट लोग अपना दुष्टतापूर्ण कार्य पूरा करने मे न्याय–अन्याय उचित–अनुचित, समय–असमय, जाति–अजाति या स्थान–अस्थान आदि किसी भी बात का विचार नही करते। उनका लक्ष्य तो अपना कार्य सम्पादन करना ही रहता है, फिर वह कार्य कैसा ही नीच क्यो न हो और किसी भी रीति से किसी के भी साथ अथवा किसी भी स्थान पर क्यो न होता हो? यह न्याय है या अन्याय, उचित है या अनुचित, इस कार्य के करने का यह समय है या नहीं, यह व्यक्ति अपनाने अथवा त्यागने योग्य है या नहीं और यह व्यक्ति इस कार्य को करने योग्य है या नही आदि बातो की वे लोग किंचित भी अपेक्षा नहीं करते। दुष्ट लोगो का यह स्वभाव ही होता है। साधारणतया यह नीति है कि धर्म स्थान मे बैठे हुए किसी व्यक्ति को धर्म–स्थान से हटने के लिए कहा भी नही जाता न हटाया ही जाता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति धर्म कार्य मे सलग्न होता है तो उससे धर्म कार्य भी नहीं छुडाया जाता है, न उसे किसी पाप–कार्य मे प्रवृत्त करने की चेष्टा ही की जाती है। बल्कि इस बात की सावधानी रखी जाती है कि इस धर्म स्थान मे बैठे हुए को किसी प्रकार की असुविधा न हो अथवा इसके धर्म कार्य मे किसी प्रकार का विघ्न न हो। लेकिन नीति का बन्धन तो सज्जनो के लिए है दुर्जनो के लिए न तो नीति का बन्धन है और न अनीति का। उनके लिए तो वही नीति धर्म या न्याय है, जिसके द्वारा उनकी इच्छानुसार कार्य बनता हो। बल्कि वे लोग अपना कार्य साधने के लिए वह समय उपयुक्त समझते हैं जब कार्य से सबधित व्यक्ति धर्मस्थान पर बैठा हो या धर्म कार्य मे लगा हो। उदाहरण के लिए गजसुकुमार मुनि ने पहले तो सोमल की कोई हानि की ही नहीं थी। कदाचित् उनके द्वारा सोमल की कोई हानि हुई थी और सोमल उनको शत्रु मानता था, तब भी उसके लिए यह उचित न था कि वह ध्यान मे तल्लीन मुनि के सिर पर आग रखता। लेकिन ये मुनि हैं और ध्यान मे हैं इस बात का विचार दुष्ट–हृदय सोमल क्यो करने लगा था? उसने तो मुनि से वेर लेने के लिए उस अवसर को ही उपयुक्त माना तथा मुनि के सिर पर आग रख दी। इसी प्रकार पडिता ने अभया को यह विश्वास दिलाया था कि में सुदर्शन को महल मे ले आऊगी इस कारण वह सुदर्शन को रानी के महल मे ले जाना चाहती थी, फिर भी उसको अपना यह कार्य धर्मस्थान पर और उस समय न साधना चाहिए था, जब सुदर्शन पोषध मे था और धर्म ध्यान मे लगा हुआ था। परन्तु पडिता ने अपना कार्य साधने के लिए उसी अवसर को उपयुक्त समझा। दुष्ट लोगो द्वारा ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नही हे।

चम्पापुरी मे एक कौमुदी–महोत्सव मनाया जाता था। यह उत्सव स्त्रियो का होता था और उस दिन सब पुरुष नगर से बाहर हो जाते थे। नगर मे कोई भी पुरुष नहीं रहता था, केवल स्त्रिया रह जाती थी। कौमुदी महोत्सव कार्तिक पूर्णिमा पर हुआ करता था। कार्तिकी–पूर्णिमा पर होने वाले कौमुदी–महोत्सव के कुछ दिन पहले ही पडिता ने कामदेव की एक सुन्दर मूर्ति बनवाई। फिर उस मूर्ति का उत्सव करने लगी। उसे दासियो के सिर पर रखवा कर गाजे–बाजे तथा धूमधाम के साथ नगर मे फिराने लगी और फिर महल मे लाने लगी। वह उस मूर्ति को दिन रहे ही महल से बाहर ले जाती और शाम को अन्धेरा हो जाने पर महल मे लाती।

ऐसा करते–करते पडिता को कुछ दिन बीत गये। वह इस बात के प्रयत्न मे रहती थी कि किसी तरह सुदर्शन को इसी उत्सव के बहाने महल मे ले आया जावे लेकिन उसको ऐसा अवसर ही न मिला। अनायास ही कौमुदी–महोत्सव का दिन आया। राजा ने कार्तिक–पूर्णिमा से एक दिन पहले ही नगर मे यह घोषणा करा दी कि कल कौमुदी–महोत्सव का दिन है, अत नगर के सभी पुरुष प्रात काल ही मेरे साथ नगर के बाहर चले। नगर मे कोई भी पुरुष न रहे अन्यथा वह अपराधी माना जावेगा और उसको दण्ड दिया जावेगा।

राजा द्वारा कराई गई यह घोषणा सुदर्शन सेठ ने भी सुनी। राजा की घोषणा सुनकर वह विचारने लगा कि जिन लोगो को उत्सव या राग–रग पसद हैं उनके लिए तो नगर से बाहर जाने और वहा आनन्द मनाने के लिए यह अवसर उपयुक्त है। वे लोग तो ऐसे अवसर की प्रतीक्षा ही करते हैं, लेकिन मेरे लिए तो राजा की आज्ञा मानकर नगर से बाहर जाना हानिप्रद होगा। कल कार्तिक–पूर्णिमा चातुर्मास की अन्तिम पक्षतिथि है। मैं कल पौषधव्रत करना चाहता हू। यदि मै राजा की आज्ञा मानकर नगर से बाहर जाऊगा तो इस लाभ से वचित रह जाऊगा। इसलिए यदि राजा मुझे इस आज्ञा से मुक्त कर दे तो अच्छा हो।

इस प्रकार विचार कर सुदर्शन सेठ राजा दधिवाहन के पास गया। उसने राजा को अभिवादन किया। राजा ने सेठ का आदर करके उससे आने का कारण पूछा। सेठ ने राजा से कहा कि–आपने यह घोषणा कराई हे कि कल कौमुदी–महोत्सव है अत नगर मे कोई पुरुष न रहे। आपकी इस आज्ञा का पालन करना मेरा भी कर्त्तव्य हे लेकिन कल चातुर्मासिक पक्ष–तिथि है। मेरा विचार है कि यदि आपकी स्वीकृति हो ओर आप मुझे इस घोषणा से मुक्त

कर दे तो मैं पौषधव्रत करके धर्माराधन करू। मैं इसी उद्देश्य से आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हू।

पहले के राजा लोग धार्मिक विचार के होते थे और वे धर्म कार्य को महत्त्व भी देते थे। वे धार्मिक कार्य मे बाधा नहीं पहुचाते थे, किन्तु यदि कोई व्यक्ति धर्म कार्य करने के लिए तैयार होता था तो वे उसके मार्ग को ओर सुगम बना देते थे। राजा दधिवाहन महारानी अभया के अधीन तो अवश्य था लेकिन उसकी धर्म भावना नष्ट नही हुई थी। इसलिए वह सुदर्शन की प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा कि—मेरे नगर मे तुम जैसा धार्मिक व्यक्ति है, यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। नगर के और लोग तो मेरी घोषणा से प्रसन्न हुए, परन्तु तुम नगर के बाहर जाकर आमोद—प्रमोद करने की अपेक्षा धर्म कार्य को महत्व देते हो, यह बहुत आनन्द की बात है। मैं तुमको मेरी घोषणा से मुक्त करता हू तथा तुम्हे नगर मे रहने की स्वीकृति देता हू।

राजा की स्वीकृति पाकर सुदर्शन बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने राजा का आभार मानकर उसे धन्यवाद दिया। राजा ने अपनी इस आज्ञा की सूचना अपने अधिकारियो को भी दे दी। जिससे वे नगर मे रहने के कारण सुदर्शन को न सतावे, न उसके धर्म—कार्य मे किसी प्रकार का विघ्न ही डाले।

'महाराज ने सुदर्शन को कल नगर मे रहने की स्वीकृति दी है और कल पुरुषो मे से एक मात्र सुदर्शन ही नगर मे रहकर पौषध करेगा' यह समाचार जानकर पडिता को बहुत प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगी कि कल कार्य साधने का अच्छा अवसर है। नगर मे ओर कोई पुरुष भी न रहेगा और सुदर्शन धर्म—ध्यान करने के लिए एकान्त मे भी बैठेगा। उस समय उसको उठाकर महल मे ले आना बहुत सरल होगा। मैं कल उसे अवश्य ही महल मे ले आऊगी। इस प्रकार के विचार से प्रसन्न होती हुई पडिता अभया के पास गई। उसने अभया से कहा कि—कल आपका कार्य हो जायेगा। मे कल सुदर्शन को आपके पास ले आऊगी और आपसे उनकी एकान्त मे भेट करा दूगी। फिर तो आप उसको अपना बना लोगी? पडिता का कथन सुनकर प्रसन्न होती हुई अभया ने उत्तर दिया कि बस इतना ही तो चाहिये। जब मुझे वह एकात मे मिल जावेगा तब मैं उसको अपना बना ही लूगी। लकिन तुम उसे लाओगी केसे? पडिता ने हस कर उत्तर दिया कि—जब मेने त्रियाचरित्र से महाराजा को भी ठग लिया तब सुदर्शन क्या चीज हे? कहावत भी हे कि—**त्रियाचरित्र पुरुषस्य भाग्य दैवो न जानाति कुतो मनुष्य**। इसक अनुसार जब देव भी त्रियाचरित्र को नही जानता वह भी उसक भुलाव म पड

सकता है तब सुदर्शन की क्या विसात है कि वह मेरे त्रियाचरित्र मे न फसे? महाराज ने कल उसको नगर मे रहने की स्वीकृति दी है और कल वह नगर मे ही एकान्त मे बैठकर पौषध करेगा। उस समय मैं उसे उठा लाऊगी।

अभया—क्या धर्म कार्य मे बैठे हुए को भी उठा लाओगी?

पडिता—कार्य साधने के समय ऐसी बाते नही देखी जाती, इसके लिए तो अवसर देखा जाता है। यदि धर्म—कर्म का विचार किया जाने लगे, तब तो यह कार्य हो ही नही सकता। इसलिए इन बातो का विचार करने की आवश्यकता नही है। आप तो अपना कार्य करने के लिए तैयार रहिये, मै अपना काम कर दूगी।

यह कहकर पडिता हसने लगी। अभया भी और कुछ नही बोली। वह इस विचार से प्रसन्न हुई कि मेरी सखी कपिला जिसके साथ सभोग—सहवास करने के लिए लालायित ही बनी रही और अपने प्रयत्न मे असफल रही, उस सुदर्शन के साथ कल मैं आनन्दपूर्वक सभोग करूगी और फिर कपिला से गर्वपूर्वक यह कहूगी कि—देख मैं त्रियाचरित्र मे किस प्रकार कुशल हू तथा जिससे तू हार गई, उसे मैंने किस प्रकार अपने जाल मे फसाकर जीत लिया।

दूसरे दिन सबेरे ही राजा तथा नगर के सब पुरुष नगर से बाहर चले गये। नगर मे राजमहल के पहरेदारो के सिवाय केवल स्त्रिया ही स्त्रिया रह गईं और सुदर्शन रह गया। सुदर्शन सबेरे उठकर पौषधशाला मे गया। उसने अपने हाथो से पौषधशाला को पूजा यानि बुहार कर साफ किया। फिर घास का सथारा बिछाकर, पौषधव्रत धारण करके उस पर बैठ गया और धर्मध्यान करने लगा। दूसरी ओर पडिता ने सध्या—समय से कुछ पहले ही कामदेव की मूर्ति को वैसे ही वस्त्र पहनाये जैसे वस्त्र पौषधव्रत के समय पहने जाते हैं अथवा जैसे वस्त्र उस दिन सुदर्शन ने धारण किये थे। पडिता मूर्ति को प्राय नित्य ही उसी प्रकार के वस्त्र पहनाया करती जैसे वस्त्र सुदर्शन पहना करता था। उसका उद्देश्य यही था कि अवसर पाकर अपने कौशल के बल से मूर्ति के बदले सुदर्शन को महल मे ले आया जावे। इसलिए उस दिन कामदेव की मूर्ति को भी वसे ही वस्त्र पहनाये जैसे वस्त्र धारण करके सुदर्शन पौषधव्रत मे धर्मध्यान करने के लिए बैठा था। कामदेव की मूर्ति को पौषध मे बेठे हुए सुदर्शन के वस्त्र की तरह के वस्त्र पहना कर पडिता अपनी विश्वस्त सहेलियो के सिर पर वह मूर्ति रखवा सदा से कुछ अधिक राग—रग करती हुई गाजे बाजे के साथ महल से बाहर नगर मे निकली। चलते समय उसने अभया से

कहा कि आप तैयार रहिये, मैं अभी थोडी ही देर मे सुदर्शन को लेकर आती हू। अभया ने उत्तर दिया कि–तुम अपना काम करो। मुझे तो तैयार ही समझो।

गाजे–बाजे के साथ दासियो सहित पडिता कामदेव की मूर्ति को सिर पर रखवाकर नगर मे चली। वह नगर के प्रमुख बाजारो मे मूर्ति को घुमाकर, जब अन्धेरा हो गया तब जुलूस को लिए उस ओर गई, जिस ओर वह पौषधशाला थी जिसमे सुदर्शन पोषध करके बेठा था। उसने पहले से ही यह पता लगा लिया था कि सुदर्शन किस पोषधशाला मे और किस स्थान पर बैठा है तथा किस मार्ग से उसके समीप पहुचा जा सकता है। इसलिए पौषधशाला के समीप पहुच कर उसने साथ की दासियो से कहा कि–आज इस उत्सव का अतिम दिन है, इसलिए अमुक बहन ने इन कामदेव महाराज की पूजा करने को इन्हे स्वय के यहा आमन्त्रित किया है। तुम सब यहीं ठहरी रहो मैं अभी उनके यहा से इन कामदेव महाराज की पूजा कराकर लौट आती हू। यदि अपन सब वहा चलेगी तो वे अधिक रोकेगी और इस कारण अधिक विलम्ब होगा। आज वैसे भी विलम्ब हो गया है। अधिक विलम्ब करना ठीक नहीं, मैं शीघ्रता से इस देव महाराज को वापस लिये आती हू और फिर अपन सब महल को लौट चलेगी।

यह कहकर पडिता ने साथ की सब दासियो को वही छोड दिया और स्वय कामदेव की मूर्ति को उन दासियो के सिर पर रखवाकर चली जिन्हे उसने पहले से ही प्रलोभन दे रखा था और जो उसकी विश्वस्त साथिनिया थीं। वह मूर्ति को सहेलियो के सिर पर रखवाये हुई पौषधशाला मे गई। पौषधशाला मे सुदर्शन सेठ अपने सथारे पर बैठा हुआ धर्मचितन कर रहा था। उसको इस बात की आशका भी न थी कि यहा पोषधशाला मे कोई स्त्री आवेगी या कोई घटना घटेगी।

पडिता ने सुदर्शन सेठ से कहा कि–सेठ आज तुमने जो नियम लिये हैं, तुम अपने उन नियमो पर दृढ रहना। हम कुछ भी करे तुम बोलना मत अन्यथा तुम्हारा नियम भग हो जावेगा। सेठ से इस तरह कहकर पडिता ने साथ की दासियो के सिर पर से कामदेव की मूर्ति उतरवाई और मूर्ति को वहीं किसी अप्रसिद्ध स्थान मे फैंककर सुदर्शन को उठाकर मूर्ति के स्थान पर बेठा लिया और मूर्ति की तरह सिर पर रखवाकर चल दी। जहा वह साथ की स्त्रियो को छोड गई थी, उस स्थान पर आकर पडिता उन सबसे कहने लगी कि–चलो जल्दी चलो। बहुत देर हो गई हे। आज उत्सव तथा पूजा का

अन्तिम दिन है और महारानी को कामदेव की एकान्त पूजा भी करनी है। इसलिए जल्दी चलो।

दासियो के सिर पर सुदर्शन को बिठाये हुई पडिता महल मे आई। पडिता और उसकी साथिनियो का इस तरह का आवागमन प्राय नित्य का ही था, इसलिए महल के पहरेदारो ने कोई रोक-टोक नही की, न इस ओर ध्यान ही दिया कि दासियो के सिर पर कोई मनुष्य है या मूर्ति? ध्यानस्थ आदमी मूर्ति की ही तरह का जान पडता है तथा पडिता चालाक थी, इसलिए उसने पहरे वालो को बातो के भुलावे मे ही डाल दिया। इस तरह वह सुदर्शन को प्रधान द्वार से ही महल मे ले गई। अभया की सम्मति से उसने महल मे एकान्त स्थान का प्रबन्ध पहले से ही कर रखा था। उसने 'अब महारानी कामदेव की एकान्त पूजा करेगी, वहा कोई न चलो' कहकर साथ की स्त्रियो को उस स्थान के बाहर छोड दिया और आप अपनी विश्वस्त साथिनियो के सिर पर सुदर्शन को बिठाये हुई उस एकान्त स्थान मे गई, जो पहले से ही नियत था। वहा उसने अपनी साथिनियो के सिर पर से सुदर्शन को उतरवाकर नीचे बैठा दिया और फिर किवाड बन्द कर दिये। उस स्थान से बाहर निकलकर पडिता ने अपनी साथिनियो को भी विदा कर दिया। यह करके वह अभया के पास पहुची। उसने अभया से प्रसन्न होती हुई कहा कि-लो, मैंने अपना कार्य पूरा कर दिया। हरिण को जाल मे फसा लिया है, अब आप जाकर उसे अपने नयनबाण का लक्ष्य बनाकर कार्य पूरा करो, देखना, कही असफल मत रहना नही तो सब प्रयत्न भी व्यर्थ होगा, और कपिला से जो बाजी लगाई है उसके अनुसार आपको मरना पडेगा। जाओ विलम्ब मत करो। मै आपके इच्छित सेठ को नियत स्थान पर बैठा आई हू। आप कहती थी कि सुदर्शन को महल मे कैसे लाओगी, परन्तु ले आई या नहीं। सुदर्शन तो क्या मै अपने कौशल से बडे-बडे ऋषि, मुनि और देव, इन्द्र को भी तुम्हारे अधीन कर सकती हू।

पडिता अभया की धाय थी। उसने दूध पिलाकर और पाल-पोषकर अभया को बडी की थी। इस तरह वह एक प्रकार से अभया की माता थी इसलिए उसका कर्त्तव्य तो यही था कि वह अभया को सच्चरित्रा रखती ऐसी बात का प्रयत्न करती और अभया के मन मे जो दुर्भावना उत्पन्न हुई थी उसे अपने उपदेश से मिटाती। लेकिन स्वार्थ मे पडी हुई पडिता ने लोभवश अपने कर्त्तव्य की किचित भी अपेक्षा नही की। बल्कि उसने दुराचार के लिए अभया की और भी सहायता की। जब किसी व्यक्ति मे स्वार्थ घुस जाता है और

स्वार्थ का आधिक्य होता है, तब ऐसा होना स्वाभाविक ही है। आज भी ऐसी अनेक स्त्रिया होगी, जो अपना मातृ–कर्त्तव्य भूलकर पुत्री या पुत्र को दुराचार मे प्रवृत्त करती हो या सदाचार से दूर पटकती हो।

सुदर्शन को पडिता महल मे ले आई हे, यह जानकर अभया को बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने पडिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उसकी प्रशसा करके उसे पुरस्कार दिया। वह मजन–अजन करके ओर वस्त्राभूषण पहन कर पहले से ही इस बात की प्रतीक्षा मे बैठी हुई थी कि पडिता कब लौटकर यह कहे कि 'सुदर्शन महल मे आ गया है' और मैं जाकर सुदर्शन के शरीर का आलिगन करू। इसलिए वह पडिता को पुरस्कार देकर सुदर्शन के समीप चली।

कठिन कसौटी

व्रत–नियम का पालन करना उस समय तक तो सरल है, जब तक किसी प्रकार के परिषह नही होते, लेकिन परिषह होने पर दुर्बल–हृदय लोगो के लिए व्रत–नियमो पर स्थिर रहना बहुत कठिन है। जिसमे दृढता नहीं है और जिनकी आत्मा परिषह सहने की क्षमता नहीं रखती वे लोग परिषह के कारण व्रत–नियम से पतित हो ही जाते हैं। उस समय उनके लिए व्रत–नियम पर स्थिर रहना कठिन है। इसीलिए परिषह को व्रत–नियम की कसौटी कहा जाता है। परिषहो मे से प्रतिकूल परिषह सहकर व्रत–नियमो पर स्थिर रहने वाले तो कई निकल भी सकते हैं लेकिन अनुकूल परिषह के कारण व्रत–नियम से पतित न होने वाले लोग बहुत कम निकलेगे। प्रतिकूल परिषह से मतलब है शारीरिक कष्ट, भूख–प्यास चलने–फिरने शीतताप के कष्ट आदि। और अनुकूल परिषह से मतलब हे, धन, स्त्री मान, प्रतिष्ठा खान–पान आदि का प्रलोभन। इन दोनो प्रकार के परिषहो मे से प्रतिकूल परिषह उपस्थित होने पर व्रत–नियम पर स्थिर रहना उतना कठिन नही है जितना कठिन अनुकूल परिषह होने पर व्रत–नियम को सुरक्षित रखना हे। लेकिन ऐसे अनेक लोग हुए हैं और होगे जो अनुकूल परिषह होने पर भी अपने व्रत–नियम पर दृढ रहे। ससार त्यागी साधुओ मे ही नहीं किन्तु ससार–व्यवहार मे रहने वाले गृहस्थो मे भी ऐसे अनेक हुए हैं जो अनुकूल परिषह होने पर भी अपने व्रत–नियम पर दृढ रहे। इतिहास प्रसिद्ध दुर्गादास राठौड औरगजेब के वदीखाने मे कैदी था। औरगजेव की बेगम गुलेनार बहुत सुन्दरी थी। वह ऐसी सुन्दरी थी कि कठोर हृदय औरगजेब भी उसकी सुन्दरता के कारण उसका

दास था और उसके इशारे पर काम करता था। ऐसी सुन्दरी गुलेनार रात के समय जब दुर्गादास के पास गई और उसने दुर्गादास से कहा कि–यदि तुम मुझे अपनी पेयसी बनालो तो मैं तुम्हे बन्दीखाने से छुडाकर मृत्यु से बचा लूगी। बल्कि औरगजेब को मारकर तुम्हे भारत का बादशाह बना दूगी। एक सुन्दरी का मिलना जीवन बचना और ऐसे राष्ट्र का स्वामित्व मिलना, किसको प्रलोभन मे न डालेगा? ऐसे बडे प्रलोभन को ठुकरा कर व्रत–नियम पर स्थिर रहना बहुत ही कठिन है, लेकिन दुर्गादास ने इस प्रलोभन को ठुकरा दिया। उसने प्राण देना तो सहर्ष स्वीकार किया, किन्तु उसके साथ दुराचार मे प्रवृत्त होना स्वीकार नही किया। यह बात बहुत पुरानी भी नही है, किन्तु कुछ ही सौ वर्ष की बात है। उस समय भारत मे मुसलमानी राज्य था और इस कारण भारत ऐयाशी के चगुल मे बहुत कुछ फस चुका था। उस समय भी जब भारत मे ऐसा पुरुष निकला तो ढाई हजार वर्ष पहले–जब कि भारत के लोग दुराचार को प्राय जानते ही न थे किन्तु महापाप मानते थे, उस समय–यदि ऐसे अनेक गृहस्थ रहे हो–जो इस प्रकार के अनुकूल परिषह होने पर भी अपने व्रत–नियम पर दृढ रहे तो क्या आश्चर्य है? ऐसे अनेक लोगो मे से सुदर्शन अनुकूल और प्रतिकूल दोनो प्रकार के परिषह सहकर भी अपने व्रत नियम पर किस प्रकार दृढ रहा, यह बताया जाता है।

सुदर्शन पौषधशाला मे अकेला धर्म ध्यान मे निमग्न बैठा हुआ था। उसने योग्य स्थान और समय समझ कर कुछ मर्यादित कायोत्सर्ग किया था। उसको इस बात की किचित् भी आशका न थी कि यहा कोई आयेगा और मुझे उठा ले जावेगा। सहसा पडिता और उसकी साथिनियो ने सुदर्शन को घेर लिया तथा उसे उठाकर महल मे ले आई। यह सब होने पर भी सुदर्शन मौन रहा कुछ भी नहीं बोला। वह सोचता था कि मैंने कुछ समय तक के लिये इस शरीर का उत्सर्ग कर दिया है, इससे ममत्व त्याग दिया है इसलिये इस शरीर का कोई कुछ भी करे मुझे अपने आत्मा को धर्म ध्यान से विलग न होने देना चाहिये। इसके सिवा कायोत्सर्ग करना उपसर्गो को आमन्त्रित करने के लिये ही है। जब मैंने उपसर्गो को आमन्त्रित किया है तब मुझे अनुकूल या प्रतिकूल जो भी उपसर्ग आए उन्हे सहर्ष सहना चाहिए, घबराना या भय न खाना चाहिये। ये इस शरीर को उठाकर ले जाती हैं ज्यादा से ज्यादा इसे नष्ट कर डालेगी। इससे अधिक तो कुछ कर नहीं सकती और शरीर का मैं पहिले ही उत्सर्ग कर चुका हू। फिर इनके इस कार्य से मेरी क्या हानि है?

इस प्रकार सोचकर सुदर्शन मोन ही रहा यदि वह थोडा भी बोलता या किसी प्रकार की चेष्टा करता तो उस दशा मे पडिता या उसकी दासियो का यह साहस नही हो सकता था कि वे उसे उठाकर ले जातीं। कम से कम उन्हे लोकिक अपवाद का भय तो होता ही ओर इस कारण वे सुदर्शन को न ले जा सकती। इसी प्रकार यदि सुदर्शन बाजार मे या महल के द्वार पर भी बोल जाता तो उस दशा मे भी पहरेदार उसकी सहायता करते ओर उसे महल मे न ले जाने देते। लेकिन वह तो पहले ही ऐसा निश्चय करके बेठा था कि इस शरीर का कोई कुछ भी करे में उसकी रक्षा का प्रयत्न न करूगा न इसकी रक्षा के लिये किसी से सहायता मागूगा। इस निश्चय के कारण ही वह कुछ भी नही बोला न दासियो या पडिता से ही यह कहा कि—तुम मुझे कहा और क्यो ले जाती हो? वह तो दासियो के सिर पर भी उसी प्रकार धर्म ध्यान मे मग्न बेठा रहा ओर महल मे भी वैसे ही बैठा रहा जैसा पौषधशाला मे बैठा था। उसके समीप पोषधशाला ओर महल अथवा घास के सथारे ओर दासियो के सिर मे कोई अन्तर न था?

पडिता ओर उसकी सहेलिया सुदर्शन सेठ को राजमहल के सजे हुए एकान्त भाग मे जो अभया की सम्मति से पहले से ही नियत था बैठाकर और बाहर से किवाड बन्द करके चली गईं। इस तरह की घटना के कारण मनुष्य के हृदय मे अनेक प्रश्न और बहुतसी शकाए उत्पन्न हो सकती हैं। यह विचार हो ही आता है कि में यहा किस उद्देश्य से लाया गया हू ओर मुझे क्यो बैठाया गया हे? इसी प्रकार यह भय या आशका होना भी स्वाभाविक हे कि यहा मुझ पर किसी प्रकार का अभियोग न लगा दिया जावे ओर में किसी षड्‌यन्त्र का शिकार न बन जाऊ लेकिन सुदर्शन के मन मे न तो किसी प्रकार का कोई प्रश्न ही पेदा हुआ, न कोई भय ही। वह तो पोषधशाला की भाति धर्म चिन्तवन ही करता रहा।

जिस स्थान पर सुदर्शन को पडिता बेठा गई थी कुछ ही देर बाद उस स्थान का किवाड खुला ओर वस्त्राभूषण से सुसज्ज सुन्दरी अभया सुदर्शन के सामने उपस्थित हुई। सुदर्शन को देखकर उसके हृदय मे एक दूषित प्रेम की लहर दोड गई। वह गद्‌गद् हो उठी फिर भी त्रियाचरित्र कुशल होने के कारण उसने आश्चर्य ओर अनभिज्ञता का भाव दर्शा कर कहा, हैं! यह कोन है, जो रात के समय यहा छिपकर बैठा हे? तुम कोन हो? अरे यह तो बोलता भी नहीं है। इसकी आकृति से तो जान पडता हे कि यह नगरसेठ सुदर्शन है। मैंने नगरसेठ सुदर्शन की जैसी आकृति सुन रखी हे इसकी

आकृति भी वैसी ही है। हो सकता है कि तुम नगरसेठ ही होओ, लेकिन इस समय यहा कैसे आये? तुमको तो महाराज ने धर्म ध्यान के लिये नगर मे रहने की स्वीकृति दी थी फिर तुम धर्म ध्यान न करके यहा कैसे और किस इच्छा से आये हो? बोलो जल्दी बोलो नही तो अभी पहरेदारो को बुलाकर तुम्हे पकडवाये देती हू। यदि तुम ठीक–ठीक यह सब बात मुझ से कह दोगे, तब तो मैं तुम पर पसन्न होऊगी और तुम्हे क्षमा भी कर दूगी, अन्यथा भारी से भारी दड दूगी।

इस कथन से अभया का यह उद्देश्य था कि सुदर्शन भयभीत हो जायेगा और फिर प्राणो के भय से, मैं जैसा कहूगी वैसा ही करेगा। लेकिन अभया के यह कहने पर सुदर्शन मौन ही बैठा रहा, कुछ भी नहीं बोला। जैसे उसके कानो मे अभया की बात पडी ही न हो।

सुदर्शन को मौन देखकर अभया कहने लगी कि–क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं कौन हूं? मैं यहा की महारानी हू। मैं जो चाहू वह कर सकती हू। ऐसा होते हुए भी मैं तुमको बोलने के लिए कहती हू, लेकिन तुम बोलते तक नही। तुम मे ऐसी घृष्टता है। यदि तुम्हारे स्थान पर और कोई होता तो मै उसे मृत्यु दड दिया जाने के लिये कभी से सिपाहियो के हवाले कर चुकी होती लेकिन तुम नगरसेठ हो और सच्ची बात तो यह है कि तुम्हारे प्रति मेरे हृदय मे प्रेम है इसी से मैंने तुम्हारे साथ कोई कडा व्यवहार नही किया। तुम मेरे महल मे आये इस तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा करती हू और इसका एकमात्र कारण यही है कि मैं तुम्हें चाहती हू। तुम्हारे प्रति मुझे अनुराग है। इसलिये अब तुम निर्भय होकर बोलो उठो और मेरे साथ दाम्पत्य सुख भोगो। मेरी और तुम्हारी जोडी भी कैसी अच्छी है। जैसी सुन्दरी मैं हू वैसे ही सुन्दर तुम भी हो। और मै इस राज्य की महारानी हू तो तुम भी नगर सेठ हो। मैं भी युवती हू और तुम भी युवक हो। तुम कल्प वृक्ष के समान हो और मैं अमृत–बेल के समान हू। ऐसी समान जोडी कभी–कभी ही मिला करती है और आज यह सयोग भी अपने सौभाग्य से ही मिला है। यह स्थान एकान्त भी हे सब तरह की भोग–सामग्री से सुसज्जित भी है ओर योगायोग से आज यहा महाराजा भी नही है न कोई दूसरा पुरुष ही है। इसलिये उठो देर न करो इस शुभ सयोग का लाभ लो। मैंने जब से तम्हारे रूप–सौन्दर्य की प्रशसा सुनी है तभी से मेरी इच्छा तुम्हारे साथ प्रेम–सबध करने की थी लेकिन अब तक मेरा और तुम्हारा मिलना नही हुआ। आज इच्छा पूर्ण होने का अवसर आया है। इस अवसर के मिलने मे मेरा भी सद्भाग्य है ओर तुम्हारा भी। मेरा सदभाग्य तो इससे है कि मेरी दीर्घकाल की इच्छा पूर्ण होगी

और तुम्हारा सद्भाग्य इससे है, कि तुमको मुझ ऐसी सुन्दरी और एक महाराजा की महारानी अनायास ही प्राप्त हो रही है तथा तुमसे प्रेम याचना कर रही है। ऐसे अवसर पर विलम्ब अवाछनीय है, इसलिये प्रेम से बोलो। किसी प्रकार का भय न करो।

अभया की बातो को सुनकर भी सुदर्शन पूर्ववत् मौन ही रहा कुछ नही बोला। वह अभया की बातो से समझ गया कि मुझे यहा किस उद्देश्य से लाया गया हे, लेकिन उसका तो निश्चय ही था कि चाहे प्राण भी जावे तब भी मैं परदारगामी नहीं बन सकता। इसलिये अभया की बातो का सुदर्शन पर कोई प्रभाव नही हुआ। वह तो अभया की बातो को सुनकर यही सोचता था कि काम के प्रभाव से यह माता नीति धर्म को किस प्रकार भूल रही है। राजा की पत्नी होने के कारण यह प्रजा की माता है ओर मैं भी इसकी प्रजा मे का एक व्यक्ति हू इसलिए मेरी भी माता हे, लेकिन कामान्ध होने के कारण यह माता इस सबध को भूल रही हे ओर अपने पुत्र के साथ व्यभिचार करना चाहती है तथा इसलिये कपटपूर्ण बाते कर रही है। इसने पहिले तो इस प्रकार की अनभिज्ञता प्रकट की कि जेसे मेरे को यहा लाया जाने का हाल यह जानती ही नही हो। परन्तु धीरे–धीरे यह स्वय ही सब बाते खोल रही है। इसी प्रकार यह स्वय अमृत बेल बनकर मुझे कल्पवृक्ष बनाना चाहती हे ओर परिणाम निकालना चाहती हे–विष। एक ओर जिसे अमृतबेल ओर कल्पवृक्ष कहती है, दूसरी ओर उसी से भयकर पाप रूपी विष पैदा करना चाहती है यह इसका कैसा अज्ञान है? यह तो काम से अन्धी बनकर इस तरह के अज्ञान मे पड रही हे, परन्तु मुझे तो अपने ओर इस माता के सबध तथा स्वय के व्रत–नियमो का ध्यान रखना ही चाहिये। इसकी बातो मे न फसकर सबध और व्रत–नियमो का पालन करना ही चाहिये।

अभया के इतना कहने पर भी जब सुदर्शन कुछ नही बोला किन्तु पहिले की तरह स्थिर बेठा रहा, तब अभया को कुछ निराशा हुई। वह सोचने लगी कि इसके सामने तो मेरा सब प्रयत्न निष्फल ही रहा। यह तो बोलता भी नहीं। ओर मेरी बातो को सुनकर भी इस तरह बेठा हे जेसे पत्थर का बना हुआ हो। यह बनिया है। बनिया डरता भी ज्यादा हे ओर लोभ मे भी ज्यादा फसता है। इसलिये इसको बडे से बडा भय भी दिखाना चाहिये ओर प्रलोभन भी। सम्भव है कि यह इस उपाय से मेरा कहना मानने को तेयार हा जावे लेकिन भय देने से पहले प्रलोभन देना अच्छा होगा। यदि यह प्रलाभन म पडकर मेरा कहना मानेगा तो उस दशा मे मेरे साथ आनन्दपूर्वक दाम्पत्य

व्यवहार करेगा और भय से मेरा कहना मानने पर इसका हृदय सकुचित रहेगा, इसमे प्रसन्नता न रहेगी।

इस प्रकार विचार कर अभया सुदर्शन को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये फिर पयत्न करने लगी। वह हाव–भाव दिखाती हुई मधुर और नम्र शब्दो मे कहने लगी कि–पिय सुदर्शन! मैं तुम्हे बुद्धिमान् समझती थी और सारा नगर ऐसा ही मानता है कि तुम बुद्धिमान् हो, लेकिन जान पडता है कि इस समय तुम्हारी बुद्धि कुठित हो गई है। इसी से तुम मेरे कथन को सुनकर भी चुपचाप बैठे हो। मेरे लिये इतना भी नही सोचते कि यह कौन है? मै इस राज्य की एक मात्र स्वामिनी हू। महाराजा मेरे हाथ मे हैं। यदि मैं चाहू तो सकेत मात्र से किसी कगाल को धन–सम्पन्न बना सकती हू और धनवान को कगाल बनाकर घर–घर भीख मागने योग्य कर सकती हू। तुम इतना तो सोचो कि जब मै तुम्हारे साथ प्रेम सबध जोड कर तुम्हे अपना बना रही हू और स्वय तुम्हारी बन रही हू तब तुम्हारे लिए किस बात की कमी रह सकती है। मै राज्य के अच्छे–अच्छे रत्न तुम्हे प्राप्त करा दूगी, तुम्हारी प्रतिष्ठा अधिक बढा दूगी इतना ही नही किन्तु तुम चाहोगे तो इस विशाल राज्य का स्वामित्व भी तुम्हे प्राप्त हो सकेगा और तुम यहा के राजा बन सकोगे। महाराजा का जीवन भी मेरे हाथ मे है और मृत्यु भी मेरे हाथ मे है। यदि मैं चाहू तो मै उन्हे एक क्षण मे ही सदा के लिए समाप्त करके उनके स्थान पर तुम्हे राजा बना सकती हू। तुम इन बातो को नहीं समझते और चुपचाप बैठे हो यह तुम्हारी कैसी भूल है। जो हुआ सो हुआ, अब इस तरह की भूल न करो किन्तु उठकर मेरे साथ प्रेम सम्भाषण करो, यह सेज तैयार है, इस पर मेरे साथ आनन्द उडाओ। तुम किसी प्रकार का किचित् भी भय न रखो। यह न सोचो कि महाराजा को यह रहस्य मालूम हो जावेगा तो न मालूम क्या होगा? मेरा तुम्हारा प्रेम सबध मेरे और तुम्हारे सिवा कोई तीसरा किसी भी तरह नही जान सकता। तुम इसी प्रकार से विचार लो कि महल के द्वार पर कैसा कडा पहरा लगा हुआ है। किसी पुरुष का आना तो दूर की बात है कोई

प्रेम सबध को यावज्जीवन निभाऊगी। कभी और किसी भी दशा मे टूटने न दूगी। मैं तुम्हारी आज्ञाकारिणी भी रहूगी। इससे अधिक क्या चाहते हो?

यह कहकर अभया सुदर्शन के सामने हाथ जोडने लगी उससे अनुनय विनय करने लगी और प्रेम सबध की भिक्षा चाहने लगी। अनुनय-विनय करती हुई अभया रोने तक लगी तथा कहने लगी कि मैं तुम्हारे सामने इस प्रकार दीनता दिखाती हू, तुम्हारे सामने हाथ जोडती हू, तुम्हारे लिए सब प्रकार की प्रतिज्ञाए भी करती हू एव तुम्हे अपना सर्वस्व समर्पण करके अपना हृदयेश्वर बनाती हू, फिर भी तुम क्यो नही बोलते? यदि न बोलकर मेरी परीक्षा करना चाहते हो तो इस प्रकार कब तक मेरी परीक्षा करते रहोगे? अब तो परीक्षा की सीमा हो चुकी, इसलिए अब मुझ पर दया करो और मुझे अपनाकर हृदय से लगाओ।

अभया द्वारा कही गई इन सब बातो को सुदर्शन चुपचाप बैठा सुन रहा था और उन पर गइराई से विचार भी करता जा रहा था। वह सोचता था कि यह माता मुझे बुद्धिमान् समझती है, फिर भी मुझ से वह कार्य कराना चाहती है, जिसका करना बुद्धिमानो के लिये सर्वथा अयोग्य है। कोई बुद्धिमान अपनी प्रतिज्ञा भग करने के लिए तैयार नही हो सका। फिर मैं प्रतिज्ञा भग करके बुद्धिहीनता का परिचय कैसे दू? यह अपनी शक्ति का वर्णन करके मुझे सम्पन्न बनाने को कहती है। वेसे तो माता का यह कर्त्तव्य ही है कि वह पुत्र को सब प्रकार से सुखी बनाने का प्रयत्न करे उसे सम्पन्न बनावे, लेकिन यह माता पुत्र के नाते मुझे सम्पन्न नही बनाना चाहती किन्तु दुराचार के बदले सम्पन्न बनाना चाहती हैं परन्तु इस तरह की सम्पन्नता और इस तरह से मिला हुआ धन मेरे किस काम आवेगा? क्या थोडे से धन के लोभ से अथवा राज्य के लोभ से में अपना शील इसके हाथो बेच दू? मुझसे यह कदापि नही हो सकता। यह कहती हे कि में महाराजा को मारकर तुम्हे राजा बना दूगी। ये ऐसा भी कर सकती हे लेकिन इस तरह के राज्य का मे क्या करूगा? और ऐसा राज्य मेरे पास कितने दिन ठहर सकेगा। जिस उद्देश्य से यह अपने पति को मारकर मुझे राज्य देगी क्या उसी उद्देश्य से मुझे मारकर दूसरे को राज्य देने मे सकोच कर सकती हे। इसे जब विवाहित पति को मार डालने मे भी सकोच न होगा तब जारपति को मारने मे सकोच क्यो होगा? यह कहती हे कि मेरा ओर तुम्हारा प्रेम-बधन कोई तीसरा कदापि नही जान सकता लेकिन इसका यह कथन भी झूठा हे। इसने जिनके द्वारा उठवा कर मगवाया हे क्या वे नही जानती कि रानी न दूसरे पुरुष को क्या मगवाया हे?

यह मेरे साथ यावज्जीवन सबध निभाने का कहती है, परन्तु इसको यह विचार नही होता कि मेरे इस कथन पर किसी को कैसे विश्वास होगा? यह तो एक साधारण बुद्धिवाला व्यक्ति भी सोच सकता है कि जो स्त्री सैकडो सहस्रो पुरुषो के सम्मुख विवाहित पति से की गई अपनी प्रतिज्ञा ठुकराने के लिये तैयार है वह जार पति से की गई पतिज्ञा को कब निभा सकती है? इस प्रकार यह माता जो कुछ भी कह रही है, वह स्पष्ट,ही कपट है, झूठ है, प्रपच है, लेकिन इसका विचार इसे नही होता। यह ऐसा ही समझती है कि मै अपनी इन बातो से दूसरे को छल लूगी। यह मेरी माता है और मै इसका पुत्र हू। इस नाते इसके सामने मुझे हाथ जोडने चाहिये और अनुनय–विनय करनी चाहिये लेकिन यह माता काम के वश होकर इस पद्धति से विपरीत कार्य कर रही है। मनुष्य जब कामवश हो जाता है, तब ऐसा होता ही है। यह तो कामवश होकर विपरीत कार्य कर रही है, परन्तु मुझे इसकी तरह का कार्य न करना चाहिये। राजा की पत्नी होने के नाते भी यह मेरी माता है, और मेरी प्रतिज्ञानुसार परदारा होने के कारण भी मेरी माता है। इसलिये मुझे वही कार्य करना चाहिए जो पुत्र के लिये उचित हो।

इस प्रकार सुदर्शन अभया की बातें सुनकर चुपचाप उनकी वास्तविकता पर विचार करता जाता था। अभया के बहुत रोने, अनुनय–विनय करने और प्रलोभन देने पर भी सुदर्शन स्थिर ही बैठा रहा, किंचित् भी विचलित नही हुआ। इतने प्रयत्न पर भी जब अभया सुदर्शन को अपने अनुकूल बनाने मे असफल रही तब वह खीज उठी। उसने निश्चय किया कि अब भय देने के सिवा दूसरा कोई मार्ग इसे वश मे करने का नही है इसलिये भय देने का उपाय ही काम मे लाना चाहिए। इस प्रकार सोचकर उसने अपनी आखे तान ली अपने चेहरे को लाल कर लिया अपने प्रशस्त भाल पर अनेक सल डाल लिये ओर फिर पैर पटक कर हाथ हिलाती हुई सुदर्शन से कहने लगी कि ऐ बनिये मेरे सामने तेरा इतना साहस! तू केसा भी हो फिर भी तू है तो मेरी प्रजा मे का ही व्यक्ति। ऐसा होते हुए भी में तुमसे इस प्रकार अनुनय–विनय कर रही हू, तेरे लिये सब कुछ करने को तैयार हू और स्वय तेरी बन रही हू, लेकिन तू अकडता ही जा रहा है। तुझे इतना अभिमान है। जानता नही कि मै कौन हू? तुझे अपने जीवन की भी कुछ परवाह हे या नही? में सन्तुष्ट होने पर तो अमृतबेल की तरह हू, लेकिन क्रुद्ध होने पर पेनी तलवार के समान हू। मै तेरे को ये अन्तिम निर्णय सुनाये देती हू, कि यदि तू मेरी बात मान लेगा तब तो मै तेरी हू, तेरे लिए सब कुछ करूगी ओर तेरी आज्ञा मे रहूगी लेकिन

तूने यदि बात न मानी तो फिर तुझे जीवन से हाथ धोना पडेगा। साराश यह है कि एक ओर तो मैं हू ओर मेरे साथ ही यह सारा राजपाट तथा तेरा स्वय का जीवन है और दूसरी ओर मृत्यु हे। तू इन दोनो मे से किसको पसन्द करता है, यह सोच ले। यदि मुझको अपनावेगा, तब तो तेरा जीवन भी रहेगा और तू इस राज्य का स्वामी भी बन सकेगा, अन्यथा तुझे शूली द्वारा मरना पडेगा।

क्रोध करती हुई रानी सुदर्शन से इस तरह कह रही थी उस समय वह साकार वर्षाऋतु की तरह बन गई थी। उसके पैर पटकने की आवाज गम्भीर मेघध्वनि के समान थी। उसके रग–बिरगे ओर हिलते हुए वस्त्र बादलो के समान थे। उसका मुख विद्युत के समान था ओर उसके मुख से निकलने वाले शब्द जलधारा की तरह थे। यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह रानी रूपी वर्षाऋतु से अवश्य ही हार जाता, उसके सामने नतमस्तक हो जाता और जैसा वह कहती वैसा ही करना स्वीकार कर लेता लेकिन सुदर्शन सेठ उस मगसेलिया पत्थर के समान था, जिसका वर्णन नन्दीसूत्र मे आया है। इसलिए रानी रूपी वर्षा उसका कुछ न बिगाड सकी न उसे पराजित ही कर सकी।

नन्दी सूत्र मे एक जगह उदाहरण देते हुए यह आया है कि एक बार पुष्पकलावर्त्त नाम के मेघ को यह अभिमान हुआ कि मैं सब शक्ति रखता हू और जो चाहू वह कर सकता हू। में जिस पर भी चाहू, विजय प्राप्त कर सकता हू। पुष्पकलावर्त्त मेघ को इस प्रकार का अहकार हुआ है यह जानकर नारद ने उससे कहा कि–तेरा यह अभिमान व्यर्थ हे। तू एक मगसेलिया (मूग की समानता वाले) पत्थर का भी कुछ नही बिगाड सकता। वह मगसेलिया पत्थर कहता था कि–पुष्पकलावर्त्त मेघ मुझे भी पराजित नही कर सकता तो किसी दूसरे को पराजित करने की तो बात अलग हे। पुष्पकलावर्त्त मेघ व्यर्थ ही अभिमान करता हे। इसलिये यदि तेरे को अपने सामर्थ्य का अभिमान है तो उस मगसेलिया पत्थर को पराजित कर न। तू उसको पराजित कर देगा तब तो तेरा नाम सार्थक है, अन्यथा तेरा अभिमान व्यर्थ हे।

नारद का यह कथन सुनकर पुष्पकलावर्त मेध गर्व करके मगसेलिया पत्थर पर विजय प्राप्त करने के लिये चला। वह सात दिन तक अपनी पूरी शक्ति से मगसेलिया पत्थर पर वरसता रहा लेकिन उसको न भिगो सका। वह तो वेसा का वैसा ही बना रहा। बल्कि उसके ऊपर की तथा आसपास की मिट्टी साफ हो गई जिससे वह पहले की अपेक्षा अधिक चमकने लगा। जब पुष्पकलावर्त्त मेघ थक गया तब नारद ने उससे कहा कि–मेने ठीक कहा था न। तेरा अभिमान व्यर्थ हे। इसलिए अब घर जा ओर व्यर्थ का श्रम न कर। नारद का कथन सुनकर पुष्पकलावर्त्त मेघ लज्जित होता हुआ लोट आया।

यहा इस उदाहरण से यह बताना है कि जिस प्रकार पुष्पकलावर्त मेघ मगसेलिया पत्थर को भिगोने मे असमर्थ रहा उसी पकार रानी रूपी वर्षा भी सुदर्शन को उसके ध्येय से विचलित करने मे असमर्थ रही। उसका सब परिश्रम व्यर्थ रहा।

सुदर्शन ने सोचा कि अब मुझे मौन ही न रहना चाहिए, किन्तु इस माता को समझाने का पयत्न करना चाहिए। अब मेरा ध्यान भी समाप्त हो गया है और इस माता को समझाना मेरा कर्त्तव्य भी है। यह कहती है कि तुम निर्दयी हो इसलिए मुझे अपनी दया का परिचय देना चाहिए। यदि यह माता समझ गई तब तो ठीक ही है अन्यथा इसके कथनानुसार मैं मृत्यु का स्वागत करूगा ही लेकिन मृत्यु के भय से अथवा किसी प्रकार के प्रलोभन से शील भग नही कर सकता।

मुस्कराता हुआ सुदर्शन अभया से कहने लगा कि—माता, आप अपने मातृधर्म को मत ठुकराइये। आप मेरी माता हैं और मै आपका बालक हू। नीतिकार प्रत्येक व्यक्ति के पाच माता मानते हैं। उन पाच माता मे आपकी गणना सर्वपथम है इसलिये आप बडी माता हैं। नीतिकारो ने कहा है कि—

राजपत्नि गुरुपत्नि मित्रपत्नि तथैव च।
पत्निमाता स्वमाता च, पचैतेमातर स्मृता ।।

अर्थात—राजा की स्त्री गुरु की स्त्री मित्र की स्त्री, पत्नी की माता और स्वय की माता नीतिकार ये पाच माता कहते हैं।

जो राजा हे जिसने राज्य—व्यवस्था और प्रजा की रक्षा का भार अपने पर ले रखा हे वह प्रजा के लिये पिता के समान ही है। इसलिये उसकी पत्नी प्रजा के लिये माता के समान है। इसके सिवाय जिस प्रकार प्रजा की रक्षा का प्रयत्न राजा करता हे उसी प्रकार रानी भी प्रजा की रक्षा का प्रयत्न करती हे। जिस प्रकार जन्म देने वाले माता—पिता सन्तान की रक्षा और उसका पालन—पोषण करते हे उसी प्रकार राजा ओर रानी अपनी प्रजा का पालन पोषण करते है। इसलिये राजा और रानी प्रजा के पिता माता हैं। आप भी रानी ह इसलिए मेरी माता हे और में आपकी प्रजा मे का एक व्यक्ति हू। इसलिए आपका पुत्र हू।

दूसरी माता गुरु—पत्नी हे। जिसने अपने को पढाया लिखाया और [illegible] सिखाकर व्यवहार क योग्य बनाया हे वह गुरु हे ओर उसकी पत्नी भी माता है। तीसरी माता मित्र की पत्नी है। जो समय पर सहायता करता है तथा [illegible] बताकर अच्छे काम मे पवृत्त करता ह वह मित्र हे। उस मित्र की

पत्नी भी माता है। चौथी माता पत्नी की माता है। स्वय की जो अर्द्धांगिनी है, उसकी माता अपनी भी माता होती है। इन चार माताओ के सिवाय पाचवीं माता स्वय को जन्म देने वाली है, लेकिन जन्म देने वाली माता की अपेक्षा प्रथम की चार माताओ का विशेष महत्त्व है और सबसे अधिक महत्त्व राजा की पत्नी होने के नाते जो माता है उसका है। इस प्रकार आप मेरी सब माताओ मे बडी हैं। फिर भी आप मुझ बालक पर इस प्रकार क्रुद्ध क्यो हो रही हैं? और मुझसे वह कार्य करने के लिए केसे कह रही हैं, जिसको करने का माता अपने बालक से कदापि नही कह सकती। आप जो कुछ कह रही हैं या करने के लिए तैयार हैं, वह कार्य न तो आप के योग्य है न मेरे योग्य है। आप मुझसे जिस कार्य की आशा करती हैं, वह कार्य मुझ से कदापि नहीं हो सकता, फिर चाहे आप कुछ भी कहे या करे। जिस तरह आपने अपना निश्चय सुना दिया है, उसी तरह में भी अपना निश्चय सुनाये देता हू कि चाहे मेरु कापने लगे, पृथ्वी आधार देना त्याग दे और सूर्य प्रकाश के बदले अधेरा देने लगे, तब भी मैं सदाचार कदापि नही त्याग सकता। मैं परदारा–त्याग की प्रतिज्ञा कभी नही छोड सकता। मैं आपकी उन सब आज्ञाओ का पालन करने को तैयार हू, जो माता–पुत्र के सबध के विरुद्ध न हो लेकिन आपकी उस आज्ञा का पालन कदापि नहीं कर सकता जो इस सबध को तोडने वाली हो। आप मुझसे जो आशा करती हैं या जिस उद्देश्य से आपने मुझे उठवा मगाया हे, आपका वह मनोरथ मेरे द्वारा कदापि पूर्ण नही हो सकता। आप कहती हैं कि तुझे दया नही आती ओर तू निर्दयी है, परन्तु मेरे मे मेरी भी दया हे ओर आपकी भी। इसीसे में आपकी आज्ञा अस्वीकार कर रहा हू। आपने मुझे जो प्रलोभन दिया हे, वह व्यर्थ हे। मे इस तरह के प्रलोभन मे नही पड सकता। यदि शील नष्ट करने के बदले मे मुझे त्रिलोकी का राज्य मिलता हो तो में उसे भी ठुकरा दूगा, लेकिन शील न त्यागूगा। इसलिए आप अपने इस बालक पर तुष्ट होइये ओर अपनी आज्ञा निवारण कर लीजिये। इस पर भी आप अपनी हठ नही छोडना चाहती तो यह आपकी इच्छा परन्तु इस कारण अपनी प्रतिज्ञा नही तोडूगा। आपने मुझ से कहा हे कि एक ओर में हू ओर दूसरी ओर मृत्यु हे दोनो मे से किसी एक को पसन्द कर ले। इसके उत्तर म में यह निवेदन करता हू कि मे आपको माता के सबध से पसन्द करता हू लकिन किसी अनुचित सबध के लिए कदापि पसन्द नही कर सकता। इसके लिए यदि आप मुझे मृत्यु–दण्ड देना चाहती हे तो आप जेसा भी चाहे मुझे दण्ड दे। मेरे शरीर पर आपका पूर्ण अधिकार हे। आप जब मरी माता हें तब आपका

मेरे शरीर पर स्वाभाविक ही सब अधिकार प्राप्त है। आप इस शरीर की चाहे रक्षा करे अथवा इसे नष्ट करे। इसमे मुझे न तो किसी प्रकार की आपति ही हो सकती है न शरीर नष्ट होने से मेरी कोई हानि ही है। मेरी हानि तो शील नष्ट करने पर है जिसे मै किसी भी दशा मे नष्ट नही कर सकता। अन्त मे मै आपसे यही निवेदन करता हू कि आप अपने दूषित विचारो को बदल दे। ऐसा करने मे ही कल्याण है।

सुदर्शन का यह उपदेश–पूर्ण कथन अभया को जरा भी नही रुचा। बल्कि सुदर्शन के कहे 'माता' शब्द सुनकर तो वह और भी क्रुद्ध हो उठी। यद्यपि सुदर्शन ने जो कुछ कहा था वह ठीक ही था, लेकिन जिस प्रकार सन्निपात के रोगी को पथ्य आहार भी अपथ्य आहार का फल देता है, उसी पकार सुदर्शन की बाते भी कामान्ध अभया के लिए क्रोध बढाने का ही कारण हुई। सुदर्शन का कथन समाप्त होते ही वह तमक कर कहने लगी कि–तू माता किसको कहता है? और यह उपदेश किसे देता है? इसका विचार कर। मैं कपिला नही हू, जो तेरे वाग्जाल मे फस जाऊ। तू कपिला के यहा से स्वय को नपुसक कह कर निकल भागा, लेकिन मेरे यहा से किसी भी तरह बचकर नही जा सकता। मेरे यहा से या तो मेरा कहना मानकर घर को जीवित लौट सकता है या बन्दी बनकर शूली लगने के लिए ही जा सकता है। मैं तुमसे एकबार फिर यही कहती हू कि तू मेरा कहना मान ले। इसी मे तेरा कल्याण है। अभी भी कुछ नही बिगडा है। यदि तूने मेरा कहना न माना तो मैं सिपाहियो को बुलाकर अभी तुझे शूली लगवा दूगी। सिपाहियो द्वारा पकडवाने के पश्चात् चाहे तू मेरी बात मानना स्वीकार भी कर लेगा, तब भी मैं तुझे कदापि न छुडाऊगी। फिर तेरे को छुडाकर मै स्वय को महाराजा और जनता की दृष्टि मे कलकित नहीं कर सकती। फिर तो तुझे शूली पर चढना ही होगा। इसलिये समझ और मेरा कहना मान ले।

सुदर्शन के स्थान पर यदि कोई दूसरा पुरुष होता तो सम्भवत वह एकान्त स्थान मे अभया ऐसी सुन्दरी को पाकर स्वय ही पतित हो जाता। कदाचित रानी के रूप–सौन्दर्य और हाव–भाव आदि से बच जाता तो उसके द्वारा दिये गये प्रलोभन मे पडकर पतित हो जाता ओर इस से भी पतित न होता तो मृत्यु के भय के कारण पतित होने से शायद ही बचता। लेकिन सुदर्शन इन सब बातो के होने पर भी दृढ ही बना रहा पतित नही हुआ।

रानी की बातो को सुनकर सुदर्शन ने समझ लिया कि यह [illegible] इसको किसी प्रकार का उपेदश देना या समझाने का यत्न करना

व्यर्थ है। इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहा। कुछ भी नही बोला। रानी बार–बार कहना मानने के लिए कहती थी, लेकिन सुदर्शन कुछ भी उत्तर नहीं देता था। इसलिए वह उत्तरोत्तर उसी प्रकार चिढती जाती थी, जैसे जुआरी आदमी दाव हारकर चिढता जाता है। उसने सुदर्शन को अधीन करने के लिए सब प्रयत्न कर लिए। कोई भी उपाय बाकी न रखा। अपनी शक्ति भर सब प्रयत्न करने पर भी जब सुदर्शन उसके आधीन नहीं हुआ तब उसने सुदर्शन को एक अन्तिम चेतावनी ओर दी। उसने कहा कि अब भी मान जा, नही तो सिपाहियो को बुलाकर उनके हाथ पकडवा दूगी और इसी समय शूली पर चढवा दूगी। जब उसकी इस चेतावनी का भी सुदर्शन पर कोई असर नहीं हुआ और सुदर्शन पूर्व की भाति ही बेठा रहा, तब अभया बाधिन की तरह विफर उठी। उसने अपने हाथो से अपने शरीर के वस्त्र नोच डाले अपने गालो और स्तनो पर नख के चिन्ह बना लिये तथा यह करके भय का घटा बजाकर महल रक्षक सैनिको को आवाज दी। भय का घटा और रानी की आवाज सुनकर पहरे पर खडे हुए सिपाही तत्क्षण उसी स्थान पर दौड आये। उन्होने देखा कि रानी अस्त–व्यस्त दशा मे खडी है और वहीं पर एक आदमी चुपचाप बैठा है। सिपाहियो को देखते ही उन पर रानी क्रोध जताती हुई कहने लगी कि–तुम लोग किस तरह का पहरा देते हो? पहरे पर तुम लोगो के होते हुए भी यह दुष्ट कैसे चला आया? देखा, यह बैठा है। इस दुष्ट को पकडो इसने मेरा सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न किया था। यह मेरे शरीर पर टूट पडा था। इसने मेरे वस्त्र और मेरे शरीर को नोच डाला है। यह तो में वीर पुत्री ओर वीर नारी थी इसीसे इस दुष्ट से अपने सतीत्व की रक्षा कर सकी। यदि कोई दूसरी स्त्री होती तो यह अवश्य ही उसका शील नष्ट कर डालता। जान पडता हे कि इसने आज अपनी दुर्भावना पूर्ण करने का अवसर देखा। इसने महाराजा की अनुपस्थिति से लाभ उठाना चाहा ओर इसलिए यह जार पुरुष किसी प्रकार तुम लोगो की दृष्टि बचाकर महल मे घुस आया। देखो न इसने मेरे शरीर ओर मेरे वस्त्रो की क्या दशा की हे। में बडी कठिनाई से इसके पजे से छूटकर भय का घटा बजा सकी हू, अब विलम्ब क्यो करते हो? इसको पकडो ओर ले जाकर शूली लगा दो। मेंने प्रण किया हे कि इस दुष्ट का जब तक शूली न मिल जावेगी, तब तक मे अन्न–जल ग्रहण न करूगी।

अभया सोचती कि इस दुष्ट को जब शूली लगाई जावगी तभी इस पता लगेगा कि रानी की बात न मानने का क्या फल मिला? मे क्षत्राणी हू। यह अपने मन मे स्वय को वडा शीलवान समझता हे लकिन इसका यह

समझना थोडी ही देर मे मिट जावेगा। इसको यह पता नही है कि रानी ने कपिला से क्या पतिज्ञा की है और वह पतिज्ञा पूर्ण न होने पर रानी को मरना होगा। कपिला से मैने जो प्रतिज्ञा की थी मेरी वह प्रतिज्ञा पूर्ण नही हुई है। मैंने कपिला की तो भर्त्सना की, लेकिन जिस कार्य को न कर सकने के कारण मैंने कपिला की भर्त्सना की थी, वह कार्य मैं स्वय भी न कर सकी। अब मै कपिला को मुह कैसे बताऊगी? लेकिन जब यह शूली चढा दिया जावेगा, तब मै कपिला से कह सकूगी कि इससे ज्यादा और क्या किया जा सकता है? उसने मेरा कहना नहीं माना तो मैने उसे शूली लगवा दी। इस तरह अब पतिज्ञा पूर्ण न होने के कारण मुझे मरना न पडेगा।

रानी का कथन सुनकर पहरे वाले सिपाही रानी द्वारा बताई गई अपनी असावधानी के लिये भयभीत हुए। उन बेचारो को क्या मालूम कि यह पुरुष रानी के लिए ही उठाकर लाया गया था, लेकिन इसने रानी के कथनानुसार कार्य नही किया इसलिये इस पर इस तरह का आरोप लगाया गया है और इसके साथ ही हमे भी असावधान रहने का अपराधी ठहराया जाता है। वे तो यही सोचते थे कि हम लोग इस प्रकार की सावधानी से पहरा दे रहे है फिर भी यह किस ओर से किस तरह घुस आया? हम लोगो की दृष्टि से बचकर यह महल मे घुस आया है और इसने महारानी पर बलात्कार करने की चेष्टा की है इसलिए इसको कठोर से कठोर दण्ड मिलना चाहिये। जिससे भविष्य मे कोई दुष्ट ऐसा करने का साहस न करे।

इस प्रकार सोचते हुए सिपाहियोने रानी की आज्ञानुसार सुदर्शन को पकड लिया और कटुशब्द कहते हुए उससे पूछने लगे कि–तू कौन है तथा यहा किस तरह और क्यो आया? सिपाही लोग सुदर्शन से बार–बार ऐसा ही पूछने लगे लेकिन सुदर्शन पूर्व की भाति मौन ही रहा, कुछ भी नही बोला। तब अभया सिपाहियो पर क्रोध करके उनसे कहने लगी कि–यह बोलेगा क्या? घटनास्थल पर अभियुक्त का पकडा जाना ही अभियोग की साक्षी है इसलिये इसको लेजाकर शूली लगादो।

यह कहकर रानी वहा से चल दी। रानी के जाने के पश्चात् सिपाहियो के सरदार ने सुदर्शन के मुह की ओर देखकर पहचान लिया और वह अपने साथियो से कहने लगा कि–ये तो नगर सेठ हैं। ये यहा कैसे आ गये? कल इन्हे महाराजा ने धर्म ध्यान करने के लिये नगर मे रहने की स्वीकृति दी थी और इस समय इनका वेश भी वही है जो धर्म ध्यान करने के समय का होता है इससे यह तो स्पष्ट है कि ये धर्म–ध्यान करने के लिये

बेठे थे, लेकिन आश्चर्य यह है कि ये यहा केसे बैठे हैं? सारा नगर इनको विश्वस्त तथा सदाचारी मानता है। इसके सदाचार की सब प्रशसा करते हैं। इनको बुरे मार्ग पर जाते हुए न तो देखा ही गया, न सुना ही गया है। ऐसी दशा मे सहसा यह विश्वास नहीं होता कि ये महारानी के साथ व्यभिचार करने के लिये अपनी दृष्टि से बचकर महल मे आये हो। जो आदमी छोटी–छोटी चोरी करता रहता है, उसके लिये तो यह माना भी जा सकता है कि उसने बडी चोरी करने का साहस किया होगा लेकिन जो छोटी चोरी भी नहीं करता है, वह साहस भी बडी चोरी का केसे करेगा? इसके अनुसार ये नगर–सेठ यदि किन्हीं दूसरी स्त्रियो के साथ दुराचार करते होते, तब तो यह भी कहा जा सकता कि ये महारानी के साथ दुराचार करने के लिये आये होगे, लेकिन जो न तो कभी परस्त्री की ओर देखते ही हैं न परस्त्री की बात ही करते हैं उनसे एकदम से महारानी के साथ दुराचार करने के लिये महल मे घुस आने और महारानी का सतीत्व नष्ट करने का प्रयत्न किया हो यह बात समझ मे नही आती। परन्तु यह प्रश्न तो बाकी रह ही जाता हे फिर ये महल मे आये कैसे और किसलिये? इस प्रश्न का उत्तर इन्ही से पूछना चाहिये।

सिपाहियो का सरदार सुदर्शन सेठ से पूछने लगा कि–सेठजी यद्यपि हम लोग आप पर विश्वास करते हैं और आपको सारा नगर सदाचारी मान रहा है फिर भी आप पर रानी ने जो अभियोग लगाया हे, वह आपने सुना ही है। इसलिये हम आपसे पूछते हैं कि आप यहा कैसे ओर क्यो आये? वास्तविक बात क्या है? यह हमे बताने की कृपा कीजिये जिससे हम आपको शूली लगने से बचा सके।

सिपाहियो के सरदार के इस प्रश्न पर भी सुदर्शन कुछ नहीं बोला। वह सोचता था कि ये लोग मुझ से वास्तविक बात पूछ रहे हैं लेकिन इनसे मैं वास्तविक बात कहू तो किस तरह? राजा की पत्नी होने के नाते अभया मेरी माता हे और में उसको अपनी जबान से माता कह चुका हू इसलिए भी मेरी माता हे। यदि वास्तविक बात प्रकट करूगा तो मेरी अभया माता का अपमान होगा, लोगो की दृष्टि मे वह हल्की मानी जावेगी और सम्भव हे कि राजा भी उसे दण्ड दे। इस प्रकार मेरे बोलने से उस पर सब ओर स विपत्ति आवेगी। जिसको में माता मानता हू, उस पर मेरे कारण किसी प्रकार की आपत्ति आवे या उसका अपयश हो, यह मेरे लिए उचित नहीं हे। पुत्र का यह कर्त्तव्य नही है कि वह माता को किसी प्रकार के सकट मे डाले किन्तु यह कर्त्तव्य हे कि स्वय पर सब आपत्ति झेलकर भी माता की रक्षा करे। इसलिय

मुझको चुप ही रहना चाहिये। चाहे मुझे सब सकटो का—यहा तक कि प्राणनाश का सामना क्यो न करना पडे। अभया माता के कथन से प्रकट है कि यह सब आग कपिला की लगाई हुई है। यद्यपि कपिला ने कोई बात प्रकट न करने की प्रतिज्ञा की थी लेकिन जान पडता है कि अभया से उसने उसके यहा की घटना की बात प्रकट कर दी है और प्रतिज्ञा तोड डाली है। परन्तु मुझे तो उसके विरुद्ध कुछ भी न कहना चाहिए। उसने अपनी प्रतिज्ञा तोड दी इस कारण मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिये। इसके सिवाय मैने कपिला को भी माता माना है, इसलिये उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है।

सिपाहियो के सरदार ने सुदर्शन से कई बार पूछा, परन्तु सुदर्शन ने अपना मौन भग नही किया। तब वह सिपाहियो से कहने लगा कि ये तो कुछ भी नही बोलते। ऐसी दशा मे सच्ची बात कैसे जानी जा सकती है? इनके न बोलने से तो '**मौन सम्मति लक्षणम्** के अनुसार यही माना जा सकता है कि महारानी द्वारा इन पर लगाया गया अभियोग ठीक है और ये स्वय पर लगे हुए अभियोग के विरुद्ध कुछ नही कह सकते। यद्यपि यह सेठ धार्मिक और सदाचारी माने जाते हैं परन्तु मन के परिणाम सदा समान नही रहते, इसलिये सम्भव है कि इनके मन मे महारानी के प्रति बुरी भावना आई हो और इसलिये ये महल मे घुस आये हो। इसके सिवाय बहुत से धर्म ढोगी बगुला भक्त की तरह के होते हैं जो बाहर से तो कुछ दिखाते हैं लेकिन भीतर से कुछ और होते है। इन सेठ के विषय मे अपन निश्चयपूर्वक कुछ कह नही सकते। हो सकता है कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हो और यह भी हो सकता है कि ये बुरे विचार से ही महल मे आये हो। अभी तक तो महारानी की बातो से और उनका शरीर देखने से इसी बात की पुष्टि होती है कि ये बुरे विचारो से ही महल मे आये। अपन इस विषयक कोई निर्णय नही कर सकते इसलिये यही अच्छा होगा कि इनको महाराजा के सामने उपस्थित कर दिया जावे। महाराजा इनके विषय मे आप ही निर्णय कर लेगे। यदि महारानी की आज्ञानुसार अपन इनको शूली लगवा दे और फिर कोई दूसरा रहस्य प्रकट हुआ तो अपन उपालम्भ के पात्र होगे। इसके सिवाय सम्भव हे कि महाराजा के पूछने पर ये बोले और शूली से बच जावे।

सिपाहियो ने सरदार की बात स्वीकार की। सरदार की आज्ञानुसार सिपाही लोग सुदर्शन को बन्दी बनाकर दधिवाहन के पास नगर से बाहर ले चले।

अभियुक्त सुदर्शन

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ।।

अर्थात्—चाहे लोग निन्दा करे या स्तुति, चाहे लक्ष्मी आवे या चली जावे, लेकिन नीतिनिपुण धीर पुरुष न्याय मार्ग से जरा भी इधर—उधर नहीं होते।

भर्तृहरि के इस कथनानुसार धीर पुरुष मानापमान, सुख दु ख हानि लाभ और जीवन—मृत्यु की अपेक्षा नही करते, किन्तु अपना ध्येय ही सिद्ध करना चाहते हैं। वे न तो अनुकूल परिस्थिति के प्रलोभन मे पडकर ही अपना ध्येय विस्मृत होते हैं, न प्रतिकूल परिस्थिति मे घबराकर ही। वे अपने ध्येय के सम्मुख ऐसी सब बातो की उपेक्षा करते हैं अपितु उन्हीं साधनो की ओर ध्यान देते हैं जो उनके ध्येय की सिद्धि मे सहायक हैं। सुदर्शन सेठ का एक ध्येय तो शीलपालन का था ओर दूसरा ध्येय था जिसे माता कहा उस अभया की प्रतिष्ठा की रक्षा करना। प्रथम ध्येय को न त्यागने के कारण उसे बन्दी बनना पडा, यह बात तो पिछले प्रकरण मे बताई ही जा चुकी हे। अब यह देखते हैं कि दूसरे ध्येय को न त्यागने पर उसे किस प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना पडा ओर उस प्रतिकूल परिस्थिति से बचने के लिए भी उसने अपना ध्येय नहीं त्यागा।

सरदार की आज्ञानुसार सिपाही लोग सुदर्शन सेठ को पकड कर राजा के सामने उपस्थित करने के लिए नगर से बाहर दधिवाहन के डेरे मे ले गये। दधिवाहन सो रहा था। सिपाहियो ने राजा के अगरक्षको द्वारा राजा को जगाकर सूचित किया कि—नगर सेठ सुदर्शन इस समय महल म मिले इसलिये उनको पकड कर लाया गया हे। अगरक्षको द्वारा यह समाचार सुनकर दधिवाहन को बहत ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि—नगर सेठ तो बहुत प्रतिष्ठित ओर सदाचारी है। वह मेरे महल म किसी बुरे विचार से गया भी हो तब भी सहसा यह बात मानने मे नही आ सकती। हा सकता है कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हो। मुझ इस विषयक निर्णय किय विना आवेश मे आकर कोई आज्ञा न देनी चाहिए। इसी प्रकार जब तक उस पर कोई अभियोग प्रमाणित न हो जावे तब तक उसके सम्मान को भी धक्का न लगने देना चाहिए।

राजा ने इस प्रकार सोचकर आज्ञा दी कि—प्रात काल तक सुदर्शन सेठ को सम्मानपूर्वक रखा जावे और सबेरे मेरे सामने लाया जावे। सबेरे वास्तविकता का निर्णय करके आज्ञा दूगा।

प्रात काल होने पर दधिवाहन स्वय ही सुदर्शन के पास गया। वह सुदर्शन पर न तो कुद्ध ही हुआ न उसने कोई कडा शब्द ही कहा। किन्तु उसने सुदर्शन से पूछा कि—सेठजी तुम रात के समय महल मे कैसे मिले? मै तुम्हारा विश्वास करता हू और तुम हो भी विश्वस्त। इसलिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि किसी बुरे विचार से महल मे गए होगे फिर भी मैं जानना चाहता हू कि तुम महल मे कैसे और किस उद्देश्य से गये थे।

राजा का यह पश्न सुनकर भी सुदर्शन चुप ही रहा। कुछ भी नही बोला। राजा ने कई बार पूछा, लेकिन सुदर्शन की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। तब राजा सोचने लगा कि यह तो कुछ भी नही बोलता। इसका न बोलना सन्देह को अवश्य उत्पन्न करता है, लेकिन किसी निर्णय पर नही पहुचाता इसलिए महल मे चलकर इस विषयक खोज करनी चाहिए। सम्भव है कि वहा पहुचने पर वास्तविकता का पता लग जावे।

राजा दधिवाहन महल मे आया। सुदर्शन को भी महल मे लाया गया। कौमुदी—महोत्सव का अवसर व्यतीत हो जाने से नगर निवासी पुरुष भी नगर मे आ गये। नगर के प्राय सभी लोगों को यह मालूम हो गया कि आज रात को सुदर्शन सेठ रानी के महल मे पकडा गया है। यह खबर सुनकर लोग इस विषय मे तरह—तरह की बाते कहने लगे। कोई तो कहता था कि नगर सेठ सुदर्शन ऐसा आदमी नहीं है कि किसी बुरे विचार से महल मे गया हो। हो सकता है कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हो। कोई—कोई कहता था कि राजा को नगर सेठ से अपनी हानि दिखी होगी नगर सेठ प्रजा का पक्ष लेते है यह राजा को बुरा लगा होगा इसलिए सम्भव है कि राजा ने सेठ पर झूठा अभियोग लगाया हो। कोई कहता था कि सुदर्शन पर—घर तो जाता ही नही है ऐसी दशा मे वह राजा के महल मे जावे यह कैसे सम्भव है? इस प्रकार लोग अनेक प्रकार की बाते करते थे।

राजा दधिवाहन महल मे आया। वह अभया के भवन मे गया। उसने देखा कि अभया अस्त—व्यस्त दशा मे पडी हुई लम्बे—लम्बे श्वास ले रही है। राजा को देखकर अभया उठ खडी हुई। राजा ने उससे पूछा कि—आज यह क्या बात है? कुशल तो है न? राजा का यह प्रश्न सुनकर अभया रोद्र—रूप धारण करके कहने लगी कि—हा यही कुशल है कि मेरा सतीत्व बच गया।

सतीत्व बचने के सिवा और तो उस दुष्ट बनिये ने मेरी सब दुर्दशा कर डाली है। यह देखो मेरे सब कपडे फाड डाले हैं तथा मेरे गाल और स्तन नोच डाले हैं। वह तो मेरा सतीत्व भी नष्ट कर डालता लेकिन आपके प्रताप से मैं अपने सतीत्व की रक्षा कर सकी हू और उस दुष्ट को सिपाहियो द्वारा पकडवा सकी हू, उस के लिए मैंने यह प्रण किया है कि अब इस ससार मे या तो वही रहेगा या मैं ही रहूगी। और जब तक वह जीवित है, तब तक अन्न–जल ग्रहण न करूगी। जब यह सुन लूगी कि उस अत्याचारी को प्राणदण्ड मिल गया और वह इस ससार मे नही है, तभी मुझे सतोष होगा और मैं अन्नजल लूगी। मुझे आश्चर्य तो यह है कि आपके राज्य मे ऐसे–ऐसे दुष्ट बसते हैं और उन्हे आपने प्रतिष्ठा प्रदान कर रखी है। आपने उस लम्पट को नगर सेठ बना रखा है लेकिन उस दुराचारी को इसका किचित् भी विचार नही हुआ। उसने देखा कि आज महल मे रानी अकेली है, इसलिए वह न मालूम किस तरह महल मे घुस आया और बलात्कार के लिए उसने मुझ पर आक्रमण कर दिया। सम्भव है कि उसके इस कार्य मे पहरेदारो का भी सहयोग हो और उन्होने कुछ पाकर उसे सब भेद बताया हो तथा महल मे आने दिया हो। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि मैंने सिपाहियो को आज्ञा दी थी कि इस दुष्ट को शूली लगा दो लेकिन उन्होने मेरी इस आज्ञा का पालन नहीं किया किन्तु उसे आपके पास ले गये। देखती हू कि अब आप क्या करते हैं? यदि आपने मुझ पर बलात्कार करने वाले उस बनिये को प्राणदण्ड दिया तब तो ठीक हे अन्यथा मैं भूखी प्यासी आत्म–हत्या कर डालूगी। उस दुष्ट के जीवित रहते मैं किसी को अपना मुह न दिखाऊगी।

रानी की बातो को सुनकर राजा ओर भी आश्चर्य मे पड गया। वह कुछ निश्चय न कर सका कि वास्तविक बात क्या है? एक ओर तो उसे सुदर्शन के सदाचार पर विश्वास था और दूसरी ओर रानी उस पर भीषण अभियोग लगा रही थी इसलिए वह असमजस मे पड गया। उसने रानी से पूछा कि यह कब की बात हे? और उस समय तुम्हारी सब दासिया कहा गई थी। राजा के इस प्रश्न के उत्तर मे रानी कडक कर कहने लगी कि–क्या मैं वर्ष दो वर्ष की बात कह रही हू। आज रात की ही तो बात हे। रात के समय कामदेव के पूजोत्सव ओर कोमुदी महोत्सव के कारण थकी हुई सब दासिया भी सो रही थी ओर मे भी सो रही थी। उस समय सोते मे ही आपके उस दुष्ट नगरसेठ ने मुझ पर आक्रमण किया ओर मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहा। धिक्कार है मुझको जो आप जेसे राजा की रानी वनना पडा। जिसके राज्य

मे एक बनिया भी इस पकार दु साहस कर सकता है। जो अपनी पत्नी का सतीत्व बचाने मे भी असमर्थ है और जो अपनी पत्नी पर बलात्कार करने वाले अपराधी को भी जीवित देखता है, उस राजा की पत्नी बनना पडा यह मेरे दुर्भाग्य की ही बात है। आप ऐसे कायर राजा की पत्नी होने के बदले, यदि मैं किसी गरीब की स्त्री होती तो वह या तो मेरे अपराधी को ही मृत्यु के हवाले कर देता या स्वय ही उससे लडकर मर जाता। लेकिन आप राजा होकर भी अपनी स्त्री के अपराधी को अब तक दण्ड न दे सके।

यह कहकर अभया रोने लगी। वहा खडी हुई पडिता भी अभया की बातो मे नमक–मिर्च लगाती जाती थी और राजा को जोश दिलाती जाती थी। अभया और पडिता की बाते सुनकर असमजस मे पडा हुआ राजा सोचने लगा कि–जिसको मै तथा नगर के सब लोग सदाचारी मानते हैं, उस सुदर्शन पर किये गये इस भीषण आरोप की सत्यता कैसे जानी जावे? यदि मैं रानी की बातो से आवेश मे आकर बिना निर्णय किये ही सुदर्शन को दण्ड दू, तो यह अनुचित होगा। ऐसा करने से अन्याय होने का भी भय है और प्रजा द्वारा विद्रोह होने का भी भय है क्योकि प्रजा को सुदर्शन प्राणो के समान प्रिय है। दूसरी ओर यदि रानी के कथनानुसार सुदर्शन ने अपराध किया हो और फिर भी मै उसे दण्ड न दू, रानी की बातो की उपेक्षा कर दू तो यह भी अन्याय ही होगा ओर लोगो मे मेरी निन्दा भी होगी। लेकिन प्रश्न यह है कि इस घटना की सत्यता कैसे जानी जावे? सुदर्शन पहले तो कुछ नहीं बोला लेकिन अब सभव है कि वह पूछने पर बोले और सब बात कहदे यह बात दूसरी है कि वह बोले ही नही लेकिन यदि बोलेगा तो सच्ची बात ही कहेगा। झूठ तो कभी भी न बोलेगा। इसलिए चलकर फिर उसी से पूछना चाहिये।

इस प्रकार सोचकर राजा फिर सुदर्शन के पास आया। उसने रानी द्वारा लगाया गया अभियोग सुदर्शन को सुनाकर उससे पूछा–कि यह बात कहा तक सत्य है? म तुम पर विश्वास करता हू। मैं रानी की बात पर सन्देह भी कर सकता हू लेकिन तुम्हारी बात पर कदापि सन्देह नहीं कर सकता। इसलिए तुम कहो कि वास्तविक बात क्या है?

सुदर्शन से राजा ने इस तरह कई बार पूछा लेकिन सुदर्शन कुछ भी नही बोला वह तो अपने इसी विचार पर दृढ रहा कि अभया माता के सम्मान की रक्षा और उसे कष्ट से बचाने के लिये मुझे कुछ न बोलना चाहिये। फिर चाहे मुझे शूली पर ही क्यो न चढना पडे?

राजा ने सुदर्शन को सब तरह का आश्वासन भी दिया। उसने यह भी कहा कि सच्ची बात कह दोगे तो अपराधी होने पर भी मैं तुम्हे माफ कर दूगा और यदि रानी का अपराध होगा तो उसे दण्ड दूगा। इस प्रकार का आश्वासन देने के साथ ही उसने यह भी कहा कि तुम्हारे न बोलने से रानी द्वारा तुम पर लगाया गया अभियोग सच्चा माना जावेगा और तुम्हे अपराध का दण्ड भोगना होगा, जो प्राणदण्ड तक हो सकता हे। इस प्रकार राजा ने सभी प्रयत्नो द्वारा सुदर्शन से घटना की वास्तविकता जाननी चाही, लेकिन उसे सफलता न मिली। राजा ने अपने प्रधान आदि को भी सुदर्शन के पास भेजा और प्रधानादि ने भी सुदर्शन को सब तरह से समझाया लेकिन परिणाम कुछ न निकला। अत मे राजा ने अपने मत्रियो की सलाह से यह मार्ग निकाला कि इस मामले मे प्रजा के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो को डाला जावे और उनसे सम्मति ली जावे कि सुदर्शन अपराधी हे या नहीं? सम्भव है कि उनसे सुदर्शन सब बात कह दे, जिससे घटना पर कुछ प्रकाश पडे। कदाचित सुदर्शन ने उनसे भी कुछ न कहा तो उस दशा मे सुदर्शन पर लगे हुए अभियोग के विषय मे उनसे भी सम्मति ले लेगे ओर जब वे भी सुदर्शन को अपराधी स्वीकार कर ले तब सुदर्शन को दण्ड देना ठीक होगा।

राजा ने प्रजा मे से कुछ प्रतिष्ठित पुरुषो को बुलाकर उन्हे समस्त बातो से परिचित किया और उनसे कहा कि—इस मामले को सुलझाने मे आप लोग भी प्रयत्न करे। सम्भव है कि आप लोगो के प्रयत्न से सुदर्शन बोले और इस कारण इस घटना के विषय मे किसी निर्णय पर पहुचा जा सके।

राजा द्वारा नियुक्त प्रजा के प्रतिनिधि लोग सुदर्शन सेठ के पास गये। वे सुदर्शन से कहने लगे कि सेठजी हम लोग जानते हैं कि आप सदाचारी हैं। आप दूसरे के घर तक नही जाते और पर स्त्री मात्र को माता मानते हैं, इसलिए आप रानी पर बलात्कार करने के लिए उनके महल मे गये हो यह कदापि सम्भव नहीं। फिर भी आपके लिये कहा जाता हे कि आप रानी के महल मे मिले हें और आप पर रानी सतीत्व हरण का अभियोग लगा रही है। ऐसी दशा मे आपका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि आप स्वय पर लगाये गये इस अभियोग का प्रतिवाद करे, वास्तविक बात क्या हे यह हमारे समक्ष प्रगट करे जिससे हम इस विषय मे कुछ निर्णय कर सके ओर राजा स कुछ कह सके।

प्रतिनिधि के इस कथन का भी सुदर्शन ने कोई उत्तर नही दिया। वह मौन ही रहा। तब वे प्रतिनिधि सुदर्शन से कहने लगे कि—आप तो हमारी

बात का कुछ भी उत्तर नही देते। आपका चुप रहना यह प्रकट करता है कि आप स्वय पर लगाये गये अभियोग के विरुद्ध कुछ नही कहना चाहते। आप अपना मौन भग करके वास्तविक बात प्रकट करिये। कदाचित् अभियोग के अनुसार आपसे अपराध हुआ भी होगा, तब भी सारी प्रजा आपके साथ है इसलिए महाराज से क्षमा दिलाई जा सकती है और यदि आपने अपराध ही नही किया है तब तो महाराजा आपका कर ही क्या सकते हैं? मानव–स्वभाव मे कभी–कभी विषमता भी आ जाती है। बडे–बडे ऋषि–मुनि भी अपने व्रत–नियम से गिर जाते हैं, तो अपन तो गृहस्थ हैं, इसलिए रानी के कथनानुसार आपसे अपराध होना असभव या आश्चर्य की बात नही है। फिर भी इससे आपको घबडाने की आवश्यकता नही है। जिससे कभी कोई अपराध नही हुआ है, उस व्यक्ति से यदि एक अपराध हो भी जावे तो वह अपराध क्षम्य माना जाता है। इसके अनुसार यदि आपसे अपराध हुआ भी होगा तो वह क्षम्य माना जावेगा। इसलिए आप सच्ची बात प्रकट करिये। आप यदि इसी तरह मौन रहे तो आप अपराधी माने जावेगे और आपके मौन रहने पर हम लोग आपकी कुछ भी सहायता न कर सकेगे तथा राजा आपको शूली लगाने का दण्ड देगा। आप हम नागरिको के प्राणस्वरूप हैं। हम नही चाहते कि आपके जीवन का इस प्रकार अत हो। साथ ही हमारे लिए यह भी असह्य होगा कि हमारे नगर–नायक पर इस तरह का कलक लगे और उन्हे दण्ड मिले। इसलिए हम लोगो से बातचीत करिये, मौन न रहिये। हम जानते है कि आप त्यागी है। आपको जीवन की भी अपेक्षा नही है इसलिये आप यह सोचते होगे कि यदि राजा ने शूली का दण्ड दिया तब भी कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह बात सिर्फ प्राणो तक ही सीमित नहीं है, इसके साथ प्रतिष्ठा का भी सबध है। जीवन का अन्त होना उतना बुरा नहीं है जितना बुरा प्रतिष्ठा को कलक लगना है। आप यदि न बोले तो आपके जीवन की हानि तो होगी ही साथ ही प्रतिष्ठा को भी कलक लगेगा और आपकी स्त्री तथा आपके पुत्र दुःखी हो जायेगे। राजा जब आपको शूली दे देगे तब आपकी सम्पत्ति भी न छोडेगे। उस दशा मे आपकी स्त्री और आपके बच्चो की क्या दशा होगी? कदाचित राजा ने इतनी कठारेता का व्यवहार न किया तब भी आपकी स्त्री और आपके पुत्रो को इस घटना के कारण जीवन भर लज्जित तो होना ही पड़ेगा। वे अपना मस्तक कभी ऊचा न कर सकेगे न कुछ कह ही सकेगे। आपके न रहने पर उनकी दुर्दशा हो जावेगी। इसलिए आप चुप न रहकर सब बात हमसे कह दीजिये।

प्रजा के प्रतिनिधियो ने इस प्रकार सुदर्शन का मौन भग करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, अनेक प्रकार की बाते कहीं, लेकिन उनके प्रयत्नो का सुदर्शन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह तो मौन रहकर पूर्व की भाति यही सोचता था कि मैं अपने प्राणो, अपनी प्रतिष्ठा या स्त्री–बच्चो की रक्षा के लिए ऐसा कोई कार्य नही कर सकता जिसके कारण मेरी माता पर कोई सकट आवे। मैं इन सबकी अपेक्षा माता का महत्त्व अधिक समझता हू। माता को सकट से बचाने के लिये और माता की प्रतिष्ठा बचाने के लिये अपने प्राणो का बलिदान करना, अपनी प्रतिष्ठा की उपेक्षा करना या अपने स्त्री–बच्चो के भविष्य की चिन्ता न करना, कुछ अनुचित नही है। एक ओर मेरे प्राण हैं मेरी प्रतिष्ठा है तथा मेरी स्त्री एव मेरे बालको का भविष्य है और दूसरी ओर मेरी माता के प्राण हैं, उसकी प्रतिष्ठा है तथा उसका भविष्य है। इन दोनो मे से माता के प्राण, माता की प्रतिष्ठा और माता के भविष्य की ही अपेक्षा करूगा। शूली का दण्ड होगा, इस भय से मुझे भयभीत न होना चाहिये। मेरा शूली पर चढना, शील रक्षा के* लिये और माता के हित के लिए होगा। शील और मातृहित मे मेरे प्राण लग जावे, इससे अधिक प्रसन्नता की बात दूसरी क्या हो सकती है? प्राणो का इससे ज्यादा सदुपयोग और क्या हो सकता है? एक कवि ने कहा ही है–

**सुदर्शन का यह विचार परहित–चिन्तन की पराकाष्ठा है, अत्युच्च आदर्श है।*

– सम्पादक

धनानि जीवितचैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्तो वर त्यागों, विनाशे नियते सति।।

अर्थात्–बुद्धिमान् लोग धन और प्राण दूसरे के हित के लिए त्याग देते हैं। धन ओर प्राण का नाश तो अवश्य ही होगा इसलिये सद्कार्य के निमित्त इनका त्याग अच्छा हे।

मेरे लिए भी माता के हित मे प्राणो का उत्सर्ग श्रेयस्कर होगा। मैं आस्तिक हू। मुझे इस बात पर विश्वास हे कि आत्मा अमर हे ओर उसे अपन कृत्य का फल मिलता ही हे। ऐसी दशा मे यदि मुझे दूसरे के हित क लिए अपने प्राण त्यागने भी पडे तो उससे मेरी कोई हानि न हागी। मेरे कथन पर राजा को भी विश्वास हे और प्रजा को भी। इसलिए मेरे द्वारा वास्तविक बात

प्रकट होने पर किसी न किसी रूप मे माता को कष्ट अवश्य ही होगा, इसलिए प्राणात होने तक भी मुझे वास्तविक बात प्रकट न करनी चाहिए और झूठ तो मैं किसी भी दशा मे बोल ही नही सकता।

प्रजा के प्रतिनिधियो के अनेक प्रयत्न करने पर भी जब सुदर्शन कुछ नही बोला तब वे सुदर्शन से कहने लगे कि—हम तो चाहते थे कि किसी प्रकार आपके शरीर की भी हानि न हो, आप पर लगा हुआ कलक भी मिट जावे, आपकी प्रतिष्ठा को भी धक्का न लगे, आपके बाल—बच्चो को भी कष्ट मे न पडना पडे और इन सब बातो के साथ ही हम नगर के लोगो को आप ऐसे नगर—नायक का आधार बना रहे। इसी उद्देश्य से हम आपके पास आये और आपसे सब बाते पूछ रहे हैं। दूसरी ओर महाराजा यह चाहते हैं कि आपके विषय मे किसी प्रकार का अन्याय न हो। आप पर उनकी पूर्ण कृपा भी है और न्यायशील होने से वे इस घटना की वास्तविकता भी जानना चाहते हैं। लेकिन आप तो इतना आग्रह—अनुरोध करने पर भी कुछ नही बोलते। यह आपकी हठ प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। हम आपसे एक बार फिर यह कहना उचित समझते हैं कि आप इस पर प्रकाश डालने के लिए वास्तविक बात हम लोगो से कह दे।

प्रजा के प्रतिनिधियो का यह अन्तिम प्रयत्न भी जब निष्फल रहा, तब वे लोग खेद—खिन्न एव निराश होकर सुदर्शन के पास से चले गये। नगर के बहुत से दूसरे लोग भी राजमहल मे और उसके आसपास यह जानने के लिए घूम रहे थे कि सुदर्शन सेठ किस अपराध के कारण पकडा गया है और सुदर्शन सेठ का क्या कहना है। प्रतिनिधियो द्वारा उन्हे यह ज्ञात हुआ कि सुदर्शन द्वारा रानी पर बलात्कार करने का अभियोग है, लेकिन इस सबध मे सुदर्शन कुछ नही बोलता है। इसलिए सम्भव है कि राजा उसे प्राणदण्ड दे। प्रतिनिधियो द्वारा ज्ञात हुई बात थोडी ही देर मे सारे नगर मे फैल गई तथा नगर के लोग तरह—तरह की बात करने लगे।

निर्णय

सत्पुरुष झूठ तो किसी भी दशा मे बोलते ही नही हैं, लेकिन वैसा सत्य भी नही बोलते जिससे किसी दूसरे की कोई हानि होती हो। वे लोग दूसरे की हानि करने वाले सत्य को भी झूठ ही मानते हैं। उनका सिद्धान्त है कि—

सच्चेसु या अणवज्ज वयती।

अर्थात्–जिससे किसी को पीडा न हो, वही वचन सत्य हे। योग दर्शन के भाष्य मे वेदव्यासजी ने कहा हे–

एषा सर्व भूतोपकारार्थ प्रवृत्ता न भूतोपघाताय,
यदि चैव मय्यमिधीयमाना, भूतोपघाताय
परैवस्यात् न सत्य भवेत्।।

अर्थात्–सत्य के द्वारा सब जीवो के उपकार मे प्रवृत्त होना चाहिए, किसी के अपकार मे प्रवृत न होना चाहिए, सत्य के उपयोग मे इस प्रकार की बुद्धिमानी रखना आवश्यक हे, जिसके द्वारा किसी की घात या किसी की कोई हानि हो, वह सत्य 'सत्य' नहीं हे, किन्तु असत्य ही है।

मनुस्मृति मे भी कहा है–

सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयान्नब्रूयात् सत्यमप्रिय।

अर्थात्–प्रिय सत्य बोलो, अप्रिय सत्य भी मत बोलो।

इस प्रकार जिस सत्य बोलने से दूसरे की हानि हो, सभी सैद्धान्तिको ने उस सत्य की निन्दा की हे ओर उस सत्य को भी झूठ ही माना हे। तब झूठ की तो निन्दा की ही हे। उसे तो किसी भी दशा मे यहा तक फिर चाहे प्राण जाने लगे तब भी न अपनाने योग्य कहा हे। अब प्रश्न यह होता है कि जिससे दूसरे को दु ख होता हो दूसरे का अहित हो–वह सत्य कहना भी महापुरुषो के लिए निषिद्ध हे ओर झूठ बोलना भी पाप हे तब ऐसे अवसर पर किस मार्ग का अवलम्बन लेना। इसका उत्तर यह हे कि ऐसी ही स्थिति का नाम धर्मसकट हे। इस प्रकार के धर्मसकट को हृदय की सहायता से पार कर सकने वाला व्यक्ति ही सत्य का पालन कर सकता हे।

इस प्रकार के धर्मसकट के समय दो ही मार्ग हैं। पहला मार्ग दृढता पूर्वक यह कह देना हे कि में अमुक बात जानता हू, परन्तु कहूगा नही। दूसरा मार्ग–मोन रहना या कुछ बताने से इन्कार करना (दोनो मे से समयानुसार जो ठीक हो) विद्वानो के मत से उचित मार्ग हे। इस विषयक कोई निर्णय करने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस सत्य के कहने पर एकान्त रूप से अथवा अपेक्षाकृत दूसरे की हानि हो दूसरे की घात हो वह सत्य भी झूठ हे। वही सत्य–सत्य है जिसके साथ अहिसा तथा दया हा ओर जिसम किचित् भी स्वार्थ–भावना अथवा कलुपित बुद्धि न हा, किन्तु अधिक स अधिक स्वार्थ त्याग किया गया हो।

महल मे पकडे जाने के पश्चात् सुदर्शन भी ऐसे ही धर्मसकट मे पड गया था। लोगो के पूछने पर यदि वह वास्तविक बात कहता तो लोग उसकी बात पर विश्वास करते थे, इस कारण अभया तथा उसकी सहायिकाओ की प्रतिष्ठा भी जाती थी और अभया पडिता, कपिला आदि को दण्ड भी भोगना पडता था जो प्राणान्त दण्ड तक हो सकता था और यदि वह वास्तविकता के विरुद्ध कुछ कहता था तो झूठ होता था। इस प्रकार सुदर्शन धर्मसकट मे पड गया था लेकिन वह बुद्धिमान था, इसलिए वह इस धर्मसकट मे अधिक समय तक नही रहा। उसने अपनी बुद्धि द्वारा यह निर्णय कर लिया कि इस समय मुझे मौन ही रहना चाहिए। उसने सोचा कि मेरे बोलने से अनेको की हानि होती है और न बोलने से केवल मेरी ही हानि होती है। स्वय की हानि करके दूसरे का हित करना या बचाना महापुरुषो का मार्ग है। मुझे महापुरुषो द्वारा आचरित यही मार्ग पकडना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उसने मौन रहने का ही निर्णय किया। वह अपने इस निर्णय पर कहा तक दृढ रहा आदि बाते आगे ज्ञात होगी।

अनेक प्रयत्न किये जाने पर भी जब सुदर्शन कुछ नही बोला, तब प्रजा के प्रतिनिधि लोग उसके पास से लौटकर राजा के सामने आये। राजा ने उन लोगो से पूछा कि—आप लोग किस निर्णय पर पहुचे हैं? उन लोगो ने उत्तर दिया कि—हमने इस—इस प्रकार बात जानने का प्रयत्न किया, लेकिन सुदर्शन कुछ भी नहीं बोलता वह बिल्कुल मौन है। यह सुनकर राजा ने उन लोगो से फिर यह प्रश्न किया कि—एक ओर तो सुदर्शन रात के समय महल मे पकडा गया है और रानी उस पर अभियोग लगा रही है। दूसरी ओर सुदर्शन कुछ नही बोलता। मैंने भी उससे वास्तविक बात जानने का बहुत प्रयत्न किया तथा मेरे प्रधानो और आप लोगो ने भी अपनी शक्ति भर सब प्रयत्न किये, लेकिन सुदर्शन कुछ बोलता ही नहीं है। ऐसी दशा मे यह कैसे कहा जा सकता है कि उस पर लगाया गया अभियोग गलत है। बल्कि वह नगर मे धर्म ध्यान करने के लिए रहा था और इसी के वास्ते उसके चाहने पर मैंने उसे नगर मे रहने की स्वीकृति भी दी थी। लेकिन उसने धर्म ध्यान के बहाने यहा रह कर ऐसा अपराध किया है और धर्म ध्यान का बहाना लेने के कारण उसका अपराध अधिक भयकर हो जाता है। इस सबध मे आप लोगो का क्या विचार है? आप लोगो की दृष्टि मे भी सुदर्शन अपराधी है या नहीं।

राजा द्वारा किये गये इस प्रश्न के उत्तर मे प्रजा के प्रतिनिधिगण कहने लगे कि—जब सुदर्शन ही स्वय पर लगे हुए अभियोग के विरुद्ध

कुछ नहीं कहता है किन्तु स्वय पर लगे हुए अभियोग को सुनकर भी चुप है तब हम लोग यह कैसे कह सकते हैं कि वह निरपराधी है। यदि वह कुछ बोलता, तब तो अपराधी होने पर भी हम लोग उसके लिए आपसे यह प्रार्थना करते कि आप उसे क्षमा कर दे, परन्तु जब वह बोलता ही नहीं है, तब **'मौन सम्मति लक्षणम्'** सिद्धात के अनुसार यही माना जा सकता है कि उसे अपराध स्वीकार है और इस कारण विवश होकर हमे भी यही कहना पड रहा है कि सुदर्शन अपराधी है।

इस प्रकार प्रजा के प्रतिनिधियो को सहमत करके राजा ने घटनाक्रम पर प्रकाश डालते हुए यह निर्णय दिया कि–

'सुदर्शन पाच अपराधो का अपराधी है। उसका पहला अपराध यह है कि उसने स्वय के पद, स्वय की प्रतिष्ठा और स्वय पर रखे जाने वाले विश्वास के विरुद्ध कार्य किया। दूसरा अपराध यह है कि उसने धर्म के नाम पर नगर मे रहने की स्वीकृति ली और इस प्रकार धर्म के नाम पर मुझे ठगा। उसका तीसरा अपराध यह है कि वह अनुचित रीति से रात के समय महल मे प्रविष्ट हुआ। उसका चौथा अपराध यह है कि जो उसके लिए माता के समान आदरणीय थी, उस महारानी अभया का सतीत्व नष्ट करने का असफल प्रयत्न किया और उसका पाचवा अपराध यह है कि उसने मेरे द्वारा किये गये प्रश्नो का उत्तर नहीं दिया ओर राजाज्ञा की उपेक्षा की। सुदर्शन को अपराधी ठहराने मे प्रजा के प्रतिनिधिगण भी सहमत हैं। मैं प्रजा के प्रतिनिधियो एव अपने मत्रियो की सम्मति से सुदर्शन को इन पाच अपराधो का अपराधी ठहराता हू और आज्ञा देता हू कि–ऊपर कहे गये पाच अपराधो के अपराधी सुदर्शन को प्राणान्त दण्ड दिया जावे। यानि उसे शूली पर चढा दिया जावे। यद्यपि इस दण्ड के साथ ही उसकी सम्पत्ति राज्य के अधिकार मे कर लेनी चाहिए, लेकिन उसकी पूर्व सेवाओ को लक्ष्य मे रखकर उसकी सम्पत्ति उसके पुत्रो के लिए रहने दी जाती है।

मैं सुदर्शन के लिए प्राणान्त दण्ड की आज्ञा देता हू, फिर भी उस पर यह कृपा दर्शाना उचित समझता हू कि यदि शूली पर चढाये जाने से पहले वह सब बाते कह देगा या कोई दूसरी बात ज्ञात होगी तो इस आज्ञा पर पुनर्विचार भी किया जा सकेगा।

पति पर विश्वास

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी।।

अर्थात्–पत्नी वही है जो पवित्र है चतुर है पतिव्रता है, पति से प्रीति रखती है और सत्य बोलती है।

पति का पत्नी पर और पत्नी का पति पर पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है। जिन पति–पत्नी मे परस्पर पूर्ण विश्वास है, उन्ही का दाम्पत्य जीवन सुखी माना जाता है। इसके विरुद्ध जिनमे पारस्परिक विश्वास नही है उनका दाम्पत्य जीवन भी सुखी नहीं, किन्तु दु खी रहता है। जब पति पत्नी को सन्देह की दृष्टि से देखता है अथवा पत्नी पति पर विश्वास नहीं रखती किन्तु सन्देह रखती है तब आपस मे कलह, क्लेश होना स्वाभाविक ही है। उस दशा मे दोनो मे से कोई भी स्वय को सुखी नही मानता, किन्तु दोनो ही अपने को दु खी ही मानते हैं। दोनो ही अपने अपने लिए नारकीय यातना अनुभव करते हैं। जो विवाह की ग्रथि मे बध चुके है, एक दूसरे को अपना–अपना प्रेम समर्पण कर चुके हैं उनमे यदि किसी प्रकार का भेद या सन्देह रहा एक को दूसरे का विश्वास न रहा तब नारकीय यातना का अनुभव होना भी स्वाभाविक ही है और जहा ऐसा है, वहा के लिए यही कहा जा सकता है कि ये दोनो शरीर से तो विवाह–बधन मे बधे हैं लेकिन हृदय से तो अलग–अलग ही हैं। तथा जहा भेद है वहा प्रेम नही रह सकता। इस प्रकार अविश्वास के कारण दाम्पत्य–प्रेम का स्थान कलह ले लेता है। आजकल इस प्रकार का पारस्परिक अविश्वास अधिक देखा जाता है और इसका प्रमाण पति–पत्नी का अलग–अलग अपना–अपना ताला कुजी–चाबी रखना है। पति की पेटी कोठा या सम्पत्ति अलग है और पत्नी की अलग। पति पत्नी पर विश्वास नही करता और पत्नी पति पर। ऐसा अविश्वास कहीं–कही तो इस सीमा तक बढा हुआ है कि खाने–पीने की चीजे भी ताले मे रखी जाती है और पत्नी ऐसी वस्तुए तभी पाती हैं जब पति ताले मे से निकाल कर देता है। जहा रुपये–पैसे तो दूर रहे खाने–पीने की सामग्री के लिए भी एक को दूसरे का विश्वास नही है वहा चरित्र विषयक विश्वास तो हो ही कैसे सकता है? और उस दशा मे क्लेश होना स्वाभाविक ही है। पति–पत्नी मे परस्पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए इसके लिए सुदर्शन ओर मनोरमा का पारस्परिक विश्वास आदर्श है। सुदर्शन राजमहल मे पकडा गया उसे शूली पर चढा देने

के लिए राजा ने आज्ञा भी दे दी, फिर भी मनोरमा को अपने पति पर कैसा विश्वास था, यह बात इस प्रकरण से ज्ञात होगी।

सुदर्शन सेठ राजमहल मे पकडा गया हे और उस पर रानी के साथ बलात्कार करने का अभियोग लगाया गया है तथा इस सबध मे सुदर्शन कुछ भी नहीं बोलता है आदि समाचार सारे नगर मे फेल ही गये थे। सुदर्शन सेठ की पत्नी मनोरमा ने भी पति के पकडे जाने आदि का समाचार सुना। ऐसा समाचार सुनकर साधारण स्त्री का अधीर हो उठना और रुदन करना स्वाभाविक है, लेकिन मनोरमा साधारण स्त्री न थी, किन्तु धर्म जानने वाली श्राविका थी। इसलिए यह समाचार सुनकर वह सोचने लगी कि मेरे पति तो कल पोषध व्रत धारण करके बैठे थे, फिर वे महल मे कैसे पकडे गये? मुझ को पति पर पूर्ण विश्वास है वे सदाचारी हैं। उन्होने आज तक कभी परदार–गमन नहीं किया, न कर ही सकते है। वे पूर्ण धार्मिक हैं। मुझको धार्मिकता एव सदाचार पर ऐसा दृढ विश्वास हे कि चाहे कोई कितना भी कहे मैं इस बात को नहीं मान सकती कि मेरे पति मे दुराचार या परदारगमन की भावना भी आई हो। लेकिन प्रश्न यह होता है कि फिर वे राजमहल मे पकडे कैसे गये और उन पर बलात्कार का अभियोग केसे लगा? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए मैं तो यही कहूगी कि इस घटना के पीछे कोई रहस्य हे। पराये घर जाने के त्यागी मेरे पति रानी के लिए रात के समय महल मे गये हो और पर स्त्री मात्र को माता मानने के व्रती होते हुए भी उन्होने रानी पर बलात्कार करने की चेष्टा की हो ऐसा कदापि नही हो सकता। मेरे पति अपने व्रत–नियमो का उल्लघन कदापि नही कर सकते। फिर भी पति राजमहल मे पकडे गये, यह आश्चर्य की बात हे। परन्तु मुझे यह अशुभ समाचार सुनकर अधीर न होना चाहिए किन्तु इस बात पर दृढ विश्वास रखना चाहिए कि सत्य की सदा जय हे। सत्य त्रिकाल मे अबाधित हे। सत्य न तो कभी दब ही सकता है, न उसे कोई दवा ही सकता हे। मेरे पति सच्चे ह। इसलिए उनका कोई कुछ भी नही विगाड सकता। में पति का दर्शन तभी करूगी जब उन पर लगा हुआ कलक दूर होगा। जब वादल होने पर प्रकाशित सूर्य की तरह पति पर से कलक रूपी बादल उठ जावेगा और सत्य रूपी सूर्य प्रकाशित होगा तभी में अपनी आखो से पति को दखूगी। इसरा पहले पति का दर्शन कदापि नही कर सकती। जिस पर इस तरह का कलक लगा हो उस पति की पत्नी रहने की अपेक्षा विधवा रहना अच्छा हे। इरा

समय मुझे अपने मन को दूसरी ओर से हटाकर परमात्मा के ध्यान मे ही लगा देना चाहिए जिससे मुझे नगर के लोग सता भी न सके उनके द्वारा पति के विरुद्ध कही जाने वाली बाते भी मुझे न सुननी पडे और पति पर लगा हुआ मिथ्या कलक दूर होने मे भी धर्म से सहायता पहुचे।

इस पकार विचार कर मनोरमा अपने पुत्रो सहित परमात्मा के ध्यान मे बैठ गई। उसके मातृभक्त बालक भी माता की तरह धर्मध्यान करने के लिए बैठ गये। उधर कुछ लोगो ने विचार किया कि सेठानी के पास चलकर उसको भी सेठ के पकडे जाने आदि का समाचार सुनाना चाहिए। उस बेचारी को क्या पता होगा कि उसका पति कहा और किस तरह पकडा गया है। यह समाचार सुनकर यदि वह सेठ के पास जावे तो सम्भव है कि उसके कहने–सुनने पर सेठ कुछ बोले तथा इस कारण सेठ शूली से बच जावे।

इस पकार सोचकर कुछ लोग सुदर्शन सेठ के घर गये। वहा उन्होने देखा कि सेठ के नौकर–चाकर द्वार पर बैठे हैं। जो लोग सेठानी को सुदर्शन के पकडे जाने का समाचार सुनाने के लिए गये थे, उन लोगो ने नौकरो से पूछा कि–सेठानी कहा है? नौकरो ने उत्तर दिया कि–वे धर्मध्यान मे बैठी है। वे लोग कहने लगे कि –बेचारी मनोरमा को सम्भवत यह पता नही है कि उसका पति पकडा गया है और अब उसे न मालूम क्या सजा दी जावेगी? यह कहते हुए उन लोगो ने नौकरो से कहा कि–तुम जाकर सेठानी से कह दो कि तुम्हारे पति राजमहल मे पकडे गये हैं उन पर रानी पर बलात्कार करने का अभियोग लगाया गया है। नौकरो ने उत्तर दिया कि यह समाचार सेठानी ने पहले ही सुन लिया है और इस समाचार को सुनकर ही वे धर्म–ध्यान करने के लिए बैठी हैं। नगर के लोगो ने कहा कि सेठानी से कह दो कि यह समय धर्म–ध्यान मे बैठने का नही है किन्तु पति को बचाने के लिए प्रयत्न करने का है। सेठ स्वय पर लगे हुए अभियोग के विषय मे कुछ भी नही बोलते हैं और जब तक सेठ स्वय न बोले तथा स्वय को निरपराधी बताने के लिए वास्तविक बात प्रकट न करे तब तक वे दण्ड से कैसे बच सकते हैं? उन पर जो अभियोग लगाया गया है वह ऐसा भयकर है कि उसके लिए प्राण दण्ड भी दिया जा सकता है। इसलिए सेठानी से कहो कि वे चलकर सेठ को समझादे जिसमे वे सब बात प्रकट कर दे ओर उनके प्राण बच जावे।

नगर के लोगो का यह कथन सुनकर नौकर लोग घर मे सेठानी के पास गये। कुछ ही देर मे नाकर लोग वापस लौट आये और उन्होने नगर के

लोगो से कहा कि सेठानी तो धर्मध्यान मे इस तरह मग्न है कि उन्होने हमारी बात का कुछ भी उत्तर नही दिया। हमने आप लोगो द्वारा कही गई सब बाते सुना दी, परन्तु वे धर्मध्यान मे ही लगी रहीं। यह सुनकर नगर के लोग कहने लगे कि यह तो बहुत ही आश्चर्य की बात है कि पति पर तो इस तरह का सकट है और पत्नी धर्मध्यान मे बैठी है। पति को बचाने का प्रयत्न तक नहीं करती। हम लोग तो सेठ की रक्षा हो इस उद्देश्य से यहा आये परन्तु सेठानी को अपने पति की किचित् भी चिन्ता नहीं है। वह इतना भी नहीं समझती कि मेरा सुहाग चला जावेगा, मैं विधवा हो जाऊगी, या मेरे बालको की दुर्दशा हो जावेगी।

इस प्रकार कहते हुए नगर के लोग सुदर्शन सेठ के यहा से चले गये। मनोरमा उसी प्रकार परमात्मा के ध्यान मे तल्लीन बैठी रही। उधर राजसभा मे राजा ने यह निर्णय दिया कि सुदर्शन अपराधी है अत उसे शूली लगा दी जावे। राजा का यह निर्णय सुनाने के लिए सुदर्शन को राजसभा मे लाया गया। सुदर्शन उस समय भी प्रसन्न ही था, उसके मुख पर न भय था न ग्लानि ही। कर्मचारियो ने सुदर्शन को राजा का निर्णय सुनाया, जिसमे सुदर्शन को अपराधी ठहरा कर शूली दी जाने की आज्ञा दी गई थी। राजा की यह आज्ञा सुनकर सभा मे उपस्थित और सब लोग तो काप उठे लेकिन सुदर्शन उसी प्रकार धीर और प्रसन्न बना रहा। मुझे शूली लगाई जावेगी, यह बात सुनकर भी उसे किसी प्रकार का दु ख नहीं हुआ। वह तो यही सोचता था कि राजा ने जो आज्ञा दी है, वह उचित ही हे। ये उन्ही बातो के आधार पर निर्णय दे सकते हैं जो इनके जानने मे आवे। जो बात इनकी जानकारी मे ही नहीं है, उसके विषय मे तो यह कुछ विचार कर ही केसे सकते हैं? राजनीति इसलिए अपूर्ण है कि उसमे प्रकट बातो के आधार पर ही निर्णय दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो राजनीति अपूर्ण कही ही क्यो जावे?

राजाज्ञा सुनाई जा चुकने पर प्रजा के प्रतिनिधि एव कर्मचारीगण सुदर्शन से कहने लगे कि—देखो महाराजा केसे दयालु हें ओर आप पर इनकी कृपा है। आपके लिए शूली लगाई जाने की आज्ञा दे चुकने पर भी यह सुविधा रखी है कि यदि आप वास्तविक बात कह देगे या कोई दूसरी वात ज्ञात होगी तो महाराजा अपनी आज्ञा पर पुनर्विचार करेगे। अव तक जो कुछ हुआ सो हुआ, लेकिन अव आप महाराजा द्वारा प्रदान की गई सुविधा का लाभ उठावे और वास्तविक वात प्रकट कर दे ऐसा करने पर महाराजा अपनी आज्ञा पर पुनर्विचार करेगे और सम्भव हे कि आपको शूली न देगे।

राजसभा मे उपस्थित लोगो ने इस तरह सुदर्शन से बहुत कुछ कहा, लेकिन उनका कथन व्यर्थ हुआ। सुदर्शन कुछ भी नही बोला। अन्त मे सब लोग चिढ गये और राजा ने भी रुष्ट होकर सिपाहियो को आज्ञा दी कि--इसको यहा से ले जाओ तथा मेरी आज्ञा का पालन करो। राजा की आज्ञानुसार सिपाही लोग सुदर्शन को राजसभा से ले गये। प्रजा के प्रतिनिधिगण तथा राजकर्मचारी आदि भी अपने-अपने घर गये।

अभया को दासियो द्वारा यह मालूम हुआ कि सुदर्शन को शूली लगाने की आज्ञा दी गई है। यह समाचार सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुई और अपने मन मे कहने लगी कि अन्त मे तो मेरी ही बात रही, मेरा कहना न मानने के कारण उस धर्म ढोगी को वही दण्ड मिला है, जो दण्ड मैं दिलाना चाहती थी। अब थोडी ही देर में उसे शूली पर चढा दिया जावेगा और तब उसे मेरा कहना न मानने के लिए पश्चात्ताप होगा। इस प्रकार सोचती और प्रसन्न होती हुई अभया अपने कृत्य के लिए गर्व करने लगी।

प्रजा के प्रतिनिधियो द्वारा नगर के अन्य लोगो को भी राजा की आज्ञा का समाचार मालूम हुआ। यह समाचार सुनकर प्रजा को बहुत ही दु ख हुआ। कोई--कोई कहने लगे कि वास्तविक बात क्या है यह तो कौन जाने, लेकिन जो पिता के समान सब लोगो का रक्षक था, वह नगर-सेठ आज शूली पर चढा दिया जावेगा तथा उससे हमारा वियोग हो जावेगा, यह हमारे लिए बडे दुर्भाग्य की बात है। इसी प्रकार कोई कुछ कहने लगा और कोई कुछ कहने लगा। कोई कहता था कि सुदर्शन बोलता नहीं है, इससे जाना जाता है कि उसने अवश्य ही अपराध किया होगा। कोई कहता था कि वह नही बोलता यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ। यदि वह बोलता भी तो रानी के कथन के सामने उसके कथन को कौन सत्य मानता? कोई कहता कि राजा है तो न्यायी और सुदर्शन पर कृपालु। यदि उसके हृदय मे सुदर्शन के प्रति स्थान न होता तो वह शूली की आज्ञा देने के पश्चात् सुदर्शन के लिए किसी प्रकार की सुविधा न रखता। इसी प्रकार वह प्रजा में से कुछ लोगो को बुलाकर सुदर्शन को अपराधी ठहराने मे उनकी सम्मति न लेता। कोई कहता था कि राजा के न्याय पर विश्वास है तो क्या सुदर्शन के सदाचार पर विश्वास नही है? राजा के न्याय के विषय मे तो सन्देह भी किया जा सकता है परन्तु सुदर्शन के सदाचार के विषय मे सन्देह का कोई कारण नहीं है फिर भी सुदर्शन महल मे कैसे पकडा गया और क्या बात हुई इस विषय मे कुछ नही कहा जा सकता।

कुछ लोगो ने सोचा कि अब फिर मनोरमा के पास चलकर उससे कहना चाहिए कि राजा ने तुम्हारे पति को शूली पर चढाये जाने का हुक्म दे दिया है, फिर भी पुनर्विचार की सुविधा रखी है। इसलिए तुम चलकर सुदर्शन से कुछ कहो सुनो, जिससे वे बोल जावे ओर शूली से बच जावे।

इस प्रकार विचार कर कुछ लोग फिर सुदर्शन के घर गये। वहा मनोरमा को पूर्व की ही भाति धर्म–ध्यान मे बैठी पाई। उन लोगो ने सुदर्शन के नौकरो द्वारा मनोरमा के पास राजा की आज्ञा का समाचार भेज कर कहलाया कि अब तो चलकर सुदर्शन को समझाओ जिससे वे बोल जावे ओर उनके प्राण बच जावे। धर्म–ध्यान के लिए तो सारी आयु है ही लेकिन यह अवसर फिर नहीं मिलना है। पहले इस स्वय को विधवा बनाने वाली दुर्घटना को रोकने का प्रयत्न कीजिये, नही तो फिर आप धर्म ध्यान मे ही रह जावेगी व पति को खो बैठेगी।

लोगो द्वारा कही गई यह बात मनोरमा को कहने के लिए सुदर्शन के नौकर मनोरमा के पास गये। कुछ ही देर मे वे वापस लौट आये और उन्होने आये हुए लोगो से कहा कि–हमने आप लोगो द्वारा कही गई बाते सेठानी को सुनाईं लेकिन वे तो इस तरह ध्यान मे मग्न बेठी हैं कि जैसे हमारी बात सुनना भी न चाहती हो। उन्होने हमारे द्वारा कही गई आप लोगो की बात का कोई उत्तर नही दिया।

नोकरो से यह सुनकर उन लोगो मे से कोई तो कहने लगा कि–सेठानी को आज ही धर्मध्यान करना सूझ पडा है। पति तो मरने जा रहा हे ओर आप धर्मध्यान करने बैठी है। कोई कहने लगा कि सेठ के विषय मे तो अपन जानते हें कि सेठ का आचरण अच्छा हे लेकिन सेठानी के विषय मे अपने को क्या मालूम कि उसका आचरण केसा हे? पति तो शूली पर चढाया जाने वाला हे फिर भी वह धर्मध्यान करने बेठी है, इससे तो यही पाया जाता है कि उसके हृदय मे पति के प्रति प्रेम नही हे। कोई कहता था कि पति के प्रति प्रेम होता तो इस तरह बेठी ही क्यो रहती? सेठ के प्राण बचे इसलिये अपन लोग तो दौड–भाग कर यहा आये हें लेकिन सेठानी को अपन पति के विषय मे जरा भी चिन्ता नहीं हे। हृदय मे पति के प्रति प्रेम हो या न हो, लौकिक व्यवहार के लिये तो उसे पति के प्राण बचाने का प्रयत्न करना ही चाहिये था। कोई कहता था कि ऐसा प्रयत्न करने से सठानी की हानि ही हे उसको लाभ क्या हे? शायद इस तरह के प्रयत्न से सेठ बच जावे ता

सेठानी के मार्ग का काटा बना ही रहेगा। सेठ को शूली लगे, इसमे सेठानी की हानि क्या? सेठानी इसे अपने लाभ की बात समझती है। सेठानी युवती है और सेठ के न रहने पर वह सब धन की स्वामिनी होकर इच्छित पुरुष के साथ आनन्द भोग कर सकेगी। फिर वह सेठ को बचाकर अपने मार्ग की बाधा क्यो रहने दे?

इस पकार इस तरह की बाते करते हुए वे लोग वहा से चले गये। सेठानी परमात्मा के ध्यान मे बैठी रही।

शूली का सिंहासन

बल दो पकार के होते हैं, एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। दृश्यमान जगत मे जो बल दिखाई देता है वह भौतिक बल है। शारीरिक बल, शस्त्र बल सैन्यबल धन बल यन्त्र बल आदि भौतिक बल है। इन सब बल की गणना भौतिक शक्ति मे है। आध्यात्मिक शक्ति भौतिक शक्ति से परे है। भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति मे से आध्यात्मिक शक्ति का महत्व अधिक है। आध्यात्मिक शक्ति के सामने भौतिक शक्ति तुच्छ एव नगण्य है। भौतिक शक्ति की सीमा है लेकिन आध्यात्मिक शक्ति की कोई सीमा नहीं है। भौतिक शक्ति अपनी ही तरह की दूसरी शक्ति से अथवा आध्यात्मिक शक्ति से टकरा कर व्यर्थ हो जाती है लेकिन आध्यात्मिक शक्ति अव्यर्थ है। वह प्रत्येक क्षेत्र मे अबाधित है। भौतिक शक्ति द्वारा सम्पादित कार्य का परिणाम तत्काल या परम्परा पर हानिप्रद भी हो सकता है, लेकिन आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न कार्य का परिणाम किसी भी समय अथवा किसी के लिए भी हानिप्रद नही होता। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखा जावे, भौतिक बल से आध्यात्मिक बल ही बढकर है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह आध्यात्मिक बल प्रकट करे। आध्यात्मिक बल से इहलौकिक कल्याण भी है ओर पारलौकिक कल्याण भी है लेकिन आध्यात्मिक बल तभी प्रकट किया जा सकता है जब भौतिक बल त्यागा जावे। आध्यात्मिक बल उसी मे ठहर सकता है, जिसने भौतिक बल त्याग दिया हो। जिसके समीप जितना भौतिक बल है या जो भौतिक बल पर जितना विश्वास करता है अथवा भौतिक बल से जितना काम लेता है वह आध्यात्मिक बल से उतना ही दूर है। आध्यात्मिक बल तो तभी आता है जब भौतिक बल पर से विश्वास हटाया जावे उस से सहायता नही ली जाय ओर उसका त्याग किया जाता है। जो भौतिक बल की ओर से सर्वथा निर्बल बन जाता है उसकी किंचित् भी सहायता नही लेता न उस पर

विश्वास ही करता है वही आध्यात्मिक बल प्राप्त कर सकता है। जहा भौतिक बल का सद्भाव है, वहा आध्यात्मिक वल का अभाव हे और जहा आध्यात्मिक बल का सद्भाव है, वहा भोतिक बल का अभाव है। ये दोनो वल परस्पर विरोधी हैं, इसलिए कोई भी व्यक्ति स्वय मे इन दोनो मे से किसी एक ही बल को रख सकता है।

आध्यात्मिकबल को रामबल या परमात्मिक शक्ति भी कहा जाता है। जिसमे यह बल है, वह व्यक्ति किसी प्रकार की सासारिक इच्छा–कामना नही करता, न इस बल के द्वारा कोई सासारिक कार्य ही करना चाहता है। वास्तव मे जिसको किसी प्रकार की सासारिक कामना है, उसमे यह बल हो ही नहीं सकता। यह बल तो उसी मे होता है जो सासारिक कामना से निवृत्त हो गया है और जिसने अपने शरीर तक का ममत्व त्याग दिया है। ऐसे व्यक्ति मे आध्यात्मिक बल आप ही आप प्रकट हो जाता है तथा फिर उसका कोई कार्य शेष भी नही रहता। आध्यात्मिक बल कहीं बाहर से नहीं आता। प्रत्येक आत्मा मे अनन्त बल–वीर्य है परन्तु वह बल–वीर्य भोतिक वस्तु की कामना के आवरण से ढका रहता हे। यह आवरण जैसे–जैसे हटता है आध्यात्मिक बल वैसे ही वैसे प्रकट होता है ओर जिसमे पूर्ण आध्यात्मिक बल प्रकट हो जाता है, भौतिक बल उसका कुछ नही बिगाड सकता।

सुदर्शन सेठ अपना भोतिक बल उसी समय से त्याग चुका था जब से वह पौषध–व्रत धारण करके पोषधशाला मे बैठा था। इसी कारण पडिता द्वारा उठाये जाने पर भी वह कुछ नहीं बोला, न उसने किसी भोतिक शक्ति का ही प्रयोग किया। पश्चात् राजमहल मे रानी के अनुचित प्रयत्न पर, सिपाहियो द्वारा पकडे जाने पर, राजा एव दूसरे लोगो द्वारा पूछताछ की जाने पर और शूली की आज्ञा सुनाई जाने पर भी वह निर्बल ही बना रहा कुछ भी नही बोला, न उसने कोई शारीरिक प्रयत्न ही किया। वह भोतिक बल त्यागकर सर्वथा निर्बल बन गया था। देखना हे कि इस निर्बल बनने का क्या परिणाम हुआ ओर उसकी रक्षा किस प्रकार हुई।

राजा की आज्ञानुसार सुदर्शन को शूली पर चढाने का समय ओर स्थान नियत किया जाकर नगर मे यह घोषणा कराई गई कि सुदर्शन सेठ ने अमुक अपराध किया हे। इसलिए महाराजा की आज्ञानुसार उसको अमुक समय अमुक स्थान पर शूली दी जावेगी सब लोग देखने के लिए उपस्थित हो। यह घोषणा होते ही नगर मे हाहाकार मच गया। सब लोग यही कहन

लगे कि आज यह नगर विधवा की तरह अनाथ हो जावेगा। दीन–दुखियो का दुख सुनने मिटाने वाला कोई न रहेगा। इस तरह कहते हुए लोग बहुत ही विकल हुए लेकिन अन्त मे विवश यह कहकर चुप रहते थे कि जब सुदर्शन बोलता ही नही है, तब कोई क्या कर सकता है?

नियत समय से पूर्व सुदर्शन सेठ को वे वस्त्र पहनाये गये, जो शूली पर चढाने जाने वाले व्यक्ति को पहनाये जाते थे। फिर सिपाही लोग सुदर्शन को बाजार मे होते हुए उस स्थान के लिए ले चले, जो शूली देने के लिए नियत था। सुदर्शन के आगे–आगे वह बाजा भी बजता जाता था, जो शूली के अपराधी के आगे लोगो को ज्ञात करने के लिए बजा करता था, सारे नगर मे यह बात मालूम हो ही गई थी कि सुदर्शन सेठ को अमुक समय पर शूली दी जावेगी इसलिए बाजे की ध्वनि सुनकर सब लोग सुदर्शन को देखने के लिये दौडे। शूली पर लगाये जाने वाले अपराधी के वेश मे सुदर्शन को देखकर नगर के स्त्री पुरुष मे त्राहि–त्राहि मच गई। कोई सुदर्शन को निरपराधी ठहरा कर उसे शूली दी जाने की आज्ञा को अन्याय ठहराता था। कोई सुदर्शन के विषय मे दी गई राजा की आज्ञा उचित बताता था। कोई सुदर्शन को न बोलने के कारण मूर्ख कहता था। कोई अभया की निन्दा करता था और कोई मनोरमा की निन्दा करता था। कोई सुदर्शन के रूप, सौन्दर्य एव उसकी युवावस्था पर दया खाता था। कोई सुदर्शन की पत्नी एव उसके पुत्रो के भविष्य की चिन्ता करता था और कोई शूली दी जाने की प्रथा की ही निन्दा करता था। इस प्रकार बाजार मे कोलाहल मचा हुआ था। नगर के चौराहे और तिराहे पर सुदर्शन को मध्य मे खडा करके सिपाही लोग राजा का वह निर्णय सुनाते जाते थे कि जिसके अनुसार सुदर्शन को शूली लगाने के लिए ले जाया जा रहा था। जिससे लोगो को यह ज्ञात हो जावे कि सुदर्शन को शूली क्यो दी जाती है और भविष्य मे कोई व्यक्ति इस तरह का अपराध न करे।

शूली पर चढने के लिए जाते हुए सुदर्शन के साथ जुलूस की तरह स्त्री–पुरुषो की भीड थी। सुदर्शन को लिए हुए सिपाही लोग जैसे–जैसे आगे बढते जाते थे साथ के स्त्री–पुरुषो की सख्या भी वेसे ही वैसे बढती जाती थी। भीड के लोगो मे से कोई तो कहता था कि यह सेठ बडा ही धर्म ढोंगी था। जब राजा की आज्ञानुसार सब लोग नगर से बाहर जाने लगे थे तब हमने इससे भी चलने के लिए कहा था। लेकिन इसने धार्मिकता का ढोंग करने के लिए उत्तर दिया कि–कल चातुर्मास की अतिम पक्ष–तिथि हे और पोषध करके प्रतिक्रमण करूगा। इस तरह धर्म की ओट लेकर नगर मे

रहा और रात के समय रानी से दुराचार करने के लिए राजमहल मे गया। ऐसे लोगो से हम लोग ही अच्छे हैं, जो धर्म का ढोग भी नहीं करते ओर पर–स्त्री के लिए दूसरे के घर मे भी नहीं घुसते। कोई कहता था कि यह कैसा मूर्ख है? शूली लगने जा रही है, फिर भी कुछ नही बोलता। कोई कहता था, बोले भी किस तरह? जब अपराध किया है, तब किस मुह से बोले? कोई कहता था कि इसकी पत्नी कैसी निठुर हे, जो लोगो के कहने पर भी पति को समझाने के लिए नहीं गई। कोई कहता था कि उसको इस तरह के पति की आवश्यकता नही है। वह तो चाहती है कि इस तरह के धर्म–ढोगी पति से छुटकारा मिले तो अच्छा है। कुछ लोग इस सबध मे मौन थे और कुछ लोग कहते थे कि सेठ न मालूम किस उद्देश्य से चुप है तथा शूली चढने जा रहा है। बोलने पर सेठ शूली से बच सकता है, फिर भी यह क्यो चुप है इस बात को अपन नहीं जानते। ऐसी दशा मे इसकी या मनोरमा की निन्दा करने का अपने को क्या अधिकार है? इस प्रकार लोग भिन्न–भिन्न तरह की बाते करते थे। कोई सुदर्शन की निन्दा करता था कोई मनोरमा की निन्दा करता था और कोई राजा या रानी की निन्दा करता था। लेकिन अधिकाश लोग सुदर्शन की निन्दा करने वाले और उसे मूर्ख कहने वाले ही थे। सब लोगो की बाते सुनकर भी सुदर्शन उसी तरह चुप, शात ओर प्रसन्न था, जिस प्रकार वह पौषध मे पडिता द्वारा उठाकर महल मे आने पर रानी की बाते सुनकर ओर राजा मन्त्री एव प्रजा के प्रतिनिधियो के आग्रह पर तथा शूली लगाये जाने की आज्ञा सुनकर चुप, शात एव प्रसन्न था। वह तो यही सोचता था कि यद्यपि मेरे चुप रहने के कारण बहुत लोग मेरी निन्दा करते हैं, मुझे अपराधी समझते हैं तथा इसी कारण मेरे को शूली चढाने के लिए ले जाया जा रहा हे लेकिन इन सब बातो के कारण मुझे अपने निश्चय पर से विचलित न होना चाहिए अधिकाश लोगो की बातो के कारण मुझे वह कार्य कदापि न करना चाहिए जो स्वय के निश्चय और धर्म के विरुद्ध हो।

सुदर्शन को लिए हुए सिपाही लोग सुदर्शन के घर के सामने गये। वे सुदर्शन के घर के सामने इस विचार से ठहर गये कि जिसमे सुदर्शन के घर के लोग सुदर्शन से अन्तिम भेंट कर ले। उनके हृदय मे भी सुदर्शन के प्रति स्नेह था। इसलिए वे सुदर्शन के घर के सामने कुछ देर तक ठहरे रह लकिन सुदर्शन को देखने के लिए न तो मनोरमा ही निकली न उसक पुत्र ही निकल। लोगो ने मनोरमा के पास बहुत सन्देश भेजे परन्तु मनोरमा तो यह निश्चय करके परमात्म–ध्यान मे बेठी ही रही कि मैं अपने पति का दर्शन तभी करुगी

जब उन पर लगा हुआ कलक दूर होगा। जब तक उन पर कलक लगा हुआ है तब तक मैं पति का मुह कदापि न देखूगी। मेरा और पति का सबध सत्य तथा धर्म के नाते है। जब तक दोनो सत्य और धर्म पर हैं तभी तक दोनो का सबध भी है लेकिन जब सत्य धर्म नही है, तब पति–पत्नी सबध भी नही है। पति पर जो कलक लगा हुआ है वह यदि सही है, तब तो मेरा तथा उनका कोई सबध ही नही रहा और इस कारण मैं उनका मुह देखूगी भी क्यो? ऐसी दशा मे मुझे यही मानना चाहिए कि मेरे पति को शूली नही दी जा रही है, किन्तु अधर्म–असत्य को शूली दी जा रही है, जो बुरा नही है। और यदि मेरे पति मे सत्य–धर्म विद्यमान है तो उनको कदापि शूली नही लग सकती। क्योकि सत्य–धर्म के होते हुए भी उनको शूली लगना सत्य–धर्म को शूली लगना होगा लेकिन सत्य–धर्म को कोई शूली नहीं लगा सकता। फिर मैं पति के विषय मे किसी प्रकार की चिन्ता क्यो करू? यदि पति मे असत्य–अधर्म होगा तो उनको शूली से कोई बचा नहीं सकता और सत्य–धर्म होगा तो कोई शूली पर चढा नही सकता। इसलिए मैं पति का दर्शन तभी करूगी, जब उनका सत्य–धर्म प्रकट होगा और उन पर लगा हुआ कलक दूर होगा।

जब सुदर्शन के घर का कोई भी मनुष्य सुदर्शन को देखने के लिए नही निकला तब सिपाही लोग सुदर्शन को लेकर आगे बढे। उस समय भी किसी ने तो मनोरमा की निन्दा की और किसी ने सुदर्शन के लिए यह कहा कि सेठानी के साथ इसका व्यवहार ही ऐसा रहा होगा इसी से वह अतिम बार भी मुह देखने के लिए नही निकली, न अपने पुत्रो को ही आने दिया। सुदर्शन के साथ के स्त्री–पुरुष इसी प्रकार की अनेक बाते करते जाते थे।

सुदर्शन को लेकर सिपाही लोग उस स्थान पर गये, जो सुदर्शन को शूली दी जाने के लिए नियत था और जहा शूली गडी हुई थी। वहा सुदर्शन को शूली के समीप खडा कर दिया। सब दर्शक लोग चारो ओर ऊचे–ऊचे स्थानो पर खडे होकर यह देखने लगे कि सुदर्शन को किस तरह शूली पर चढाया जाता है। सब दर्शको को शान्त करके एक उच्च कर्मचारी ने सुदर्शन तथा दर्शको को राजा का वह निर्णय सुनाया जिसमे सुदर्शन पर लगाये गये अभियोगो का वर्णन था और सुदर्शन को शूली पर चढाये जाने की आज्ञा दी गई थी। यह आज्ञा सुनाकर उस राज कर्मचारी ने सुदर्शन से कहा कि–महाराजा की आज्ञानुसार हम तुम से यह कहते हैं कि तुम अपना मोन भग करके इस घटना के विषय मे कुछ कहो जिससे महाराजा अपनी आज्ञा पर फिर विचार करे। राज्य के उच्चाधिकारी ने सुदर्शन से ऐसा तीन बार कहा परन्तु सुदर्शन

कुछ भी नहीं बोला, किन्तु मौन ही बना रहा। दर्शको मे से भी अनेको ने सुदर्शन से बोलने के लिए आग्रह किया, लेकिन सुदर्शन चुप ही बना रहा।

राज्य के उच्चाधिकारी और दर्शको के कहने पर भी जब सुदर्शन कुछ नही बोला, तब उच्चाधिकारी ने सुदर्शन से कहा कि—जब तुम बोलते ही नही, तब तुम्हे महाराजा की आज्ञानुसार शूली पर चढाना ही होगा। इसलिए तुम शूली पर चढने के लिए तैयार हो जाओ। शूली पर चढाने से पहले तुम्हे कुछ समय अपने इष्ट का स्मरण करने एव अपने कृत्य के लिए पश्चाताप करने को दिया जाता है। तुम थोडे समय मे अपने कृत्य के लिए पश्चाताप और अपने इष्ट का ध्यान—स्मरण कर लो।

अधिकारी का यह कथन सुनकर सुदर्शन सेठ ने सागारी सन्थारा किया। उसने अपने मन मे कहा कि—हे, प्रभो मैं तेरी साक्षी से यह निश्चय करता हू कि यदि मैं जीवित रहा तब तो मेरे जो व्रत—नियम पहले से हैं वे हैं ही, लेकिन यदि मर गया तो उस दशा के लिए मैं अठारह पापो का तीन करण तीन योग से सदा के लिए त्याग करता हू और ससार के सभी जीवो को मित्र मानता हू। मेरे हृदय मे किसी के भी प्रति वैर नहीं है। मेरी जिस अभया माता की कृपा से मुझे शूली पर चढाया जा रहा है उसके प्रति भी मेरे हृदय मे वैर नही है, किन्तु उसे मैं मेरे पर उपकार करने वाली मानता हू। उसी की कृपा से आज मैं तीन करण तीन योग से अठारह पापो का इस प्रकार त्याग कर सका हू। इसलिए मैं यही चाहता हू कि मेरे हृदय मे अभया या ओर किसी के प्रति किंचित् भी वैर न आवे। मैं सभी को अपना मित्र मानू।

इस तरह अठारह पापो का त्याग करके ओर सब जीवो से क्षमा मागकर सेठ ने चिरपरिचित नवकार—मन्त्र का ध्यान किया। सुभग के भव मे भी सेठ ने नवकार—मन्त्र के ध्यान मे ही अपने प्राण त्यागे थे ओर इस भव मे भी उसने शूली चढने से पहले नवकार—मन्त्र का ही ध्यान किया। उसके हृदय मे किसी के प्रति न तो वेर भाव ही था न राग—द्वेष ही था। सुदर्शन सेठ के नवकार—मन्त्र के ध्यान ओर उसके साथ लगी हुई सत्य—शील की शक्ति से देवताओ के आसन कम्पित हो उठे। उन्होने अपने अवधिज्ञान द्वारा देखा तो उन्हे ज्ञात हुआ कि सुदर्शन सेठ को शूली पर चढाया जा रहा हे। यह जानकर उन लोगो ने सोचा कि जिसके हृदय म किसी के प्रति वेर नहीं हे तथा नवकार—मन्त्र का ऐसा अखड ध्यान हे जिसने पूर्व भव म भी नवकार—मन्त्र के ध्यान मे ही शरीर त्यागा था जो शीलवान हे और शील भग न करन क

कारण ही जिसे शूली दी जा रही है, उस सुदर्शन की रक्षा अवश्य ही करनी चाहिए। यदि हमने ऐसा न किया तो हमारी गणना पतितो मे होगी।

इस प्रकार सोचकर देवो ने सुदर्शन की रक्षा का निश्चय कर लिया। राज्य के उच्चाधिकारी ने सुदर्शन को अपने इष्ट का ध्यान करने के लिए जो समय दिया था वह समय समाप्त होते ही राजा के सुभटो ने सुदर्शन को शूली पर बैठाने के लिए उठाया। सुदर्शन को शूली पर बैठाया जा रहा है यह देखकर लोग हाहाकार करने लगे। हाहाकार से उत्पन्न कोलाहल के बीच राजा के सिपाहियो ने सुदर्शन को शूली पर रखा लेकिन उन्होने जैसे ही सुदर्शन को शूली पर रखा, वैसे ही शूली के स्थान पर सिहासन प्रकट हो गया तथा शूली पर रखा जाने के बदले सुदर्शन सिहासन पर रखा गया और देवता लोग उस पर चवर–छत्र करके कहने लगे कि हे शील पालने वाले, आपकी जय हो? आपने प्राण देना स्वीकार किया, लेकिन पर–दारा–गमन करना स्वीकार नही किया इसलिए आपकी जय हो। शील पालन के साथ ही आपने मैत्री भावना का भी अनुपम परिचय दिया। जिसके प्रपच के कारण आपको शूली दी जा रही थी उसके प्रति भी आपके हृदय मे द्वेष नहीं है, आप उसे भी उपकार करने वाली मानते हैं, इसलिए आपकी जय हो। जिस परिस्थिति मे पडने पर बडे–बडे ऋषि मुनियो को भी शील बचाना कठिन है उस कठिन परिस्थिति मे भी अपने शील की रक्षा की, इसके लिए आपको अनेक धन्यवाद है। आप ऐसे शील पालने वालो के प्रताप से ही हम लोगो के आसन दृढ है। आपने शील की रक्षा करके हम देवो के लिए एक उत्तम आदर्श उपस्थित किया है। इसलिए हम पुन–पुन यही कहते हैं कि आपको धन्य है और आपकी जय हो।

सुदर्शन को शूली पर बैठाया जा रहा है यह देखकर दर्शक लोग हाहाकार कर रहे थे और सोच रहे थे अभी सुदर्शन का मस्तक फाड कर शूली निकल जावेगी लेकिन उन्होने जब यह देखा कि सुदर्शन शूली के बदले सिहासन पर बैठा है तथा उस पर चवर–छत्र हो रहे हैं ओर देवगण उनकी महिमा कर रहे हे तब उन्हे आश्चर्य सहित अत्यधिक प्रसन्नता हुई। वे सब लोग हर्षपूर्वक सुदर्शन का जय–जयकार करने लगे, उन लोगो मे से कोई तो कहने लगा कि सुदर्शन को लोग अब तक अपराधी जानते थे और न बोलने के कारण मूर्ख कहते थे लेकिन सुदर्शन अपराधी नहीं है और उसके न बोलने मे क्या रहस्य था यह अब प्रकट हो गया। सुदर्शन पर लगा हुआ कलक रूपी राहु रूप दूर हुआ। अब सबको ज्ञात हो गया कि सुदर्शन निरपराधी एव

शीलवान है। कोई कहने लगा कि हम तो पहले ही जानते थे कि सुदर्शन सदाचारी है और वह रानी के महल मे कदापि नही जा सकता उस पर रानी के महल मे जाने और रानी पर बलात्कार करने का जो अभियोग लगाया गया है, वह झूठा है। अन्त मे हमारा यह कथन सही निकला ओर सत्य की जय हुई। कोई कहता कि यह सब अभया का फैलाया हुआ त्रियाचरित्र था। सेठ ने उसकी बात न मानी होगी इसी से उसने सेठ पर अभियोग लगाकर राजा द्वारा उसके लिए शूली की आज्ञा दिलाई होगी।

प्रसन्न होत हुए लोग इस तरह अनेक प्रकार की बाते करते थे। कोई सुदर्शन की प्रशसा करता था और कोई मनोरमा की। कोई कहता था कि सुदर्शन को अपने सत्य पर केसा दृढ विश्वास है कि अन्त तक सत्य के ही सहारे रहा और कोई कहता था कि मनोरमा को अपने पति पर कैसा विश्वास है कि सब लोगो के इतना कहने पर भी वह परमात्म–ध्यान मे ही बैठी रही। इसी प्रकार कोई रानी के लिए यह कहता था कि रानी कैसी दुष्टा तथा दुराचारिणी है कि उसने इस तरह के शीलवान पुरुष पर भी झूठा कलक लगाकर उसे शूली दिलाने का प्रयत्न किया और कोई राजा के लिए कहता था कि राजा बिल्कुल ही रानी के अधीन और उसका दास है, तभी तो उसने रानी के कथन पर विश्वास करके ऐसे पुरुष के लिए शूली पर चढाने की आज्ञा दे दी। कोई–कोई यह भी कहता था कि जब सुदर्शन किसी की निन्दा नहीं करता है, तब अपन किसी की निन्दा क्यो करे।

शूली के स्थान पर सिहासन और देवो द्वारा सुदर्शन की महिमा देखकर वहा उपस्थित राजकर्मचारी भी आश्चर्यचकित हुए। उन्होने तत्क्षण यह समाचार राजा के पास भेजा और राजा से यह पुछवाया कि अब क्या करना चाहिए? कर्मचारियो द्वारा भेजा गया–शूली का सिहासन बनने सुदर्शन के बचने ओर देवो द्वारा सुदर्शन की महिमा का समाचार सुनकर राजा को भी बहुत आश्चर्य हुआ। उसके हृदय मे अनेक प्रकार के विचार होने लगे। वह उसी समय दौडा हुआ उसी स्थान पर आया ओर हाथ जोडकर सुदर्शन से कहने लगा कि–हे महानुभाव मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने आप ऐसे सत्पुरुष को शूली पर चढाने की आज्ञा दी यह मेरा अपराध हे। मैंने केवल ऊपर की ही बाते देखकर आपको अपराधी ठहरा दिया। में अज्ञानी वास्तविक बात को जानता भी केसे? परन्तु अन्त मे सत्य उसी प्रकार प्रकट हुआ जिस प्रकार बादलो को चीर कर सूर्य प्रकाशित होता हे। आपके लिए शूली का सिहासन बन गया ओर देवो ने आपकी महिमा की इसलिए अब कोन कह सकता हे कि आप शीलवान नही हे? लेकिन इससे पहले आपके मोन रहन के कारण

मैंने और मेरे साथ दूसरो ने यही माना कि आप अपराधी हैं। इस प्रकार अज्ञान के कारण मेरे से यह अपराध हुआ है। आप मेरा यह अपराध क्षमा करो।

यह ससार ऐसा ही है। इसमे रहने वालो के लिए महापुरुषो का कहना है कि–

असइतु मणुस्सेहि मिच्छादडो पउजई।
अकारिणोत्थ बज्झेज्जिा मुच्चई कारओ जणो।।

उत्त॰ 9/30

अर्थात्–ससार मे रहने वाले मनुष्यो द्वारा अनेक बार मिथ्यादण्ड (अनर्थदण्ड) दिया जाता है, अनेक निरपराधियो को मार डाला जाता है और अनेक अपराधियो को छोड दिया जाता है, दण्ड नहीं दिया जाता।

राजा को देखकर उसका आदर करने के लिए सुदर्शन सिहासन पर से नीचे उतरने लगा था, लेकिन राजा ने उससे कहा कि आप सिहासन पर ही बैठे रहिये जिससे सब लोग अच्छी तरह से आपका दर्शन करके अपने नेत्र सफल कर सके और अपने पापो का पश्चात्ताप कर सके। इस प्रकार कहकर राजा दधिवाहन ने सुदर्शन को सिहासन से नीचे नही उतरने दिया।

शूली मिट कर सिहासन हो जाने आदि बाते देखकर कुछ लोग दौडे हुए सुदर्शन के घर गये। उन्होने सुदर्शन के नौकरो द्वारा मनोरमा के पास सब समाचार की सूचना भेजी। मेरे पति को दी जाने वाली शूली सिहासन बन गई तथा मेरे पति बच गये हैं यह जानकर मनोरमा को जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन कौन कर सकता है? उसने परमात्मा को धन्यवाद देते हुए कहा कि–हे प्रभो तेरी ही कृपा से मेरे पति पर लगा हुआ कलक दूर हुआ है। यद्यपि मैं जानती थी कि मेरे पति सर्वथा निरपराधी हैं और वे पर–स्त्री को माता मानते है लेकिन न मालूम किन अज्ञात कारणो से उन पर यह कलक लगा था। तेरी कृपा से पति पर लगा हुआ कलक मिट गया। मुझे पति के बच जाने से उतनी प्रसन्नता नही है, जितनी प्रसन्नता उन पर लगा हुआ कलक मिट जाने से है। क्योकि हाड–मास से बना हुआ यह शरीर नाश तो होगा ही परन्तु किसी प्रकार के कलक के साथ इसका नष्ट होना बुरा है।

इस प्रकार परमात्मा को धन्यवाद देकर मनोरमा ने अपने पुत्रो से कहा कि–पुत्रो तुम्हारे पिता को जिस शूली पर चढाया जा रहा था, वह शूली सिहासन बन गई है और देवगण तुम्हारे पिता की महिमा कर रहे हैं। इसलिए चलो अपन भी चलकर उनका दर्शन करे और उन्हे समारोहपूर्वक घर लावे।

पुत्रो सहित मनोरमा उठ खडी हुई। उसने पति का दर्शन करने के लिए जाने की तैयारी की। उसकी सखी–सहेलिया तथा उसके पडोस की स्त्रिया भी उसके साथ हुई। सब स्त्रिया मगल गीत गाती हुई उसी स्थान पर आई, जहा सुदर्शन सेठ सिहासन पर बैठा हुआ था और राजा उससे अपने अपराधो की क्षमा माग रहा था। मनोरमा को देखकर सब लोग उसकी और सुदर्शन सेठ की जय–जय बोलने लगे। भीड ने मनोरमा के लिए सुदर्शन के सिहासन तक मार्ग कर दिया। पुत्रो सहित मनोरमा अपने पति के सामने गई। सुदर्शन ने मनोरमा और अपने पुत्रो को तथा मनोरमा और उसके पुत्रो ने सुदर्शन को देखा। उन सबके हृदय मे प्रेम का सागर उमड पडा। सुदर्शन और मनोरमा को देखकर वहा उपस्थित लोग कहने लगे कि आज यह स्थान एक प्रकार का तीर्थस्थान बन गया है। अब तक इस स्थान पर लोगो को शूली ही शूली दी गई, ऐसा आनन्द कभी नही आया। सीता–राम की तरह इस मनोरमा–सुदर्शन की जोडी की कृपा से ही यहा पर यह आनन्द हुआ है। यह आनन्द प्राप्त कराने मे सुदर्शन और मनोरमा का समान उपकार है। मनोरमा सुदर्शन की अर्द्धांगी है। आधा अग सिहासन पर रहे और आधा नीचे रहे यह ठीक नहीं है, इसलिए देवी मनोरमा को भी सुदर्शन के समीप सिहासन पर बैठाना चाहिए।

राजा ने लोगो के इस कथन का समर्थन किया और मनोरमा से सुदर्शन के समीप सिहासन पर बैठने की प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना और लोगो के अनुरोध से मनोरमा सुदर्शन के समीप सिहासन पर बैठी। सिहासन पर बैठी हुई इस जोडी को लोग धन्यवाद देने लगे और दोनो का जय–जयकार करने लगे। उस समय लोगो के हृदय मे अपूर्व उत्साह था। वह दृश्य देखने के लिए देवगण भी विमानो मे बेठे हुए आकाश मे मडरा रहे थे और सुदर्शन की जय बोल रहे थे।

सुदर्शन की उदारता

आत्मार्थे जीवलोकेऽस्मिन्, को न जीवति मानव ।
वर परोपकारार्थे यो जीवति स जीवति।।

अर्थात्–इस लोक मे स्वय के लिए कोन जीवित नही रहता? अपने लिए तो सभी जीवित हें परन्तु वास्तव मे जीवित वही हे जो दूसरे का उपकार करने के लिए जीता है।

उदार पुरुष स्वय को प्राप्त वस्तु का उपयोग केवल स्वय ही नही करते किन्तु उसका लाभ दूसरे को भी देते हैं। यह बात दूसरी है कि वह वस्तु ऐसी न हो जिसका लाभ दूसरे को दिया जा सके अन्यथा वे स्वय को प्राप्त वस्तु का लाभ सभी को देते हैं। उनके द्वारा दिये जाने वाले उस लाभ को कोई स्वय ही न ले तो इसका तो वे कर ही क्या सकते है, लेकिन उदार पुरुषो की चेष्टा तो यही रहती है कि मुझे जो अच्छी वस्तु प्राप्त हुई है उसका लाभ मे दूसरे को भी दू। भगवान् तीर्थंकर या साधु जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह अपने आत्मकल्याण के लिए ही, फिर भी वे अपने उस ज्ञान को केवल अपने ही लिए गोप कर नही रखते किन्तु उसका लाभ सभी जीवो को देने का पयत्न करते हैं वे सभी का कल्याण चाहते हैं, किसी का तो बुरा चाहते ही नही। जिसके हृदय मे उनके पति शत्रुता का भाव है जिसने उनके साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया है वे ज्ञानी पुरुष उसका भी कल्याण ही चाहते हैं। क्योकि वे किसी जीव को अपना शत्रु तो मानते ही नही। उदार पुरुषो का यह स्वभाव ही होता है।

सुदर्शन भी उदार प्रकृति का व्यक्ति था। उसने अपने पद अपनी पतिष्ठा और अपनी सम्पत्ति का लाभ तो दूसरो को दिया ही, लेकिन धार्मिक कृत्य द्वारा उसे आध्यात्मिक शक्ति विषयक जो अनुभव हुआ, उसे भी उसने गोप कर नही रखा किन्तु उसका भी लाभ सबको दिया ओर सबको यह भी बताया कि यह शक्ति कैसे प्रकट की जा सकती है। इतना ही नही किन्तु उसने उन लोगो के लिए उदारता का ही व्यवहार किया, जिनके कारण उसको शूली पर लगाया गया था। कपिला, पडिता तथा अभया के कृत्य एव षड्यत्र का ही यह परिणाम था कि राजा ने सुदर्शन को शूली पर चढाने की आज्ञा दी थी। उन लोगो का यह अपराध कैसा भयकर था। लेकिन सुदर्शन ने उनके लिए भी उदारता का ही व्यवहार किया। कपिला, पडिता और अभया आदि मे से लोगो की जबान पर केवल अभया का ही नाम था, क्योकि प्रकट मे अभया के कारण ही सुदर्शन को शूली पर चढना पडा था। लोग यही जानते थे कि अभया ने ही सुदर्शन को शूली दिलाई है। राजा भी ऐसा ही समझता था। सुदर्शन को शूली मिलने मे कपिला और पडिता आदि भी कारण–रूप है यह बात लोगो को ज्ञात न थी। सुदर्शन ने यह अप्रकट बात तो प्रकट की ही नही लेकिन जिसका नाम प्रकट हो चुका था उस अभया के लिए भी अनुपम उदारता का ही परिचय दिया।

सुदर्शन के समीप मनोरमा को बैठा कर उपस्थित लोगो ने सुदर्शन से यह प्रार्थना की कि अब आप अपने मुख से उपदेशप्रद दो शब्द सुनाने की

कृपा कीजिये, तथा यह बतलाइए कि आप किस निश्चय पर थे जिससे बहुत कहने–सुनने पर भी आप कुछ नहीं बोले और अन्त मे शूली का सिहासन बन गया। हम लोगो के मन मे आपका वह निश्चय और आपके हृदय की वह प्रबल भावना जानने की बहुत ही उत्कण्ठा है। अत आप हमारी यह इच्छा पूर्ण करने का कष्ट कीजिये।

राजा तथा अन्य लोगो की इस प्रार्थना को स्वीकार करके सुदर्शन कहने लगा कि–प्रिय भाइयो और बहिनो! आप लोग मुझसे मेरी भावना और मेरा वह निश्चय जानना चाहते हैं, जिसके अनुसार मैं शूली पर चढने तक भी मौन रहा, लेकिन मेरी समझ मे नही आता कि इस सबध मे मैं आप लोगो से क्या कहू और वह निश्चय तथा वह भावना किस प्रकार व्यक्त करू। उस निश्चय तथा भावना का ज्ञान हृदय को है लेकिन हृदय के जीभ नहीं है और जिसमे बोलने की शक्ति है वह जीभ उस निश्चय तथा उस भावना को जानती नही है। ऐसी दशा मे मैं उस निश्चय तथा उस भावना को प्रकट करू तो कैसे? यद्यपि मन की सहायता से वाणी उस निश्चय और भावना को कह सकती है फिर भी वाणी मे यह शक्ति नहीं है कि वह मन तथा आत्मा के अनुभव को पूरी तरह व्यक्त कर सके। भगवान तीर्थंकर भी ज्ञान मे जो कुछ देखते हैं, वह वाणी द्वारा पूरी तरह कह नही सकते किन्तु उसका अनन्तवा भाग ही कहने मे आता है। जब भगवान तीर्थंकर की वाणी मे भी यह शक्ति नही है तब मुझ पामर की वाणी मे यह शक्ति कहा से हो सकती है कि हृदय और आत्मा के अनुभव को पूरी तरह कह सके। मेरे हृदय और मेरे आत्मा का अनुभव आपके जानने मे तभी आ सकता है जब आप स्वय भी अनुभव करे। वह वस्तु तो स्वय के अनुभव से ही जानने योग्य है किसी से सुनकर जानने मे नही आ सकती, न कोई अपने अनुभव को पूरी तरह व्यक्त करने मे समर्थ ही है। ऐसा होते हुए भी मैं आपको वे सैद्धातिक बाते सुनाता हू, जिनकी सहायता से आप भी उस निश्चय और वैसी ही भावना को अपने मे पैदा कर सकते हैं जो निश्चय और जिस भावना को आप मेरे से सुनना चाहते हैं अथवा जिसके कारण आप सब मेरा सम्मान कर रहे है। आप लोग इस समय जो मेरा सम्मान कर रहे हैं वह इस हाड–मास से बने शरीर के कारण नही कर रहे हैं, किन्तु उस निश्चय और भावना के कारण ही कर रहे है। मुझे यह बात पहले से मालूम न थी कि मैं शूली से बच जाऊगा और शूली भी सिहासन बन जायगी। मैं तो यही सोचता था कि मुझे शूली द्वारा प्राण त्याग करने होगे। फिर भी मैं अपने निश्चय और अपनी भावना पर दृढ रहा तथा सब के कहने

पर भी कुछ नही बोला। मै इसी विचार से कुछ नही बोला कि मेरे बोलने से किसी को कष्ट होगा। मैने यह निश्चय किया था कि मेरा यह भौतिक शरीर भले ही नष्ट हो जावे लेकिन इसकी रक्षा के लिए किसी दूसरे को कष्ट न होने दूगा। यद्यपि मेरे मौन रहने के कारण मुझे अनेक प्रकार के अपवाद सुनने पड़े फिर भी मैं अपने निश्चय से विचलित नही हुआ। इस दृढता का ही यह पताप है कि मेरे पर लगा हुआ सब कलक भी मिट गया और मैं शूली से भी बच गया।

मुझे गुरु द्वारा धर्म की यह शिक्षा मिली है कि शरीर और आत्मा दोनो भिन्न हैं। शरीर जड है और आत्मा चैतन्य है। शरीर के लाभ–हानि से आत्मा का कोई सबध नही है। आत्मा को तो सत्य–शीलादि सद्गुणो से ही लाभ हो सकता है और इन सद्गुणो का अभाव तथा इनके विरोधी दुर्गुणो का सद्भाव ही आत्मा की हानि करने वाला है। यदि सत्य–शीलादि सद्गुणो का पालन करते हुए शरीर नष्ट भी हो जावे, तब भी आत्मा को तो लाभ ही है लेकिन इन गुणो को नष्ट करके शरीर की रक्षा करने पर आत्मा को तो हानि ही उठानी पडेगी। भौतिक और आध्यात्मिक शक्ति मे से आध्यात्मिक शक्ति ही पबल है और उसी का अधिक महत्व है, परन्तु भौतिक शक्ति की तरह आध्यात्मिक शक्ति पत्यक्ष नहीं है। इसलिए लोग अदृश्य शक्ति को भूलकर दृश्य शक्ति मे पड रहे हैं और इसी पर विश्वास करते हैं, अदृश्य शक्ति पर विश्वास नही करते। इस भूल के कारण ही आत्मा को बार–बार जन्म–मरण करना पडता है तथा अनेक यातनाए भोगनी होती हैं। आत्मा जब तक अपनी इस भूल को नहीं निकालता अदृश्य शक्ति पर विश्वास नहीं करता और सत्यशीलादि सद्गुणो को नही अपनाता तब तक इसका कल्याण नहीं होता, वह मोक्ष की तरफ ऊर्ध्वगामी नहीं होता, किन्तु ससार मे भटकता रहता है। इस बात को समझकर जिनसे आत्मा का कल्याण है उन सद्गुणो को अपनाना और जिनसे आत्मा को हानि उठानी पडती है उन दुर्गुणो को त्यागना इसी का नाम धर्म है।

गुरु की कृपा से मै इस धर्म को समझा हुआ था और मुझे इस पर ऐसा दृढ विश्वास था कि मैंने शूली पर चढना तो स्वीकार किया लेकिन इस धर्म को नही त्यागा। यानि सत्य और शील नष्ट नहीं होने दिया। इस धर्म पालन से ही अदृश्य शक्ति द्वारा शूली के स्थान पर सिहासन प्रकट हो गया। अदृश्य शक्ति द्वारा जो सहायता प्राप्त हुई उस सहायता की मैंने आकाक्षा भी नहीं की थी। यदि मै आकाक्षा करता तब तो मेरा सब धर्म पालन व्यर्थ

हो जाता। क्योकि कामना सहित किया गया धर्म कार्य प्राय व्यर्थ होता है। मैंने कोई कामना नही की थी। उस निष्काम धर्म पालन का ही यह प्रताप है कि शूली का सिहासन बना तथा आप सब लोग मेरा सम्मान कर रहे हैं। इसलिए मैं आप सब लोगो से भी निष्काम धर्म पालन के लिए कहता हू और यह कहता हू कि भौतिक दृश्य शक्ति को ही न देखो उसी को महत्व न दो किन्तु अदृश्य आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास करके उसे महत्व दो, तथा सत्य शील का इस तरह पालन करो कि चाहे प्राण भी जावे, लेकिन सत्यशील को कदापि न जाने दो।

सुदर्शन सेठ का यह उपदेश सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। जो लोग धर्म और ईश्वर पर विश्वास करते थे, वे तो प्रसन्न हुए ही लेकिन जिन लोगो को ईश्वर और धर्म पर विश्वास नही था, जो लोग ईश्वर और धर्म की निन्दा करके आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, वे लोग भी सुदर्शन का उपदेश सुनकर ईश्वर और धर्म पर विश्वास तथा आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने लगे। जो लोग पहले सुदर्शन को धर्म–ढोगी कहकर उसे बुरा बताते थे, वे लोग भी सुदर्शन की बडाई करते हुए अपने कथन और विचारो के लिए पश्चात्ताप करने लगे।

राजा आदि सब उपस्थित लोगो ने सुदर्शन से प्रार्थना की कि अब आप घर को पधारिये। लोगो की यह प्रार्थना सुनकर सुदर्शन ने सोचा कि मैंने पर–घर जाने का जब त्याग नही किया था उस समय मुझे कपिला के कपट–जाल मे फसना पडा। उस घटना पर से मैंने पर–घर जाने का त्याग कर दिया, लेकिन इस त्याग पर भी में शान्ति–पूर्वक न रह सका और जब मैं धर्मध्यान मे बैठा था, उस समय मुझे अभया के प्रपच मे फसना पडा। इस प्रकार यह ससार ही ऐसा है कि इसमे रहने वाले को किसी प्रकार शाति नही मिलती। इस ससार मे रहने वाले से किसी–न–किसी रूप मे दूसरे जीवो को कष्ट होता ही है। इसी बात को दृष्टि मे रखकर महात्मा लोग ससार त्याग कर सयम लेते हैं और फिर ससार मे न आना पडे इसका प्रयत्न करते हैं। वे सोचते हैं कि–

> **अवश्य यातारश्चिरतर मुखित्वाऽपि विषया।**
> **वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयमभूत्।।**
> **व्रजन्त स्वातन्त्र्यादतुल परितापाय मनस।**
> **स्वय त्यक्त्वा ह्येते, शम सुखमनन्त विदधति।।**

अर्थात्–विषयो को चाहे जितने दिन तक भोगो एक दिन व अवश्य छूट ही जावेगे। ऐसी दशा मे हम स्वय ही क्यो न त्याग द। विषय हमको छाड

और हम विषयो को छोडे, इन दोनो मे यह अन्तर है कि जब विषय हमको छोडेगे तब हमे दु ख होगा, लेकिन यदि हम स्वय विषयो को छोड देंगे तो हमको अनन्त सुख–शाति प्राप्त होगी।

इसी सिद्धान्त को दृष्टि मे रखकर महात्मा लोग सयम लेते हैं। मुझे भी सयम मार्ग अपनाना है और इस मार्ग को अपनाने पर मेरी आत्मा का कल्याण भी है लेकिन अभी जो लोग मेरे सहारे हैं, उनको आश्वासन देना तथा मेरे पर ससार का जो कार्यभार है, उससे निवृत्त होना आवश्यक है। इसलिए मुझे एकबार घर जाना चाहिये और सब व्यवस्था करके फिर सयम लेना चाहिये।

इस प्रकार विचार कर सुदर्शन ने राजा आदि का अनुरोध स्वीकार कर लिया। वह सबके साथ नगर मे चलने के लिए सिहासन से नीचे उतरने लगा लेकिन वहा उपस्थित लोगो ने सुदर्शन से कहा कि आप सिहासन से नीचे मत उतरिये किन्तु सिहासन पर बैठे रहिये। इस सिहासन को इसी तरह ले चलेगे जिससे सब लोग अच्छी तरह से आपका दर्शन कर सके।

लोगो ने सुदर्शन से अत्यधिक अनुरोध किया और सुदर्शन को सिहासन पर बैठे रहने के लिए विवश कर दिया। लोगो के आग्रह से सुदर्शन तो सिहासन पर बैठा रहा, लेकिन मनोरमा सिहासन पर से उतर कर अपनी सखियो के साथ हो गई। जिस सिहासन पर सुदर्शन बैठा हुआ था, सुदर्शन सहित वह सिहासन कुछ लोगो ने उठा लिया और सब लोग जय–जयकार करते हुए नगर की ओर चले। साथ मे जो स्त्रिया थीं, वे भी मगल गीत गाती जाती थी। उस समय का मनोहर दृश्य देखकर देवगण भी प्रसन्न हो रहे थे।

जब सुदर्शन का घर समीप आया तो मनोरमा आगे निकल कर अपने घर आई। उसने सोचा कि आज अनायास ही इन सब लोगो का मेरे यहा आगमन हो रहा है। यदि मैंने इन लोगों का उचित सत्कार न किया तो मैं गार्हस्थ्य धर्म से पतित मानी जाऊगी। इस प्रकार सोचकर मनोरमा ने अपनी सखियो और दासियो की सहायता से लोगो के स्वागत–सत्कार एव बैठने आदि का सब प्रबध किया। सुदर्शन को लेकर जब वह जुलूस सुदर्शन के घर पहुचा तब मनोरमा ने थाल मे मगल द्रव्य लेकर उसका स्वागत किया। सुदर्शन के साथ सब लोग सुदर्शन के घर गये। सुदर्शन का स्वच्छ तथा पवित्र घर देखकर राजा आदि सभी लोगो को बहुत प्रसन्नता हुई। सब लोग मनोरमा की प्रशसा करते हुए कहने लगे कि–जिस घर मे मनोरमा ऐसी श्राविका हो, वह घर इस तरह स्वच्छ रहे और उस घर की चीजे व्यवस्थित हो इसमे

आश्चर्य ही क्या है? कोई कहता था कि स्वर्ग को बहुत सुन्दर कहा जाता है ओर उसकी प्रशसा की जाती हे लेकिन स्वर्ग मे इस घर से अधिक सुन्दरता क्या होगी? कोई कहता था कि केवल सुन्दरता ही न देखो किन्तु घर का महत्व भी देखो। सुन्दरता मे तो स्वर्ग इस घर से बढकर भी हो सकता हे लेकिन महत्व की दृष्टि से वेचारा स्वर्ग इस घर की समता नहीं कर सकता स्वर्ग मे रहने वाले लोग ऐसी करणी नहीं कर सकते, जेसी करणी इस घर मे रहने वाले ने की है। शील पालने वालो मे शिरोमणि सुदर्शन सेठ इसी घर मे जन्मे तथा बडे हुए हैं ओर उन्होने इसी घर मे शील पालन का अभ्यास किया हे इसलिये इस घर की समता स्वर्ग भी नहीं कर सकता। स्वर्ग तो ऐसा स्थान है, जहा पुण्य क्षय होता हे। पुण्य का उपार्जन वहा नहीं हो सकता। इसी प्रकार मोक्ष के लिए की जाने वाली धर्मकरणी भी पूर्णतया स्वर्ग मे नहीं की जा सकती। ये सब काम तो मनुष्यलोक मे ही हो सकते हैं। इसके लिए देवताओ को भी मनुष्य लोक मे ही आना पडता हे, इसलिए इस घर की तुलना मे स्वर्ग तुच्छ ही है।

आपस मे इस तरह बातचीत करते हुए लोग सुदर्शन के घर की प्रशसा कर रहे थे ओर उसे तीर्थस्थान मानकर उसके सामने स्वर्ग को भी तुच्छ बता रहे थे। दूसरी ओर प्रिय वचनो से सबका स्वागत करके ओर सबको यथास्थान बैठा कर मनोरमा ने सबका उचित सत्कार किया तथा सब का आभार माना।

यह सब हो चुकने पर जब लोग अपने–अपने घर जाने के लिए तैयार हुए तब राजा दधिवाहन ने सुदर्शन से कहा कि–आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करने की कृपा कीजिये। यद्यपि आपके यहा किसी प्रकार की कमी नही है न में आपको कुछ देने के योग्य ही हू, फिर भी मेरी यह इच्छा है कि आप मुझसे जो कुछ भी चाहे, वह मागे। जिससे मेरा मनस्ताप कम हो। आप मुझसे जो कुछ भी मागेगे वह में अवश्य ही दूगा यदि आप मेरा राज्य या शरीर मागेगे तो मैं वह भी दूगा। आप मेरी इच्छा पूर्ण कर के मुझे कृतार्थ कीजिय।

राजा दधिवाहन ने सुदर्शन से इस प्रकार कहा और बहुत अनुनय–विनय की। दधिवाहन की इस प्रार्थना के उत्तर मे सुदर्शन ने कहा कि–आपकी कृपा से मुझे किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं हे फिर भी आप कहते हैं इसलिए आपका सम्मान रखने के वास्ते में एक वात मागता हू। आपके अनुरोध पर ही मैंने मागना स्वीकार किया है इसलिये मुझे विश्वास है कि में जो कुछ मागू वह देने मे आपको कोई सकोच न होगा।

दधिवाहन के यह कहते ही वहा उपस्थित लोग धन्य धन्य कहने के साथ ही सुदर्शन एव दधिवाहन की जय–जयकार करने लगे। उसी समय वहा उपस्थित एक नागरिक खडा होकर कहने लगा कि–आज अपन सब जिस प्रसग के कारण यहा एकत्रित है, उस प्रसग के विषय मे मैं भी आप सब लोगो को अपने दो शब्द सुनाना चाहता हू। में आशा करता हू कि आप लोग मेरे टूटे–फूटे शब्दो को श्रवण करने की कृपा करेगे।

उस नागरिक का यह कथन सुनकर सब लोग उसकी बात सुनने के लिए शान्त हो गए। सब लोगो को शान्त देखकर वह नागरिक कहने लगा कि–

प्रिय भाइयो और आदरणीया बहनो!

महापुरुष सुदर्शन को शूली पर चढते और शूली का सिहासन बनते देखा ही है। जितनी शीघ्रता से शूली सिहासन बन गई, उतनी शीघ्रता से तो नहीं, लेकिन कुछ समय मिलने पर शूली को तोडताड कर उसकी सामग्री से सिहासन बनाने का कार्य एक चतुर कारीगर भी कर सकता है। इसलिए अपन लोगो को केवल इसी बात पर ध्यान न देना चाहिए कि शूली का सिहासन बन गया, किन्तु इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि शूली इस प्रकार सिहासन बनी कैसे? उस कारण पर विचार करो, केवल कार्य ही न देखो। मेरी समझ से सेठ को दी जाने वाली शूली सिहासन के रूप मे बदल जाने सेठ के बच जाने और देवो द्वारा सेठ की महिमा गाने का कारण है सेठ की नम्रता और दयालुता। इन दो गुणो के कारण ही सेठ के लिए शूली भी सिहासन बन गई। ये दो गुण ऐसे हैं कि जहा ये दो गुण हैं, वहा दूसरे सब गुण भी विद्यमान रहते ही हैं। यद्यपि इन दोनो मे से बडा गुण तो दयालुता ही है लेकिन वह नम्रता की अपेक्षा रखता है। जिस प्रकार रत्न को नम्र स्वर्ण ही पकड सकता है जिसमे नम्रता नही है उस सोने मे रत्न नही जडा जा सकता। इसी प्रकार दयालुता भी नम्र व्यक्ति मे ही रहती है। जिसमे नम्रता नही हे उसमे दयालुता भी नही रह सकती। इस प्रकार दयालुता को आधार देने वाली नम्रता ही हे और दयालुता अन्य गुणो को आधार देती हे। जिसमे दयालुता हे उसी म सत्य भी रह सकता है और शील भी। जिसमे दयालुता नहीं हे उसमे सत्य–शील भी नही रह सकते। इस प्रकार नम्रता और दयालुता सब गुणो से बढकर हे और जहा ये दो गुण हैं वहा सभी गुण हें।

इन दो गुणो के होने से ही इनमे शीलादि दूसरे गुण आय हे तथा वह भावना हुई जो इन्होने अपने को सुनाई और जिसके कारण शूली का

सिहासन बना। इसलिए अपने को केवल सिहासन ही न देखना चाहिए किन्तु उसके कारण स्वरूप दया और नमता को अपनाना चाहिए। ऐसा करके ही अपन अपने आत्मा का कल्याण कर सकते है तथा उस मार्ग के पथिक हो सकते हैं जिस मार्ग के पथिक सुदर्शन सेठ हैं। आप लोगो के सामने मुझे मेरे हृदय के ये भाव प्रकट करने थे अधिक कुछ नहीं कहना है।

यह कहकर वह नागरिक चुप हो गया। नागरिक के चुप होते ही लोगो ने उसके कथन का समर्थन किया और सुदर्शन सेठ की जय बोलते हुए अपने-अपने घर को गये। घर जाते हुए लोगो का सुदर्शन और मनोरमा ने प्रेमपूर्वक आमार माना। सब लोगो के चले जाने पर राजा दधिवाहन ने सुदर्शन से विदा मागी। सुदर्शन ने प्रिय शब्दो मे राजा दधिवाहन को सन्तोष देकर विदा किया।

अभया का अन्त

जो व्यक्ति दूसरे का बुरा करना चाहता है, उसका स्वय का बुरा हो जाता है। कहावत ही है कि-जो दूसरे के लिए खड्डा खोदता है वह स्वय ही खड्डे मे गिर जाता है। मकडी दूसरे जानवरो को फसाने के लिए जाल बनाती है लेकिन उसकी मृत्यु भी उसी जाल द्वारा होती है, इस प्रकार जो दूसरे का बुरा चाहता है उसका स्वय का बुरा होता है। दूसरे के लिए की गई बुराई स्वय के ही सामने आती है। दूसरे के लिए उत्पन्न किया गया अनिष्ट स्वय के लिए अनिष्ट बन जाता है। इसी के अनुसार दूसरे के लिए की गई भलाई भी स्वय के लिए ही होती है। अर्थात् दूसरे के लिए की गई भलाई या बुराई उस दूसरे के लिए तो हो या नहीं किन्तु स्वय के लिए ही होती है। इसी कारण सज्जन लोग किसी के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नही करते किन्तु सभी के साथ सद्व्यवहार ही करते हैं। वे जानते हैं कि दूसरे का व्यवहार अपने लिए अच्छा या बुरा परिणाम देने वाला नही हो सकता, किन्तु स्वय का व्यवहार ही अच्छा या बुरा परिणाम देने वाला हो सकता है। इसी बात को दृष्टि मे रखकर वे उस व्यक्ति के प्रति भी सद्व्यवहार ही करते हैं, उसका भी भला करते हैं जिसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया है। सुदर्शन का अहित करने मे अभया ने किसी प्रकार की कमी नहीं रखी थी। उसने अपनी ओर से तो सुदर्शन को शूली पर चढवा ही दिया था। कोई अपराध न होने पर भी शूली चढवाना इससे अधिक दुर्व्यवहार दूसरा क्या हो सकता

लेकिन सुदर्शन ने इस तरह का दुर्व्यवहार करने वाली अभया का भी हित ही चाहा। उसको भी अभय करने के लिए राजा को वचन बद्ध किया। इस प्रकार सुदर्शन ने अपनी ओर से तो अभया का भला ही किया, परन्तु अभया को स्वय द्वारा दूसरे के प्रति किया गया दुर्व्यवहार कैसे शान्ति लेने दे सकता था। नियमानुसार उसके द्वारा सुदर्शन के लिए किया गया दुर्व्यवहार किसी न किसी रूप मे उसके सामने आना ही चाहिए था। इसलिए यह देखना है कि अभया के लिए स्वय का दुष्कृत्य किस प्रकार का दुष्फल देने वाला हुआ और उसके साथ ही पडिता को भी उसके कृत्य का क्या परिणाम भोगना पडा।

अभया ने यह भी सुना कि सुदर्शन को शूली पर चढा दिया गया था लेकिन उसके लिए शूली भी सिहासन बन गई, देवो ने उसकी महिमा की, नगर के सब लोग भी उसकी महिमा कर रहे हैं, महाराजा भी वहा गये हैं और उन ने भी उससे क्षमा मागी है। सब लोग उसकी प्रशसा करते हुए मेरी यह कहकर निन्दा कर रहे हैं कि अभया महान् दुराचारिणी और निर्लज्जा है। जिसने सुदर्शन जैसे शीलवान् पुरुष को भी भ्रष्ट करना चाहा और जब वह भ्रष्ट नही हुआ, तब उस पर झूठा कलक लगाकर राजा से उसे शूली पर चढाने की आज्ञा दिला दी। यह समाचार सुनकर अभया सोचने लगी कि—सुदर्शन के बच जाने से महाराजा को भी मेरे दुष्कृत्य का समाचार ज्ञात हो गया है, इसलिए अब वे वहा से लौटकर मुझे न मालूम क्या कहेगे? और मेरे को न मालूम कैसा दण्ड देगे? मैंने अब तक अपना जीवन सम्मानपूर्ण रीति से बिताया है, लेकिन अब यह भेद खुल जाने पर भी यदि मैं जीवित रही तो मुझे पद—पद पर अपमानित होना पडेगा। जो महाराजा मेरे नयननिर्देश पर सब कुछ करने को तैयार रहते थे, वे अब मुझसे बात भी न करेगे, न मेरी बात सुनेगे ही। बल्कि कोई सच्ची बात भी उनसे कहना चाहूगी या कहूगी तो वे उसे भी झूठ ही मानेगे और उसकी उपेक्षा करेगे। इस तरह मुझे जीवन भर अपमानित और कष्ट सहन करना होगा। अत अब मुझे अपने जीवन का अन्त कर देना चाहिए। मेरे लिए ऐसा करना ही श्रेयस्कर है, जिससे मुझे अपमान भी न सहना पडे, न महाराजा की कोई बात ही सुननी पडे। इसके सिवाय कपिला की बातो मे पडकर मैंने जो अनर्थ किया एक शीलवान् पुरुष पर दोषारोपण करके उसकी हत्या का जो प्रयत्न किया मुझे उसका दण्ड भी भोगना ही चाहिए। मैंने जो कुछ भी किया वह सब कपिला की बातो मे पडकर ही। यदि मैं कपिला द्वारा की गई उत्तेजना मे न फसती तो न तो सदाचारी सेठ का भ्रष्ट करना ही चाहती, न उस पर झूठा अभियोग लगाकर उसे शूली का दण्ड ही

दिलाती। मैंने यह सब अनर्थ कपिला की सगति के कारण ही किया। फिर भी यदि वह मेरा कहना मान लेता या शूली द्वारा उसका अन्त हो गया होता तब तो ठीक भी रहता, परन्तु वह बच गया और इस कारण मेरा सब भेद खुल गया है। इसलिए जिनसे मैं सम्मान पाती थी, उन्हीं राजा के द्वारा मुझे अपमानित होना पडेगा इससे अधिक दु ख की बात और क्या हो सकती है? इस दु ख को सहकर जीवित रहने की अपेक्षा तो मर जाना ही अच्छा है।

अभया कुलवती थी। कुलीन को अपने मानापमान का बहुत ध्यान रहता है। उसके लिए अपमानित जीवन नरक यातना से भी अधिक दु खदायी प्रतीत होता है। यद्यपि आत्महत्या भयकर पाप है, फिर भी अनेक कुलीन लोग अपमान के भय से आत्महत्या भी कर डालते हैं। अभया को भी अपमान का ऐसा भय हुआ कि उसने अपने जीवन का अन्त कर डालना ही उचित समझा। यद्यपि सुदर्शन सेठ ने राजा से उसके लिए पहले ही अभय माग लिया था, लेकिन अभया को इस बात का पता न था। फिर भी यदि वह चाहती तो आत्म–हत्या करने के बदले अपना कृत्य प्रकट करके और सुदर्शन से क्षमा मागकर अपना पाप इसी जन्म मे मिटा सकती थी, परन्तु वह पाप के बोझ से ऐसी दबी हुई थी कि उसको यह मार्ग सूझा ही नही। उसके हृदय मे सुदर्शन के प्रति वैर की जो गाठ बध गई थी, वह कठिन तो अवश्य हुई, लेकिन ढीली नहीं पडी। इस कारण उसको पाप मिटाने का अन्य मार्ग नहीं सूझ पडा किन्तु आत्म–हत्या का मार्ग ही सूझ पडा।

अपमान के भय से भीत हो, अभया ने जीवन का अन्त करने का निश्चय किया और तदनुसार छत से रस्सी बाधकर तथा गले मे फासी डालकर उसने आत्महत्या कर ली। यह भी कहा जाता है कि अभया महल से गिर कर मरी थी। किसी भी तरह से मरी हो, लेकिन उसने आत्महत्या ही की। यद्यपि मरने से पहले उसने किसी रूप मे अपने दुष्कृत्य के लिए पश्चात्ताप किया था और उसकी दूसरी करणी भी अच्छी थी, इससे वह नरक मे तो नही गई, हुई तो देवी लेकिन सुदर्शन ऐसे महापुरुष पर झूठा कलक लगाने, पर–पुरुष वछने एव आत्महत्या करने आदि पापो के कारण उच्च श्रेणी की देवी नहीं हुई। किन्तु जगल मे रहने वाली नीच जाति की देवी हुई। अभया व्यन्तरी देवी के रूप मे उत्पन्न होकर जगल मे रहने लगी।

पडिता ने भी सुदर्शन के लिए शूली का सिहासन बन जाना आदि समाचार सुना। वह भी घबराई और अब क्या करना चाहिए, दौडी हुई अभया के महल मे आई। लेकिन अभया तो पहले ही मर चुकी थी। अभया को मरी

हुई देखकर पडिता के छक्के छूट गये। उसने सोचा कि सुदर्शन ने महाराजा से सब हाल कह दिया होगा, इसलिए महाराजा को यह मालूम हो ही गया होगा कि सुदर्शन को रानी के महल मे पडिता ही लाई थी। यह जानने से महाराजा मुझ पर क्रुद्ध होगे ही। दूसरे रानी मर गई है, इसकी मृत्यु का अपराध भी मेरे ही सिर मढा जावेगा। तीसरे अब तक मुझे रानी का सहारा था, लेकिन अब वह सहारा भी नहीं रहा। इन कारणो से यदि अब मैं यहा रही तो मेरी दुर्दशा हो जावेगी। इसलिए यहा से भाग निकलना ही अच्छा है।

इस प्रकार सोचकर पडिता चम्पा से भाग निकली। चम्पा से भागकर वह पाटलीपुत्र–जो अब पटना कहा जाता है–पहुची। वह राज परिवार मे रह चुकी थी, इसलिए बातचीत मे भी कुशल थी और अभया की धाय थी इस कारण त्रिया–चरित्र मे भी बढकर थी। इन सबके साथ वह दिखने मे भी अच्छी थी। इसलिए उसे हरिणी नाम की एक वेश्या ने अपने यहा रख लिया। पडिता हरिणी के यहा रहकर उसकी वेश्यावृति मे सहायता करने लगी और अपना जीवन बिताने लगी।

राजा दधिवाहन सुदर्शन सेठ के यहा से अपने महल मे आया। उसने सोचा कि यद्यपि अभया का अपराध भयकर एव अक्षम्य है, तथापि जब महापुरुष सुदर्शन ने उसका अपराध क्षमा कर दिया है और अभया को किसी प्रकार का दण्ड न देने, किन्तु उसके साथ पूर्ववत् व्यवहार रखने के लिए मुझे भी वचनबद्ध कर लिया है, तब उससे इस सबध मे कुछ भी कहना अनुचित है। अब तो मेरे लिए यही उचित है कि मैं उसके साथ पहले की ही तरह का व्यवहार रखू। मैंने सुदर्शन को शूली पर चढाने की आज्ञा दी उसके बाद की घटनाओ पर विचार करने से यही पाया जाता है कि अभया सुदर्शन को अपना जारपति बनाना चाहती थी। इसी उद्देश्य से उसने किसी प्रकार सुदर्शन को अपने महल मे बुलवाया लेकिन जब सुदर्शन ने उसकी यह इच्छा पूर्ण करना [illegible] नहीं किया, तब उसने सुदर्शन पर झूठा कलक लगाकर उसे पकडवा दिया। अब अभया का सारा भेद खुल गया हे इसलिए वह स्वय ही लज्जित हो रही होगी। जो अपने कृत्य के लिए स्वय ही लज्जित हो रहा हो उससे अधिक कुछ कहना अनुचित है और उस दशा मे तो ओर भी अनुचित हे जबकि सुदर्शन ने उसको अपनी माता मानकर उसके लिए अभय मागा हे। इसलिए अब मुझे अभया से उसके कृत्य के विषय मे एक शब्द भी न कहना चाहिए किन्तु उसको धेर्य देना चाहिए। जिससे मेने सुदर्शन को जो वचन दिया हे उसका ठीक तरह से पालन हो।

इस प्रकार विचार कर राजा ने दासी से कहा कि—महारानी को बुला लाओ। उनसे कहना कि वे सुदर्शन सबधी घटना के विषय मे किसी प्रकार का विचार या सकोच न करे। इस सबध मे मैं किसी प्रकार का दण्ड न दूगा। उनके लिए सुदर्शन ने मुझ से अभय दान माग लिया है इसलिए वे निर्भय रहे।

राजा की आज्ञानुसार दासी रानी के महल मे गई। वह थोड़ी ही देर मे घबराई हुई लौट आई और राजा से कहने लगी कि—अनर्थ हो गया। राजा के पूछने पर उसने कहा कि—महारानी ने गले मे फासी लगाकर आत्महत्या कर ली। दासी का यह कथन सुनकर राजा स्वय भी अभया के महल मे गया। उसने देखा कि रानी का शव रस्सी के सहारे छत से लटक रहा है। यह देखकर उसके मुह से यही निकला कि जिनके साथ इसने दुर्व्यवहार किया था उस सुदर्शन सेठ ने तो इसको क्षमा कर दिया लेकिन इसका पाप ही इसे खा गया। सुदर्शन को शूली दिलवाने वाली यह अभया स्वय ही फासी पर लटक गई। जो दूसरे का अहित चाहता है, उसका स्वय का अहित होना स्वाभाविक ही है।

अभया की मृत्यु का समाचार विद्युत्वेग की तरह सारे नगर मे फैल गया। नगर के लोग भी राजा की भाति यही कहने लगे कि रानी को उसी का दुष्कृत्य खा गया। उसने महापुरुष सुदर्शन को अपनी विषय—वासना पूरी करने के लिए भ्रष्ट करना चाहा था और उनकी हत्या का जो प्रयत्न किया था वह पाप उस पर चढ बैठा। उस पाप के बोझ को वह न सह सकी, इसी से मर गई। कोई—कोई लोग यह भी कहते थे कि अभया कुलवती थी इसी से मर गई। वह सगति या स्वभाव के कारण दुष्कृत्य कर तो बैठी परन्तु कुलवती होने के कारण उसकी आखो मे लज्जा थी। उस लज्जा की मारी वह मर गई। वास्तव मे वह राजा या दूसरे लोगो को मुह कैसे बताती? इस प्रकार नगर के लोग अभया की मृत्यु के विषय मे भिन्न—भिन्न प्रकार की बाते करते थे। कोई अभया की निन्दा करता था और कोई प्रशसा।

दधिवाहन ने अभया के शव को उतरवा कर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया उसी रीति से की जिस रीति से एक राजरानी की अन्त्येष्टि क्रिया होती है। इस कार्य मे उसने किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। इसी बीच मे दधिवाहन को यह भी मालूम हो गया कि अभया की धाय पडिता कही भाग गई है। यह ज्ञात होने पर राजा समझ गया कि इस घटना मे पडिता का भी

हाथ था। उसने धीरे–धीरे यह पता भी लगा लिया कि सुदर्शन को महल मे किस तरह लाया गया था और इस कार्य मे कौन–कौन दासिया सबधित थीं, फिर भी उसने इससे सबधित दासियो को कोई दण्ड नहीं दिया, किन्तु उन्हे भी क्षमा कर दिया ओर इस प्रकार की घटना पर स्वय की ओर से सदा के लिए पर्दा डालकर नीति के इस वाक्य का पालन किया कि–

अर्थनाश मनस्ताप, गृहणीचरितानि च।
नीचवाक्य चापमान, मतिमान्न प्रकाशयेत्।।

अर्थात्–धन नष्ट होने की बात मानसिक दु ख की बात, स्त्री के चरित्र की बात, नीच द्वारा कहे गये दुर्वाक्य और अपने अपमान की बात बुद्धिमान लोग प्रकट नहीं करते।

सुदर्शन मुनि

जीर्णकन्था तत किं, सितममलपटं, पट्टसूत्र तत कि
एका भार्या तत कि हयकरिसुगणैरावृतो वा तत किम्।
भक्त भुक्त तत कि कदशनमथवा वासरान्ते तत कि,
व्यक्तज्योतिर्नवातर्मथित भवभय, वैभव वा तत किम्।

अर्थात्–यदि चिथडो से बनी गुदडी पहनी तो क्या और निर्मल सफेद रेशमी या सूती वस्त्र पहना तो क्या? यदि एक स्त्री हुई तो क्या और हाथी घोडो सहित अनेक स्त्रिया हुईं तो क्या? यदि नाना प्रकार के सरस भोजन किये तो क्या ओर दिन भर के पश्चात् खराब अन्न से पेट भरा तो क्या? इनमे से चाहे कुछ भी हो, लेकिन यदि ससार बन्धन से मुक्त करने वाली आत्मज्ञान की ज्योति को न जाना तो इनमे से किसी का भी होना न होना बराबर ही हे। उस दशा मे यह कहा जायेगा कि तूने कुछ भी नही पाया और कुछ भी नहीं किया।

बुद्धिमान लोग लोकिक बडाई मे फसकर लोकोत्तर कार्य कदापि नही भूलते। उन्हे चाहे जेसी बडाई मिली हो ओर वे चाहे जेसे सुख वेभव सम्पन्न हो तब भी वे परलोक को तो याद रखते ही हें। इस कारण वे परलोक सुधारने यानि आत्मा का कल्याण करने के लिए लोकिक ऋद्धि सम्पदा और बडाई को उसी प्रकार त्याग देते हें जिस प्रकार साप केंचुली त्याग देता हे। इसका कारण यही हे कि वे इस लोक के कार्य से परलोक का कार्य बडा मानते हें। वे जानते हैं कि लोकिक बडाई से हमारे आत्मा का कल्याण कदापि नही हो सकता। बल्कि इस लोकिक बडाई के कारण हमको अभिमान हो

गया तो उस दशा मे यह लौकिक बडाई हमारा [illegible]
जावेगी। हमारा कल्याण तो तभी है जब हम लौकिक [illegible]
निकल कर पारलौकिक कार्य साधन मे लगे। अर्थात [illegible]
कर सयम को अपनावे। यह जानने के कारण ही दे [illegible]
पर भी आत्म कल्याण की बात को नहीं भूलते और अवसर [illegible]
लेकर आत्म कल्याण करते ही हैं।

सुदर्शन को सब तरह की लौकिक बडाई प्राप्त थी। वह [illegible]
पुत्रवान् था उसे अनुकूल एव पतिपरायणा पत्नी भी प्राप्त थी [illegible]
द्वारा सम्मान भी प्राप्त था तथा शूली का सिहासन बनने के पश्चात् [illegible]
प्रतिष्ठा ओर भी बढ गई थी। लेकिन इस तरह की लौकिक बडाई [illegible]
सुदर्शन सेठ उसमे उलझा हुआ नहीं रहा। वह सोचता था कि यदि मै इस
लौकिक बडाई के जाल मे फसा रहा तो मुझे भी कष्ट होगा और मेरे द्वारा
दूसरो को भी। शूली का सिहासन बनने के पश्चात् तो उसने यह निश्चय ही
कर लिया था कि अब मुझे ससार व्यवहार मे न रहना चाहिए किन्तु जिस
धर्म के प्रताप से शूली का सिहासन हुआ हे और मुझ पर लगा हुआ कलक
मिटा है उस धर्म की ही सेवा करनी चाहिए तथा उस समय मैंने कुछ देर के
लिए जो व्रत लिए थे वे त्याग व्रत जीवन भर के लिए स्वीकार करने चाहिए।
यह ससार अनर्थ का मूल है। इस ससार में रहने के कारण ही मेरी ओर से
अभया माता को कष्ट मे पडना पडा। इसलिए अब ससार व्यवहार मे न
पडकर सयम स्वीकार करना ही अच्छा हे।

इस तरह का निश्चय वह पहले ही कर चुका था। इस निश्चय के
अनुसार उसे जो व्यवस्था करनी थी वह व्यवस्था करके उसने सयम लेने की
तैयारी की। सुदर्शन ने अपनी इच्छा मनोरमा को सुनाई। मनोरमा धर्मिणी एव
पति का हित चाहने वाली थी। इसलिए उसने पति की इस इच्छा की पूर्ति
मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं की अपितु इस इच्छा की प्रशसा करके
सुदर्शन का उत्साह बढाया।

दीक्षा की तिथि नियत हो गई। सारे नगर मे यह बात फेल गई कि
सुदर्शन सेठ गृह त्यागकर सयम लेता है। यह समाचार सुनकर नगर के कुछ
लोग इस विचार से दु खी हुए कि सेठ से हमारा वियोग होता है। दूसरी ओर
कुछ लोग यह विचार कर प्रसन्न भी हुए कि सेठ का वियोग तो शूली लगने
पर भी होता ही फिर उस तरह के वियोग की अपेक्षा इस तरह का वियोग
क्या बुरा है? अच्छा है जो सेठ इस दु खमय ससार से निकलकर आत्म
कल्याण मे लग रहा है। कहा ही है कि–

हाथ था। उसने धीरे–धीरे यह पता भी लगा लिया कि सुदर्शन को महल मे किस तरह लाया गया था और इस कार्य मे कौन–कौन दासिया सबधित थीं फिर भी उसने इससे सबधित दासियो को कोई दण्ड नहीं दिया किन्तु उन्हे भी क्षमा कर दिया और इस प्रकार की घटना पर स्वय की ओर से सदा के लिए पर्दा डालकर नीति के इस वाक्य का पालन किया कि–

अर्थनाश मनस्ताप, गृहणीचरितानि च।
नीचवाक्य चापमान, मतिमान्न प्रकाशयेत्।।

अर्थात्–धन नष्ट होने की बात, मानसिक दु ख की बात, स्त्री के चरित्र की बात, नीच द्वारा कहे गये दुर्वाक्य और अपने अपमान की बात बुद्धिमान लोग प्रकट नहीं करते।

सुदर्शन मुनि

जीर्णकन्था तत कि, सितममलपटं, पट्टसूत्र तत कि
एका भार्या तत कि हयकरिसुगणैरावृतो वा तत किम्।
भक्त मुक्त तत कि कदशनमथवा वासरान्ते तत कि,
व्यक्तज्योतिर्नवातर्मथित भवभय, वैभव वा तत किम्।

अर्थात्–यदि चिथडो से बनी गुदडी पहनी तो क्या और निर्मल सफेद रेशमी या सूती वस्त्र पहना तो क्या? यदि एक स्त्री हुई तो क्या और हाथी घोडो सहित अनेक स्त्रिया हुईं तो क्या? यदि नाना प्रकार के सरस भोजन किये तो क्या ओर दिन भर के पश्चात् खराब अन्न से पेट भरा तो क्या? इनमे से चाहे कुछ भी हो, लेकिन यदि ससार बन्धन से मुक्त करने वाली आत्मज्ञान की ज्योति को न जाना तो इनमे से किसी का भी होना न होना बराबर ही है। उस दशा मे यह कहा जायेगा कि तूने कुछ भी नहीं पाया ओर कुछ भी नही किया।

बुद्धिमान लोग लोकिक बडाई मे फसकर लोकोत्तर कार्य कदापि नही भूलते। उन्हे चाहे जेसी बडाई मिली हो ओर वे चाहे जेसे सुख वैभव सम्पन्न हो तब भी वे परलोक को तो याद रखते ही हैं। इस कारण वे परलोक सुधारने यानि आत्मा का कल्याण करने के लिए लौकिक ऋद्धि सम्पदा ओर बडाई को उसी प्रकार त्याग देते हें जिस प्रकार साप केचुली त्याग देता हे। इसका कारण यही हे कि वे इस लोक के कार्य से परलोक का कार्य वडा मानते हैं। वे जानते हें कि लोकिक बडाई से हमारे आत्मा का कल्याण कदापि नही हो सकता। बल्कि इस लोकिक बडाई के कारण हमको अभिमान हो

गया तो उस दशा मे यह लौकिक बडाई हमारा अकल्याण करने वाली हो जावेगी। हमारा कल्याण तो तभी है, जब हम लौकिक कार्य व्यवहार से निकल कर पारलौकिक कार्य साधन मे लगे। अर्थात् ससार सबध से निकल कर सयम को अपनावे। यह जानने के कारण ही वे ससार व्यवहार मे रहने पर भी आत्म कल्याण की बात को नही भूलते और अवसर आने पर सयम लेकर आत्म कल्याण करते ही हैं।

सुदर्शन को सब तरह की लौकिक बडाई प्राप्त थी। वह धनवान था, पुत्रवान् था उसे अनुकूल एव पतिपरायणा पत्नी भी प्राप्त थी, राजा एव प्रजा द्वारा सम्मान भी प्राप्त था तथा शूली का सिहासन बनने के पश्चात् तो उसकी प्रतिष्ठा ओर भी बढ गई थी। लेकिन इस तरह की लौकिक बडाई पाकर भी सुदर्शन सेठ उसमे उलझा हुआ नहीं रहा। वह सोचता था कि यदि मैं इस लौकिक बडाई के जाल मे फसा रहा तो मुझे भी कष्ट होगा और मेरे द्वारा दूसरो को भी। शूली का सिहासन बनने के पश्चात् तो उसने यह निश्चय ही कर लिया था कि अब मुझे ससार व्यवहार मे न रहना चाहिए, किन्तु जिस धर्म के प्रताप से शूली का सिहासन हुआ है और मुझ पर लगा हुआ कलक मिटा है उस धर्म की ही सेवा करनी चाहिए तथा उस समय मैंने कुछ देर के लिए जो व्रत लिए थे, वे त्याग व्रत जीवन भर के लिए स्वीकार करने चाहिए। यह ससार अनर्थ का मूल है। इस ससार मे रहने के कारण ही मेरी ओर से अभया माता को कष्ट मे पडना पडा। इसलिए अब ससार व्यवहार मे न पडकर सयम स्वीकार करना ही अच्छा है।

इस तरह का निश्चय वह पहले ही कर चुका था। इस निश्चय के अनुसार उसे जो व्यवस्था करनी थी, वह व्यवस्था करके उसने सयम लेने की तैयारी की। सुदर्शन ने अपनी इच्छा मनोरमा को सुनाई। मनोरमा धर्मिणी एव पति का हित चाहने वाली थी। इसलिए उसने पति की इस इच्छा की पूर्ति मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही की अपितु इस इच्छा की प्रशसा करके सुदर्शन का उत्साह बढाया।

दीक्षा की तिथि नियत हो गई। सारे नगर मे यह बात फैल गई कि सुदर्शन सेठ गृह त्यागकर सयम लेता है। यह समाचार सुनकर नगर के कुछ लोग इस विचार से दुःखी हुए कि सेठ से हमारा वियोग होता है। दूसरी ओर कुछ लोग यह विचार कर प्रसन्न भी हुए कि सेठ का वियोग तो शूली लगने पर भी होता ही फिर उस तरह के वियोग की अपेक्षा इस तरह का वियोग क्या बुरा है? अच्छा है जो सेठ इस दुःखमय ससार से निकलकर आत्म कल्याण मे लग रहा है। कहा ही है कि—

धन्याना गिरिकन्दरे निवसतां, ज्योति- पर ध्यायता
मानन्दाश्रुजल पिबन्ति शकुना नि शंकमंकशया।
अस्माक तु मनोरथोपरचितप्रासाद वापी तट
क्रीडा काननकेलि कौतुक जुषामायु परिक्षीयते।

अर्थात्—वे लोग धन्य हैं, जो सासारिक वैभव को त्यागकर पर्वतीय गुफा मे रहते तथा आत्मज्योति का ध्यान करके आनन्द पाते हैं एव उस आनन्द के कारण निकले हुए आसुओ को गोद मे निर्भय बैठे हुए पक्षी पीते हैं। हमारा जीवन तो मनोरथ रूपी महल की बावडी के निकट के क्रीडास्थल मे लीलाए करता हुआ वृथा ही बीत रहा है।

इस तरह नगर के लोग इस विषय मे अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार बात करने लगे। राजा ने भी यह सुना कि सुदर्शन सेठ दीक्षा ले रहा है। वह सुदर्शन को समझाने के लिए सुदर्शन के घर आया। उसके साथ ही नगर के बहुत से लोग भी सुदर्शन को समझाने के लिए उसके घर आये जो यह चाहते थे कि सुदर्शन सेठ हमको छोडकर न जावे। राजा और नागरिको ने सुदर्शन सेठ से इस सबध मे बातचीत की, लेकिन सुदर्शन सेठ ने उन सबको इस तरह समझाया कि जिससे वे अधिक कुछ न कह सके। सुदर्शन सेठ के समझाने से सबको सन्तोष हो गया।

राजा दधिवाहन ने सुदर्शन सेठ का दीक्षा—महोत्सव किया। सुदर्शन सेठ धूमधाम के बीच नगर से निकल कर नगर के बाहर आया। वहा उसने विधिपूर्वक सयम स्वीकार किया। सुदर्शन सेठ सयम लेकर सुदर्शन मुनि बन गये। उन्होने वहा उपस्थित सब लोगो को धर्म का माहात्म्य और उसकी आवश्यकता आदि विषय का उपदेश दिया। पश्चात् वे वहा से विहार कर गये।

सुदर्शन मुनि विहार करते हुए ग्रामानुग्राम विचरने लगे। कुछ दिनो पश्चात् वे पटना पहुचे। पटना मे अभया की सहायता करने वाली उसकी धाय पडिता हरिणी वेश्या के यहा रहती थी। सुदर्शन मुनि जिस समय नगर मे भिक्षा के लिए भ्रमण कर रहे थे, उस समय पडिता ने उनको देखा। सुदर्शन मुनि को देखते और पहचानते ही पडिता को वह सब घटना स्मरण हो आई जिसके कारण अभया को मरना पडा था और पडिता को चम्पा का राजप्रासाद त्यागकर वेश्या की सेवा करनी पड रही थी। सुदर्शन मुनि को पहचानकर पडिता अपने मन मे कहने लगी कि—हाय—हाय! इस दुष्ट के कारण कैसा अनर्थ हुआ? यह पापी यदि मेरी पुत्री अभया का कहना मान लेता अथवा

इसने कहना नही माना था तो शूली पर चढकर मर जाता तो न तो मेरी पुत्री अभया को मरना ही पडता, न मुझे इस हरिणी वेश्या की सेवा ही करनी पडती। मेरे हृदय मे इसके प्रति वैर की ज्वाला धधक रही है, लेकिन क्या करू? मेरा वश नही चलता, नही तो इस दुष्ट से मैं अवश्य ही बदला लेती। फिर भी इसके जिस अभिमान के कारण मेरी अभया पुत्री को मरना एव मुझे असहाय होना पडा है इसका अभिमान नष्ट करने का प्रयत्न तो करूगी ही। यदि मैं ऐसा कर सकी, तब भी मुझे बहुत कुछ शाति मिलेगी।

इस प्रकार विचार कर पडिता हरिणी वेश्या के समीप गई। उसने बात कहने के योग्य प्रसग निकाल कर हरिणी से कहा कि वैसे तो ससार मे इस तरह के पुरुष बहुत थोडे होगे जो सुन्दर स्त्री को देखकर उस पर मुग्ध न होते हो लेकिन कोई-कोई पुरुष ऐसे भी होते हैं कि जिनको अपना प्रेमी बनाने के लिए अनेको त्रियाचरित्र कुशल सिर पटक मर जाती हैं, फिर भी वे पुरुष अपने निश्चय से विचलित नही होते।

पडिता का यह कथन सुनकर उत्तर मे हरिणी ने उससे कहा कि-तेरा यह समझना भूल है। ऐसा कोई पुरुष हो ही नही सकता, जिसको त्रियाचरित्र कुशल सुन्दरी अपना सेवक न बना सकती हो जो स्त्रिया ऐसा करने मे असमर्थ रहती हैं उनके लिए यही कहा जा सकता है कि या तो उनने पूरी तरह प्रयत्न ही नही किया अथवा वे त्रियाचरित्र नहीं जानतीं।

पडिता-आपकी यह बात ठीक नहीं है। मेरा तो यह अनुभव है कि ससार मे ऐसे ऐसे पुरुष भी हैं जो त्रियाचरित्र कुशल स्त्रियो के पूर्ण प्रयत्न करने पर भी अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए।

हरिणी-तेरा यह अनुभव गलत है।

पडिता-तो क्या आपका यह कहना है कि ऐसा पुरुष हो ही नहीं सकता जो त्रियाचरित्र कुशल सुन्दरी के वश हो ही न सके?

हरिणी-हा।

पडिता-मै अपने अनुभव को गलत और आपके कथन को तब ठीक मान सकती हू, जब आप मेरे द्वारा बताये गये पुरुष को सेवक बनाकर उसके साथ सम्भोग कर ले।

हरिणी-तू किस पुरुष को बताती है बता। लेकिन ऐसा पुरुष मत बताना जो वृद्ध धृणास्पद हो अथवा पुरुषत्वहीन हो।

पडिता-नही मै आपको ऐसा पुरुष बताती हू, जो युवक स्वस्थ और सुन्दर है। यह बात दूसरी है कि उसके शरीर पर अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण न

हो, लेकिन शारीरिक सौंदर्य मे उसकी समता करने वाला पुरुष ढूढने पर कठिनाई से ही मिलेगा। वह पुरुष पुरुषत्वहीन भी नहीं है।

हरिणी—अच्छा बता। मैं तेरे देखते ही देखते उसको अपना सेवक बना लूगी।

पडिता ने गोचरी लेकर जाते हुए सुदर्शन मुनि की ओर अगुली उठाकर हरिणी से कहा कि—देखो, आप उस पुरुष को पहचानलो। यदि आप इस पुरुष को अपने अधीन कर सकी तो मैं आपकी बात भी स्वीकार करूगी तथा यह भी मानूगी कि आप त्रियाचरित्र मे सबसे बढकर हैं। मैं इस पुरुष को जानती हू। यह बहुत सुन्दर है। साथ ही इसके लिए मेरा यह अनुभव भी है कि इस पुरुष को स्वय के वश करना स्त्रियो के लिए सर्वथा असम्भव है। इसको स्वय को भी यह अभिमान है कि चाहे कोई कैसी भी सुन्दर और त्रियाचरित्र कुशल स्त्री क्यो न हो, मैं किसी भी स्त्री के वश नहीं हो सकता।

हरिणी—इसका ऐसा मिथ्याभिमान तो मैं मिटा ही दूगी लेकिन पहले तू यह बता कि इसको तू कैसे जानती है और इसके विषय मे तूने यह धारणा किस कारण बना ली कि इसको वश करना असम्भव है।

पडिता—देखो, मैं आपसे एक बहुत गुप्त बात प्रकट करती हू। आप मेरी कही हुई बात को किसी और से मत कहना नही तो मैं किसी विपत्ति मे पड जाऊगी। यह पुरुष अब तो साधु हो गया है लेकिन पहले चम्पा मे रहता था और वहा का नगर सेठ था। उस समय इसका नाम सुदर्शन सेठ था। आपके यहा आई उससे पहले मे भी चम्पा की महारानी अभया के पास रहती थी। महारानी अभया ने अपनी एक सखी से वादा—शर्त लगायी कि मैं सुदर्शन सेठ को अपने वश कर लूगी, अन्यथा प्राण त्याग दूगी मुह न दिखाऊगी। अभया की यह प्रतिज्ञा पूरी कराने का मैंने भी प्रयत्न किया था। मैं सुदर्शन को अभया के समीप राजमहल मे ले आई थी। अभया बहुत सुन्दरी थी और त्रियाचरित्र मे भी पूर्ण कुशल थी। उसने इसको स्वय के वश करने का बहुत प्रयत्न किया त्रियाचरित्र ओर नीति के साम दाम दण्ड ओर भेद इन चारो अग का पूरी तरह प्रयोग किया लेकिन वह अपने प्रयत्न मे असफल ही रही। अन्त मे उसको प्रतिज्ञा के अनुसार मरना पडा ओर इसी कारण मुझे आपके यहा आश्रय लेना पडा। इस घटना पर से ही मेरी यह धारण वन गई हे कि इस पुरुष को विचलित करने मे कोई भी स्त्री समर्थ नही हे।

पडिता ने थोडे मे अभया के मरने तक की सारी घटना हरिणी का सुनाई लेकिन उसने शूली का सिहासन वनने ओर इस प्रकार सुदर्शन के वच

जाने की बात प्रकट नही की। उसको यह भय था कि शूली का सिहासन बनने और सुदर्शन के बचने का समाचार सुनकर कही हरिणी सुदर्शन को स्वय के वश करने का कार्य अस्वीकार न कर दे। इस भय के कारण ही उसने यह बात प्रकट नहीं की।

पडिता की बात समाप्त होने पर हरिणी हसकर कहने लगी कि बस, इस घटना पर से तुम्हारी यह धारणा बन गई है कि इस पुरुष को विचलित करना असम्भव है? तुम्हारी इस धारणा को तुम तुम्हारी अभया रानी के साथ ही जाने दो। अभया रानी थी और मैं वेश्या हू। उसको तो अपने जीवन भर मे इस एक ही पुरुष को अपना बनाने के लिए प्रयत्न करने का अवसर मिला होगा लेकिन मैं तो नित्य ही पुरुषो को अपने वश मे करने का कार्य करती हू। तुम्हारी उस रानी की अपेक्षा मैं अधिक त्रियाचरित्र कुशल हू और इस विषयक मेरा अभ्यास भी अधिक है। इसलिए तुम देखना कि जिस पुरुष को वश करने मे तुम्हारी रानी असफल रही, उस पुरुष को मैं किस प्रकार अपने अधीन करती हू।

पडिता के प्रयत्न से हरिणी ने सुदर्शन मुनि को भ्रष्ट करने का निश्चय किया। हरिणी वेश्या तो थी लेकिन वह धन प्राप्त करने के लिए ही वेश्यावृति करती थी। इसलिए उसका विचार सुदर्शन या दूसरे किन्हीं मुनि को भ्रष्ट करने का न तो था न ऐसा विचार होने का कारण ही था। परन्तु पडिता की कुसगति के कारण वह वेश्यावृत्ति से भी भयकर पाप करने के लिए तैयार हुई। कुसगति के कारण ऐसा होना आश्चर्य की बात नही है। कुसगति किस प्रकार हानिप्रद है इसके लिए भक्ति सूत्र मे कहा है—

> **दु सग सर्वथा त्याज्य काम क्रोध लोभ**
> **मोह स्मृति नाशस्य सर्वनाश कारणत्वात्।**
> **तरगाइताऽपीमे सगात् समुद्रायन्ति।**

अर्थात् दु सग सर्वथा त्याज्य है। क्योकि दु सग से काम, क्रोध, लोभ बढते है स्मृति नष्ट होती है और फिर दु सग सर्वनाश का कारण बन जाता है एक तरग इतना काम क्रोध लोभ मोह भी दु सग से वृद्धि पाकर समुद्र ऐसा अनन्त हो जाता है।

हरिणी सोचने लगी कि—मैने पडिता से यह कहा है कि में इस साधु को अपना सेवक बना लूगी लेकिन साधु लोग मेरे यहा भिक्षा के लिए भी नही आते है न रात के समय अथवा पुरुषो की अनुपस्थिति मे किसी स्त्री को अपने स्थान पर ही आने देते है। ऐसी दशा मे उस साधु को अपना बनाने

का उपाय यही हो सकता है कि मैं किसी भी तरह उसको अपने घर मे ले आऊ। वह एक बार मेरे घर मे आ जावे तो फिर तो मैं उसको अपना दास बना ही लूगी। अपने हाव–भाव एव नयनबाण से उसे ऐसा लटटू कर लूगी कि फिर वह साधु धक्का देकर निकाला जाने पर भी मेरे घर से न जावेगा। उसे मेरे घर लाने के लिए यह मार्ग अच्छा है कि मैं श्राविका बनकर उसको अपने यहा भिक्षा के लिए लिवा लाऊ। दूसरी तरह तो वह मेरे घर न आवेगा।

इस प्रकार सोचकर वेश्या ने श्राविकाओं के रहन–सहन और बोलचाल आदि का कुछ अभ्यास किया। वह चतुर थी, इसलिए उसको इस विषयक अभ्यास करने मे अधिक समय न लगा। जब उसको यह विश्वास हो गया कि मैं श्राविका बनकर सुदर्शन मुनि को भुलावे मे डाल अपने घर ले जाने में सफल हो जाऊगी, तब वह अवसर देखकर भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सुदर्शन मुनि के सामने हाथ जोडकर खडी हो गई और कहने लगी कि महाराज, मेरे यहा पधार कर मुझे तारिये। मैं श्राविका हू। मेरा यह नियम है कि मैं साधु–महात्मा को दान दिये बिना भोजन नहीं करती। इसलिए मुझ पर कृपा करके मेरे घर पर पधारो। मेरा जीवन पहले तो बहुत पतित था लेकिन आप ऐसे महात्माओ की कृपा से ही मैं धर्म पाई हू और श्राविका के योग्य व्रतो का पालन करती हुई, पवित्र रहकर अपना कल्याण कर रही हू। मेरी यह प्रबल भावना हे कि आप मेरे यहा पधार कर मेरे हाथ से कुछ दान ले। यदि आपने मुझ पर यह कृपा न की तो नियमानुसार मुझे भूखी रहना पडेगा।

सुदर्शन मुनि सरल स्वभाव के थे। वे वेश्या का यह कपट क्या जाने? हरिणी वेश्या ने सुदर्शन मुनि से प्रार्थना भी इस तरह से की कि जिसमे सन्देह के लिए कोई स्थान ही न था। उसने स्वय पर साधुओ का उपकार भी बताया तथा कोई मेरे घर को वेश्या का घर कहकर साधु को मेरे यहा जाने से रोक न ले इसके लिए यह भी पहले से ही कह डाला कि पहले मेरा जीवन पतित था, लेकिन अब पवित्र है ओर में श्राविका हू।

सुदर्शन मुनि वेश्या के भुलावे मे आ गये। वे वेश्या के साथ साथ उसके घर चले गये, लेकिन उसने जैसे ही वेश्या के घर मे प्रवेश किया वैसे ही वेश्या के सकेत पर उसकी दासियो द्वारा गृह का द्वार बन्द कर दिया गया। यह देखते ही सुदर्शन मुनि समझ गये कि यहा कुछ छल हे। वेश्या ने जब देखा कि अब सुदर्शन मुनि बाहर नही निकल सकते तब वह मुस्करा कर कटाक्ष करती ओर हाव–भाव दिखाती हुई मुनि से कहने लगी कि–पधारिय

पधारिये किसी प्रकार का सकोच न करिये। मैं श्राविका हू और आपको इसलिए लाई हू कि आप मेरे द्वारा दिया गया दान ले। मैं आपको ऐसा दान दूगी, जैसा दान आज तक किसी भी श्राविका से न पाया होगा। दूसरी श्राविकाए तो केवल रोटी–टुकडा ही देती होगी, परन्तु मैं आपको सरस भोजन कराने के साथ ही अपना सर्वस्व भी समर्पण कर दूगी। आप अपने इन पात्रो को एक ओर रख दीजिये। यहा इनकी आवश्यकता न होगी। यहा आपके सन्मुख अभी स्वर्ण थाल मे षट्रस भोजन आता है।

वेश्या इस प्रकार कहने लगी। उसकी सहायिकाए भी उसकी बातो मे साथ देने लगीं। उन बातो को सुनकर मुनि ने सोचा कि मैं इस माता के कपटजाल मे फस गया हू फिर भी मुझे घबराना न चाहिए, किन्तु धैर्यपूर्वक इसके द्वारा दिये जाने वाले सब उपसर्गों को सह लेना चाहिए, अधीर होने से कोई अनुकूल परिणाम नहीं आ सकता।

इस प्रकार सोचकर सुदर्शन मुनि ने जहा वे खडे थे, उसके समीप ही एक स्थान को रजोहरण द्वारा बैठने के योग्य बनाया। फिर अपना आसन बिछाकर वे ध्यान लगाकर बैठ गये। जैसे वेश्या द्वारा होने वाले आघातो से बचने के लिए ही उन्होने ध्यान रूपी कवच पहना हो।

वेश्या ने जब देखा कि ये मुनि ध्यान मे बैठे हुए हैं और मेरी बातो को सुनते ही नहीं मेरा सारा प्रयत्न निष्फल हो रहा है, तब उसने मुनि का ध्यान भग करने के लिए राग–रग का उपाय अपनाना उचित समझा। उसने सोचा कि गीत के वश तो देव भी हो जाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु हरिण और विषधर साप भी राग पर मुग्ध हो जाते हैं। ऐसी दशा मे मनुष्य यदि राग के वश मे हो जावे तो इसमे आश्चर्य की कौनसी बात है? यह साधु मेरी बातो से विचलित नही हुआ तो क्या हुआ, अभी हृदय हिला देने वाला मेरा गीत सुनकर इसका ध्यान भग हो जावेगा और तब यह मुझसे प्रेम करने लगेगा।

इस प्रकार विचार कर वेश्या ने अपने सहकारियो सहित साज बाज से गाना प्रारम्भ किया। उसने कामोद्दीपक अनेक राग–रागनिया गाई, लेकिन उसका यह प्रयत्न भी निष्फल ही रहा। वह सुदर्शन मुनि को ध्यान से विचलित करने मे असमर्थ रही। अपने इस प्रयत्न को भी निष्फल देखकर वेश्या निराश–सी हुई। फिर भी उसने सोचा कि यह साधु इस प्रकार भूखा–प्यासा कब तक बैठा रह सकता है। कोई कैसा भी क्यो न हो भूख तो सभी को सताती है और भूख का दु ख ऐसा हे कि जिससे मुक्त होने के लिए मनुष्य

सभी प्रकार के अकृत्य कार्य कर डालता है। इसको अभी नहीं तो कुछ देर पश्चात् भूख सतावेगी ही और उस समय तो यह मेरा कहना मानेगा ही।

वेश्या ने सुदर्शन मुनि को ध्यान से विचलित करने का समय समय पर बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उसका एक भी प्रयत्न और भोजन आदि का प्रलोभन मुनि का ध्यान भग करने मे सफल नहीं हुआ। जैसे महात्मा सुदर्शन वेश्या द्वारा किये गये प्रयत्नो के विषय मे यह विचारकर ध्यानस्थ थे कि–

इय बाला मा प्रत्यनवरतमिन्दी वरदल
प्रभाचोर चक्षु-, क्षिपति किमभि प्रेत मनया।
गतो मोहोऽस्माकं, स्मर कुसुम बाण व्यतिकर–
ज्वलज्ज्वाला शान्त, तदपि न वराकी विरमति।।

अर्थात्–यह बाला अपने नील कमल ऐसे सुन्दर नेत्रो के कटाक्ष बार बार मेरी ओर क्यो फैंकती है? मैं नहीं कह सकता कि इसका उद्देश्य क्या है? यदि इसका उद्देश्य अपने कटाक्ष से मेरे मे काम उत्पन्न करना है तो इसका यह विचार मूर्खतापूर्ण है। क्योकि अब न तो मेरे मे मोह है न काम ज्वाला ही है, जो इसके कटाक्ष से प्रज्ज्वलित हो। फिर भी आश्यर्च है कि यह मूर्खा अपना प्रयत्न नहीं त्यागती।

ध्यान लगाकर बैठे हुए मुनि को वेश्या के घर मे तीन दिन बीत गये। उन तीन दिनो मे वेश्या ने मुनि को विचलित करने का अपना प्रयत्न नही त्यागा और मुनि ने अपना ध्यान भी नहीं छोडा। जब चौथा दिन हुआ, उस दिन भी मुनि पहले की भाति ध्यान मे बैठे रहे तब वेश्या का हृदय पलटा। वह सोचने लगी कि मैं जिसको सुख मान रही हू, उससे भी आगे कोई सुख है, तभी तो ये मुनि इस सुख को नही अपनाते और तीन दिन से भूखे–प्यासे कष्ट सह रहे हैं। जिसे मैं सुख मानती हू, वह सुख तो मैं इन मुनि को दे रही हू। यदि इस सुख से आगे दूसरा सुख न होता तो ये मुनि कष्ट सहकर इस सुख को क्यो ठुकराते? निश्चय ही इस सुख से परे कोई ऐसा सुख हे जिसके सामने यह सुख तुच्छ है। मैंने एक तरह से तो इन मुनि को इस प्रकार कष्ट देकर बुरा किया लेकिन दूसरी तरह से विचार करने पर यह भी अच्छा हुआ कि मैं पडिता की बातो मे आकर छल से इन मुनि को अपने घर लिवा लाई और ये मुनि मेरे यहा तीन दिन तक कष्ट सहते रहे फिर भी ध्यान स विचलित नही हुए। इस घटना के कारण मेरे हृदय मे भी वह सुख प्राप्त करने की भावना उत्पन्न हुई है जिस सुख को इन मुनि ने प्राप्त किया हे। मैं इस घटना

से ही यह समझ पाई हू कि सच्चा सुख तो वही है जो इन मुनि को प्राप्त है। जिसको मै सुख मान रही हू, वह सुख नही है, किन्तु दुख है जो त्याज्य है।

इस प्रकार वेश्या का कलुषित हृदय एकदम बदल गया। वह पडिता से कहने लगी कि--पडिता, मैने इन मुनि को कष्ट देकर भयकर पाप किया है। अब मैं इन्हे कष्ट नहीं देना चाहती, चाहे तू मेरे को हारी मान। मैं यह स्पष्ट स्वीकार करती हू कि ये मुनि वैसे ही हैं, जैसा कि तूने कहा था। इनकी दृढता को देखकर मेरे हृदय मे यह भावना हुई है कि अब तक जो पापकृत्य करती रही हू, उन्हे सदा के लिए त्यागकर पवित्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करू और सच्ची श्राविका बन जाऊ। इसके लिए मैं इन मुनि को ही अपना गुरु बनाती हू।

पडिता से यह कहकर वेश्या हाथ जोडकर मुनि से कहने लगी कि--महाराज आप मुझ जैसी पापिनी का अपराध क्षमा करो और यह द्वार खुला हुआ है अपने स्थान को पधारो। मैं श्राविका बनकर आपको भ्रष्ट करने के लिए ही लाई थी। इसी के लिए मैंने आपको इतने कष्ट भी दिये, फिर भी आप अपने निश्चय से नही डिगे। बल्कि आपने मुझको भी उसी तरह पवित्र बना दिया जिस तरह लोहे की छुरी गई तो पारस को काटने के लिए, लेकिन वह स्वय ही सोने की बन गई। यही बात मेरे लिए भी हुई है। अब मैं आपको मेरा गुरु बनाती हू और आपकी साक्षी से यह प्रतिज्ञा करती हू कि आज से मै पवित्र जीवन बिताऊगी। वेश्यावृत्ति को सदा के लिए त्यागती हू।

वेश्या का कथन समाप्त होने पर पडिता हाथ जोडकर मुनि से कहने लगी कि--महाराज मुझ जैसी पापिनी दूसरी कौन होगी? मैं चम्पा मे भी आपका शील नष्ट करने मे अभया की सहायिका हुई थी और यहा तो इन हरिणी बहन को मैने ही--आपका शील नष्ट करने के लिए उभारा था। इससे अधिक दूसरा भयकर पाप क्या हो सकता है? आपके सामने मैं अपने इन पापो की आलोचना करके अपने अपराधो के लिये आपसे क्षमा मागती हू तथा भविष्य के लिये इन हरिणी बहन की तरह मैं भी पवित्र जीवन बिताने की प्रतिज्ञा करती हू।

हरिणी और पडिता ने मुनि से क्षमा मागकर भविष्य मे पवित्र जीवन बिताने की प्रतिज्ञा की। उन दोनो की प्रार्थना सुनकर मुनि ने ध्यान खोला। यद्यपि पडिता और हरिणी के कारण उन्हे कष्ट उठाना पडा था फिर भी वे मुनि पडिता या हरिणी पर क्रुद्ध नही हुए किन्तु उन्हे सान्त्वना देते हुए स्वय

पर उनका उपकार माना। उन्होने हरिणी से कहा कि—माता आपके इस गृह मे मैं जैसा आत्मध्यान कर सका, वैसा आत्मध्यान दूसरी जगह शायद ही कर सका होऊगा। इसलिए मुझ पर आपका उपकार है। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करे और आप दोनो ने जो प्रतिज्ञाए की हैं, उनका पालन करती हुई आत्मा का कल्याण करे।

हरिणी तथा पडिता को इस प्रकार प्रिय वचनो से सन्तुष्ट करके मुनि वेश्या के घर से चल दिये। मुनि के जाने के पश्चात् पडिता और हरिणी दोनो ही पवित्रतापूर्वक जीवन बिताने लगी। वेश्या के घर से निकलकर सुदर्शन मुनि ने सोचा कि इस शरीर के कारण पहले भी मेरी कपिला तथा अभया माता को कष्ट हुआ है और अब भी हरिणी माता को कष्ट हुआ। वास्तव मे यह शरीर ही कष्ट का कारण हे। इसके द्वारा किसी को कष्ट मे न पडना पडे इसी उद्देश्य से मैंने सयम लिया, लेकिन सयम लेने पर भी इस शरीर द्वारा किसी न किसी को कष्ट होता ही है। क्योकि भिक्षा के लिए तो दूसरे के घर जाना ही होता है। इस तरह (दूसरे के घर) जाने से भी किसी न किसी को उसी प्रकार कष्ट होता ही है, जिस प्रकार इस हरिणी माता को कष्ट हुआ। मैंने गृहवास के समय पर घर प्रवेश इसलिए त्यागा था लेकिन सयम मे उस समय तक तो पर—घर जाना ही होता है, जब तक कि इस शरीर को भोजन की आवश्यकता है और दूसरे के घर जाने पर फिर किसी न किसी को कष्ट होना सम्भव हे। इसलिए अब मुझे इस शरीर को न देखकर जगल मे रहना ही ठीक हे। वहा इसकी रक्षा जितने काल तक होनी होगी उतने काल तक होगी ओर न होनी होगी तो न सही लेकिन इसकी रक्षा के वास्ते आहार के लिये नगर मे आना ओर फिर किसी को कष्ट मे पडने देना ठीक नही। वह वेश्या माता तो सुधर गई, परन्तु मुझे मेरे आत्मा को भी सुधारना चाहिए। यह मेरे आत्मा की कमजोरी का ही कारण हे कि मुझे रोटी के लिए जाना पडता है, जिससे इस शरीर को देखकर मेरी इस वेश्या माता जेसी को भ्रम म पडना पडता हे। मुझे अपनी यह कमजोरी मिटानी चाहिये तथा भविष्य मे जगल मे ही रहना चाहिए। ग्राम या नगर मे न आना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके सुदर्शन मुनि सीधे जगल मे चले गये। उस दिन के पश्चात् छद्मस्थावस्था मे वे फिर कभी भी ग्राम या नगर म नही आये।

जब आत्मा का उपादान कारण अच्छा होता है, तब निमित्त कारण भी वैसे ही बन जाते है। यदि उपादान कारण अच्छा होता है तो बुरा निमित्त भी अच्छा ही परिणाम देता है और जब उपादान ही खराब होता है, तब अच्छा निमित्त भी खराब परिणाम देने वाला होता है। जिस जल की बूदे सीप के मुह मे पडकर मोती बनती हैं उसी जल की बूद सर्प के मुह मे गिरकर विष बन जाती है। कदली मे गिर कर कपूर बन जाती है। एक ही जल मे की एक ही समय मे गिरी हुई बूदो के परिणाम मे इस प्रकार के अन्तर का कारण उपादान की भिन्नता ही है। जो साधु सभी जीवो का कल्याण चाहते है और जिनका दर्शन–स्मरण करके अनेक जीव आत्मा का कल्याण करते हैं कई खराब उपादान वाले लोग उन्ही साधुओ द्वारा स्वय का अकल्याण कर लेते हैं। उनकी निन्दा–बुराई करके और उनसे ईर्षा–द्वेष रखकर पाप कर्म बाध लेते हैं। जो साधु पाप नष्ट करने के साधन माने जाते हैं, उन्हीं द्वारा पाप बाध लेने का कारण यही है कि उनका उपादान ही खराब है। इसके विरुद्ध जो पाप बध या राग द्वेष की उत्पत्ति के निमित्त कारण माने जाते हैं और जिन कारणो के विद्यमान होने पर अनेक लोग पाप बाध लेते हैं अथवा राग द्वेष मे पड जाते हैं अच्छे उपादान वाले उन्ही निमित्त कारणो से पाप और राग–द्वेष नष्ट कर देते है। इस प्रकार निमित्त कारण की अपेक्षा अपेक्षाकृत उपादान कारण का महत्व अधिक है। निमित्त कारण उपादान कारण के अनुसार ही अच्छा या बुरा परिणाम देता है। सुदर्शन मुनि से सबधित घटनाओ पर विचार करने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। कपिला के कपटजाल मे फसने पर, अभया के महल मे उसकी अनुकूल–प्रतिकूल बाते सुनने पर निरपराधी होते हुए भी शूली चढाये जाने पर और तीन दिन तक वेश्या के घर मे अनुकूल–प्रतिकूल परिषह सहने पर राग–द्वेष होना और पापकर्म बधना स्वाभाविक था, लेकिन यह स्वाभाविकता उन्ही के लिए है जिनका उपादान कारण खराब है। जिनका उपादान कारण अच्छा है उनके लिए इन्हीं निमित्त कारणो द्वारा पाप कर्म नष्ट करना और राग द्वेष मिटाना भी स्वाभाविक है। सुदर्शन मुनि का उपादान कारण अच्छा था ते ये सभी निमित्त कारण उनके आत्मा की उन्नति मे सहायक ही हुए। यह बात पिछले प्रकरणो से तो सिद्ध है ही किन्तु इस प्रकरण से भी यही बात सिद्ध है। इसलिए निमित्त कारण की अच्छाई–बुराई देखने की अपेक्षा अपने आत्मा की अच्छाई–बुराई देखने की और अपने आत्मा को अच्छा रखने की विशेष आवश्यकता है। यदि अपना आत्मा अच्छा होगा

तो अपने लिए हानि करने वाली बाते भी लाभ करने वाली बन जावेगी और अपनी आत्मा ही कुसस्कारो से भरा होगा तो अपने लिए अच्छी बाते भी बुराई ही पैदा करेगी।

हरिणी वेश्या के यहा से निकलकर सुदर्शन मुनि सीधे जगल मे चले गये। वहा उन्होने ऐसे एकान्त स्थान पर बैठकर ध्यान लगाया जहा मनुष्यो का आवागमन कदाचित् ही होता था। योगायोग से अभया रानी मरकर उसी जगल मे व्यन्तरी के भव मे जन्मी ओर वही रहती थी। उसने ध्यान लगाये हुए सुदर्शन मुनि को देखा। मुनि को देखते ही व्यन्तरी को विभग ज्ञान की सहायता से पूर्व भव की समस्त घटना स्मरण हो आई। उसके हृदय मे मुनि के प्रति वैरभाव जाग्रत हो उठा। वह सोचने लगी कि मैंने पूर्वभव मे इसको अपना प्रेमी बनाना चाहा था, लेकिन इस धर्म ढोगी ने मेरा कहना नहीं माना। परिणामत इसको मैंने शूली पर चढवा दिया परन्तु यह शूली से भी बच गया और इसके बदले मुझे आत्म हत्या द्वारा मरना पडा। इस समय यह धर्मढोगी साधु बनकर बैठा है। यदि अब भी इसको मैं अपना प्रेमी बना सकू तो मेरी पूर्वभव की अपूर्ण इच्छा पूर्ण हो जावे। लेकिन जब यह गृहस्थ था उस समय भी इसने मेरी बात नहीं मानी थी तो अब तो यह साधु हो गया है इसलिए मेरी बात क्यो मानेगा? फिर भी मुझे प्रयत्न तो करना चाहिये। जो कार्य पूर्वभव मे न कर सकी, सम्भव है कि प्रयत्न करने पर अब उसे कर सकू। क्योकि उस भव और इस भव मे अन्तर भी हे। मैं उस भव मे तो मानवी थी लेकिन अब इस भव मे देवी हू। यद्यपि उस भव से इस भव मे जन्मना मेरा पतन हे। क्योकि मनुष्य जन्म देवो के लिए भी दुर्लभ है। ऊचे देवलोक के देव भी मनुष्य भव की इच्छा करते रहते हैं तो मैं तो नीच व्यन्तरी हू, इसलिए श्रेष्ठ मनुष्य भव से इस भव मे आना यह मेरा पतन है, लेकिन इस धर्मढोगी को इसके निश्चय से भ्रष्ट करने के लिए मनुष्य भव की अपेक्षा यह भव अच्छा हे। इस भव मे मैं अपना शरीर इच्छानुसार बना सकती हू। बडा भी बना सकती हू और छोटा भी बना सकती हू। सुन्दरी भी बन सकती हू और कुरूपा भी बन सकती हू। अपना रूप ऐसा आकर्षक भी बना सकती हू कि जिसको देखते ही पुरुष मुग्ध हो जाये और ऐसा भयकर भी बना सकती हू कि देखकर भय खा जावे। इस प्रकार इसको अपने वश करके इसके द्वारा अपनी इच्छा पूर्ण करने मे यह भव उपयुक्त सहायक होगा।

इस प्रकार सोचकर व्यन्तरी सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके सुदर्शन के समीप गई। वह पुरुषो को मुग्ध करने वाले हाव–भाव दिखाती हुई सुदर्शन

मुनि से कहने लगी कि हे साधु! उठो। तुम्हारा तप सफल हुआ है। तुम्हारे तप के फलस्वरूप मै तुम्हारी सेवा करने के लिये आई हू, इसलिए उठो। तुम तप द्वारा जो सुख प्राप्त करना चाहते थे, वह सुख देने के लिये मैं उपस्थित हू। तुम मेरे द्वारा सुख भोगकर के अपने तप का फल लो।

हाव–भाव दिखाती हुई व्यन्तरी सुदर्शन मुनि से बार–बार इस तरह कहने लगी लेकिन सुदर्शन मुनि ध्यान से किचित् भी विचलित नही हुए। व्यन्तरी की बाते सुनकर ध्यान मे बैठे हुए सुदर्शन मुनि सोचते थे कि इस माता की मुझ पर बडी कृपा है जो यह मेरी परीक्षा कर रही है। मैं तो परीक्षा से भय खाकर ग्राम, नगर मे जाना–आना त्याग यहा जगल मे रहने लगा था, लेकिन जैसे इस माता ने सोचा कि परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए बिना इसके आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता और यह सोचकर ही यह माता मेरी परीक्षा ले रही है। मुझे अपने निश्चय पर दृढ रहकर इस माता द्वारा ली जाने वाली परीक्षा मे उत्तीर्ण होना चाहिए अनुत्तीर्ण न रहना चाहिए। यदि मैं अनुत्तीर्ण रहा तो मेरे आत्मा का भी अपमान होगा।

इस प्रकार विचारकर सुदर्शन मुनि व्यन्तरी के प्रयत्नो के साथ अपना ध्यान बढाते जाते थे। सुदर्शन मुनि के समीप व्यन्तरी का सब प्रयत्न पत्थर पर गिरे हुए या बीच मे से काट डाले गये बाणो की तरह व्यर्थ हो रहा था। अपने प्रयत्न निष्फल देखकर व्यन्तरी क्रुद्ध हो उठी। वह अपनी वैक्रिय शक्ति की सहायता से विकराल पिशाचिनी के समान भयकर रूप वाली बन गई और हाथ मे नगी तलवार लेकर पाव पटकती, जीभ लपलपाती, कटु शब्द बोलती और तलवार बताती हुई सुदर्शन से कहने लगी कि–या तो मेरे पैरो पडकर मुझसे क्षमा माग तथा मै जो कुछ कहू वह करना स्वीकार कर, नही तो मैं तेरे शरीर के टुकडे–टुकडे कर डालूगी।

व्यन्तरी ने पहले तो अनुकूल परिषह दिये और फिर प्रतिकूल परिषह देने लगी लेकिन सुदर्शन मुनि किचित् भी भयभीत या विचलित नही हुए। वे तो यही सोचते थे कि इस माता ने पहले उस रूप मे मेरी परीक्षा की थी और अब इस रूप मे मेरी परीक्षा कर रही है। पहले इसने राग की परीक्षा की और अब द्वेष की परीक्षा ले रही है कि मेरे मे अभी द्वेष है या नही। मुझे माता द्वारा ली जाने वाली परीक्षा से प्रसन्न होना चाहिए। यह मेरे हित के लिये ही मेरी परीक्षा ले रही है। मुझे विश्वास है कि मैं इस परीक्षा मे भी उत्तीर्ण हो जाऊगा। जब राग रूपी समुद्र से पार हो गया तब द्वेष की उस परीक्षा मे अनुत्तीर्ण कैसे रह सकता हू, जो एक गड्ढे के समान है। जब समुद्र को पार कर गया तब गड्ढे का पार करना क्या कठिन है।

इस तरह सोचकर सुदर्शन मुनि जैसे-जैसे व्यन्तरी उन्हे अधिक कष्ट देती थी, वैसे ही वैसे अपना निर्मल ध्यान भी बढाते जाते थे। उनका ध्यान ऐसा बढा कि वे अपूर्व करण द्वारा शुक्ल ध्यान मे प्रवेश करके अन्तमुहूर्त मे नववे, दसवे और ग्यारहवे गुणस्थान को पार करके बारहवे गुणस्थान पर सम्पूर्ण मोह आदि चार घातिक कर्म नष्ट करके तेरहवे गुण स्थान पर पहुचते गये। तेरहवे गुण स्थान पर पहुचते ही उनको सम्पूर्ण अनन्त और निर्बाध केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन प्रकट हुआ।

केवल ज्ञान प्रकट होने पर सुदर्शन मुनि सोचने लगे कि मुझे केवल ज्ञान की यह सम्पत्ति इस व्यन्तरी माता की कृपा से ही अभी मिली है, अन्यथा न मालूम कब मिलती? इसलिए इस माता कर मुझ पर बहुत उपकार है।

सुदर्शन मुनि को केवल ज्ञान प्रकट हुआ है यह जानकर देवता लोग आनदित होते हुए तथा भगवान सुदर्शन का जय-जयकार करते हुए केवल ज्ञान-महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। उन देवो ने केवल ज्ञान महोत्सव मनाया। भगवान सुदर्शन ने उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दिया। उन्होने कहा कि हे देवो! आप लोगो ने जो महोत्सव मनाया है वह इस शरीर के कारण नही किन्तु गुणो के कारण मनाया। लेकिन जिन गुणो के प्रकट होने से आप लोगो ने यह उत्सव किया है, वे गुण आपके आत्मा मे भी हैं और आप भी उन गुणो को प्रकट कर सकते है। मेरी और आप की आत्मा समान हे, अन्तर केवल उपाधि का हे। यदि आप लोग अपने मे रही हुई उपाधि मिटादे तो जिन गुणो की अभी आप लोगो ने महिमा की हे आपकी आत्मा मे रहे हुए वे ही गुण प्रकट होने मे देर नहीं लग सकती। इसलिए केवल गुणो की महिमा करने मे ही न रह जाओ किन्तु उन्हे प्रकट करने का प्रयत्न करो। यद्यपि गुणा की महिमा करने का उद्देश्य अपने मे रहे हुए उन गुणो को प्रकट करना ही होता हे, लेकिन इस उद्देश्य को विस्मृत न होना चाहिए किन्तु इसकी पूर्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

भगवान् सुदर्शन ने इस प्रकार विस्तार पूर्वक उपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुनकर व्यन्तरी का हृदय पल्टा। वह सोचने लगी कि जिनकी महिमा इन्द्रादि देव कर रहे हें ओर जो सबको अपने आत्मा के समान मानते हें, मेंने उनको कष्ट देकर भयकर पाप किया हे। मेरे पाप का बोझ मुझे दबा रहा है। मे इस पाप को अब अधिक समय तक अपने पर लादे नही रह सकती।

इस प्रकार हृदय मे पश्चाताप करती हुई व्यन्तरी हाथ जोडकर भगवान सुदर्शन से कहने लगी कि-प्रभो मुझ पापिनी के अपराध क्षमा करो।

मैंने आपको बहुत उपसर्ग दिये है। मेरे पाप का बोझ मेरे लिए असह्य हो रहा है। आप मेरे अपराध क्षमा करके मेरे आत्मा पर से इस बोझ को कम करने की कृपा कीजिये।

केवली भगवान सुदर्शन से व्यन्तरी बार–बार इस तरह कहने लगी। भगवान सुदर्शन ने व्यन्तरी को सान्त्वना देते हुए उपस्थित देवो से कहा कि–इससे मुझे मेरे सयम मे बहुत सहायता मिली है। आज मै जिस अवस्था को प्राप्त कर सका हू और जिन गुणो को प्रकट होने से आप लोग मेरी महिमा कर रहे है वह अवस्था एव वे गुण इनकी सहायता से ही शीघ्रतम प्राप्त हुए हैं।

भगवान के इस कथन से व्यन्तरी का हृदय और भी नम्र हो गया। वह कहने लगी–प्रभो! यह आपकी उदारता है कि आप मुझ पापिनी को भी उपकार करने वाली मान रहे हैं। वास्तव मे मैंने जो कुछ भी किया, वह आपका अपकार करने के लिए ही था। अभया के भव मे भी मैंने आपका शील नष्ट करना चाहा था और जब आपने मेरी बात स्वीकार नही की, तब मैंने आप पर झूठा कलक लगाकर आपको शूली पर चढवाया। यह बात दूसरी है कि आपके शील के प्रताप से आपके लिए शूली भी सिहासन बन गई लेकिन अपनी ओर से तो मैंने आपके प्राण लेने का ही प्रयत्न किया था। पश्चात् यहा भी आपका शील नष्ट करने के लिए मैंने आपको अनेक अनुकूल प्रतिकूल परिषह दिये। इस प्रकार मैने आपका अपकार ही किया है, उपकार नही किया है आप मेरे द्वारा किये गये अपकारो को सहायता रूप उपकार मानते हैं यह आपकी महान उदारता है। मुझे अपने दुष्कृत्यो के लिए अत्यन्त पश्चाताप है। आप मेरे अपराधो को क्षमा करो।

व्यन्तरी ने इस प्रकार अपने पापो की आलोचना करके उनके लिए पश्चात्ताप किया। देवगण उसकी प्रशसा करके कहने लगे कि–तुमने अपने पाप प्रकट करके अपनी आत्मा को हल्का कर लिया है। पाप तो हो जाते हैं लेकिन पाप को स्वीकार करके इस तरह प्रकट करना बहुत ही कठिन है। बहुत लोग भय के कारण अपने पाप को भीतर ही भीतर दबाते हैं परन्तु दबाने से पाप घटते नही किन्तु बढते हैं। तुमने अपने पाप प्रकट करके उनके लिए पश्चात्ताप किया है इसलिए अब तुम पवित्र हो।

भगवान सुदर्शन ने भी प्रिय वचनो द्वारा व्यन्तरी को सन्तुष्ट किया। [illegible] व्यन्तरी से कहा कि–मै स्वय पर तुम्हारा उपकार निष्कारण नही मान [illegible]

रहा हू। अपितु चम्पा की जिस घटना का तुमने वर्णन किया हे उस घटना के प्रताप से ही मैं ससार को त्यागकर सयम लेने मे समर्थ हुआ। पश्चात् यहा भी में तुम्हारी ही सहायता से जल्दी आत्मा का कल्याण कर सका। में ग्राम–नगर मे जाना त्यागकर यहा ध्यान करने लगा था लेकिन ग्राम–नगर की सहायता के बिना भोजन पानी नही मिल सकता और बिना भोजन–पानी के शरीर अधिक समय तक नही टिक सकता। ऐसे समय मे यदि तुम्हारी सहायता प्राप्त न हुई होती ओर मेरा ध्यान न बढा होता तो मैं शीघ्रतम केवल ज्ञान केसे प्राप्त कर सकता था? मैं इसी शरीर से आत्म कल्याण कर सका यह तुम्हारी सहायता का ही परिणाम हे। इसी से मैंने तुमको मेरे पर उपकार करने वाली कहा है। मेरे हृदय मे तुम्हारे प्रति वही स्थान है जो स्थान अपने उपकारी के लिए होता है इसलिए तुम चिन्ता त्यागकर प्रसन्न रहो।

भगवान सुदर्शन का यह कथन सुनकर व्यन्तरी का हृदय गद्‌गद् हो गया। वह कहने लगी कि–आपने मुझ पापिनी को भी पवित्र बना दिया। वास्तव मे महापुरुषो का सग क्या नही करता? कहा ही है कि–

महानुभाव ससर्ग कस्यनोन्नति कारक ।
पद्‌मपत्रस्थित वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ।।

अर्थात्–महापुरुषो की सगति से किस की उन्नति नही होती? जल की बूद भी कमल के पत्ते की सगति से मोती की सी शोभाधारण कर लेती है।

इसके अनुसार आपने मुझ पापिनी का भी उद्धार किया। यद्यपि मैं आपके ससर्ग मे आई तो दुर्भावना से, लेकिन आप महापुरुष हें इसलिए आपने मेरी वह दुर्भावना ही मिटा दी।

व्यन्तरी ने भगवान सुदर्शन से इस प्रकार की प्रार्थना की ओर उस दिन से वह समकित धारिणी वन गई। देवगण भी भगवान सुदर्शन की जय जयकार करते हुए अपने स्थान को गये।

भगवान सुदर्शन जनपद मे विचर कर अपनी अमोघ वाणी द्वारा जनता का कल्याण करने लगे। कुछ समय तक अपने उपदेश द्वारा जनता का कल्याण करने के पश्चात् भगवान सुदर्शन अपना निर्वाणकाल समीप जान सयोगी अवस्था से शेलेसी अवस्था म पहुचकर ओर मन वचन काय के योग को रूधकर सिद्ध–बुद्ध–मुक्त हो गये।

उपसंहार

धर्म की व्याख्या करने वाले विद्वानो का कथन है कि जो पतित होने से बचावे और उन्नत करे उसको धर्म कहते हैं। पतन तथा उन्नति लौकिक भी होती है और लोकोत्तर भी। इसलिए शास्त्रकारो ने धर्म के लौकिक धर्म और लोकोत्तर धर्म ऐसे दो भेद कर दिये हैं। यहा इस विषयक विशेष व्याख्या नही करनी है इसलिए यही कहा जाता है कि लोकोत्तर धर्म के दान, शील, तप और भाव ये चार अग हैं। शास्त्रकारो ने चरितानुयोग द्वारा जनता के सामने ऐसे लोगो की कथाए आदर्श के लिए रखी हैं। जिन्होने लोकोत्तर धर्म के इन अगो द्वारा आत्मा का कल्याण किया है। यद्यपि उन कथाओ मे मुख्यता किसी एक ही अग की होती है लेकिन गौण रूप से शेष तीन अग भी उस कथा मे मौजूद होते हैं क्योकि चारो अग के बिना लोकोत्तर धर्म अपूर्ण रहता है और जब तक पूर्ण लोकोत्तर धर्म नही है, तब तक आत्मा का पूर्ण कल्याण भी नही हो सकता। इसलिए आदर्शरूप जो कथाए हैं उनमे किसी एक अग की विशेषता और किसी एक अग का प्रभाव बताने पर भी शेष तीन अग भी उनमे हैं ही। उदाहरण के लिए सुबाहुकुमार की कथा मे दान का महत्व बताया गया है लेकिन उस कथा मे दान के साथ ही शील, तप और भाव भी है। एक ही कथा मे धर्म के चारो अग का पूरी तरह वर्णन करना और चारो का समान रूप से महत्व बताना कठिन है इसलिए एक–एक कथा मे प्राय एक–एक अग का महत्व उसकी विशेषता और उपयोगिता दिखाकर यह बताया गया है कि कथानायक ने उस अग का किस प्रकार विशेष रूप से पालन किया।

सुदर्शन सेठ की यह कथा शील का महत्व बताने के लिए हे। इस कथा मे यह बताया गया है कि शील का पालन कैसी दृढता से करना चाहिए और वैसी दृढता से पालन किये गये शील का महत्व तथा प्रभाव कैसा होता है? यद्यपि इस कथा मे मुख्यता शील की हे लेकिन शील के साथ ही गोण रूप से दान तप और भाव भी इस कथा मे मोजूद हें।

शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। शील मे समस्त सद्गुणो का समावेश हो जाता हे। दुर्गुणो से निवर्तकर सद्गुणो मे प्रवृत्त होना यानि सदाचार का पालन करना ही शील का अर्थ है। इस प्रकार शील के अन्तर्गत समस्त सद्गुण आ जाते हैं। नम्रता, सरलता, लज्जा दया, सत्य प्रियवादिता, प्रामाणिकता, ब्रह्मचर्य आदि समस्त सद्गुण शील के ही अग है। इस प्रकार शील का अर्थ व्यापक और विस्तृत है, लेकिन व्यवहार मे प्राय शील का अर्थ ब्रह्मचर्य अथवा स्वदारासतोष ही किया जाता है। व्यवहार की इस व्याख्या को दृष्टि मे रखकर ही सुदर्शन सेठ की कथा के लिए यह कहा जाता है कि यह कथा शील का आदर्श बताने के लिए है। उसमे भी इस कथा का मुख्य आदर्श परदारागमन से स्वय को बचाना है। एक बात ओर भी है। जिस व्यक्ति मे कोई एक गुण पूर्ण रूप से मौजूद होता है, साधारणतया उसमे दूसरे गुण भी होते ही हैं। जो परदार का पूर्ण त्यागी होगा, उसमे नम्रता सरलता, लज्जा दया, प्रियवादिता ओर प्रामाणिकता आदि गुण भी होगे। शास्त्र मे कहा है–

लज्जा दया संजम बम्भचेर।

अर्थात्–जिसमे लज्जा है उसी मे दया है, जिसमे दया हे उसी मे सयम है ओर जिसमे सयम हे उसी मे ब्रह्मचर्य है।

इसके अनुसार किसी भी एक सद्गुण की पूर्णतया उपस्थिति के लिए उसके सहचारी अन्य सद्गुणो का होना भी आवश्यक हे। यदि ऐसा न हो किन्तु कोई एक भी दुर्गुण हो तो उस दुर्गुण के रहते पूर्णतया एक भी सद्गुण नही रह सकता। इस दृष्टि से सुदर्शन की इस कथा को परदारा से बचने के आदर्श की कथा कहना ठीक ही हे। इस कथा का अध्ययन करने पर यह बात ओर भी अधिक स्पष्ट जान पडेगी। सुदर्शन केसा दृढव्रती था यह बताना तो इस कथा का उद्देश्य ही हे। उसको स्वदारा–सतोष व्रत से पतित करने के लिए कपिला अभया ओर हरिणी ने स्वय की शक्ति भर सब प्रयत्न कर डाले लेकिन वे सुदर्शन का व्रत भग करने म समर्थ नही हुई। वह पोषधव्रत मे कायोत्सर्ग करके बेठा था। उस समय पडिता उसे उठाकर अज्ञात स्थान को ले जाने लगी तथा ले भी गई फिर भी उसन कायात्सर्ग का पालन करने के लिए अपने शरीर की रक्षा का प्रयत्न नहीं किया। सत्यव्रत का पालन

करने के लिये वह राजा आदि अनेक लोगो के प्रयत्न पर भी कुछ नही बोला वह कैसा अक्रोधी था? इसके लिए लोगो द्वारा कही गई उस समय की बातो पर दृष्टिपात करना ही पर्याप्त होगा, जब वह शूली पर चढाया जाने के लिये ले जाया जा रहा था। वह वचन-पालन मे ऐसा शूर था कि कपिला और अभया को माता कहा था, इसलिये स्वय के प्राण जाने के समय तक भी उसने उन दोनो की प्रतिष्ठा बचाने का ही प्रयत्न किया। उसमे क्षमा कैसी थी? इसके लिए अभया को अभय दिलाने की बात ही पूर्ण प्रमाण है। उसमे निरभिमानता ऐसी थी कि नगर सेठ बना तब भी उसे अभिमान नही हुआ, कपिला के जाल से बच जाने पर भी अभिमान नही हुआ, शूली का सिहासन बन जाने और राजा प्रजा एव देवो द्वारा महिमा गाने पर भी अभिमान नही हुआ तथा वेश्या के घर मे तीन दिन तक रहकर अपना शील अक्षुण्ण रख सकने के कारण भी अभिमान नही हुआ। सुदर्शन पूर्ण धैर्यवान् भी था। ससार मे ऐसे बहुत कम लोग निकलेगे जिनको प्राण जाने का भय न हो और जो प्राण जाने के भय से भीत होकर अपने ध्येय से विचलित न हुए हो। लेकिन सुदर्शन शूली पर चढाने तक भी धीर ही बना रहा। प्राण समर्पण कर देने वाले धीर तो कई निकलेगे परन्तु भूख का दु ख ऐसे बडे-बडे धीरो की भी धीरता छुडा देता है। भूख के दु ख से अधीर होकर अनेक नये अनुचित कार्य कर डालते है। किन्तु सुदर्शन क्षुधा का दु ख सहकर भी धीर ही बना रहा, उसने भूख के कारण धैर्य नही त्यागा न उस दु ख से मुक्त होने के लिए शील ही नष्ट किया। सुदर्शन मुनि क्षुधा मिटाने के लिए ही पटना मे भिक्षा को निकले थे आर हरिणी वेश्या श्राविका बनाकर उन्हे अपने घर ले गई थी। इस प्रकार जब वे वेश्या के घर पहुचे तब भूखे ही थे ओर वेश्या का कथन अस्वीकार करने के कारण उनको वेश्या के घर मे तीन दिन तक भूखा ही रहना पडा। इसी बीच मे वेश्या ने उन्हे भोजन का पलोभन दिया परन्तु सुदर्शन मुनि धैर्यपूर्वक क्षुधा का कष्ट सहते रहे। सुदर्शन की निर्लोभता का तो कहना ही क्या है? विशाल राज्य तथा सुन्दर युवतियो के लोभ मे कौन नहीं पड सकता। ऐसे बहुत कम लोग निकलेगे जो इनके लोभ मे न पडे हो। बल्कि बडे-बडे [illegible] [illegible]-करोडो मनुष्यो का रक्त राज्य तथा रमणी के लिए ही

बहाया जाता है। सुदर्शन को राज्य और रमणी दोनो की ही प्राप्ति हो रही थी, लेकिन सुदर्शन इनके लोभ मे नहीं पडा। सुदर्शन का त्याग भी कम नहीं है। सुदर्शन ने गृह–ससार को त्यागा ही। लेकिन वेश्या के घर से छूटने के पश्चात् ग्राम नगर मे आना–जाना भी त्याग दिया। ग्राम–नगर मे आना त्यागने से उन्हे केसी कठिनाई मे पडना होगा यह तो अनुमान से जान ही सकते हैं। सुदर्शन मे तप भी कम न था। गृहस्थाश्रम मे रहता हुआ सुदर्शन पौषधादि करता था और मुनि होने के पश्चात् ध्यान का उत्कृष्ट तप किया यह इस कथा से प्रकट ही है।

इन सभी बातो से बढकर सुदर्शन की निष्काम धर्म सेवा हे। सुदर्शन पूर्ण धार्मिक व्यक्ति था। सेवक को जब किसी प्रकार का कष्ट होता है तब वह सेव्य द्वारा उस कष्ट से मुक्त होने की इच्छा करता ही है। चाहे कष्ट हो या न हो, किसी भी समय सेव्य से सेवक की किसी प्रकार की कामना–सेवा का महत्व घटाती है और ऐसे सेवक की सेवा एक वाणिज्य के समान हो जाती हे। फिर भी ऐसे बहुत कम लोग निकलेगे जो सेव्य से किसी भी समय तथा किसी भी प्रकार की कामना न करते हो। बल्कि बहुत से लोग तो ऐसे होते हैं, जो सेव्य की सेवा किसी न किसी कामना से ही करते हैं। धर्म सुदर्शन सेठ का सेव्य था ओर सुदर्शन सेठ धर्म का सेवक था। उसने ओर किसी समय तो धर्म के फलस्वरूप किसी प्रकार की सासारिक कामना नही की लेकिन उस समय भी उसने धर्म से कोई सासारिक कामना नही की जिस समय कि उसे शूली पर बेठा दिया गया था। यद्यपि यह नियम है कि–

धर्मो रक्षति रक्षित ।

अर्थात्–जो धर्म की रक्षा करता हे, वह स्वय भी रक्षित रहता हे।

इसके अनुसार चाहे सुदर्शन सेठ की शूली द्वारा मृत्यु भी हो जाती तब भी उसकी किंचित् भी आध्यात्मिक हानि न थी जो हानि हाती वह भोतिक ही। ओर आध्यात्मिक हानि के सन्मुख भोतिक हानि नगण्य हे फिर भी जब तक कोई कारण विशेष न हो तब तक धर्म अपने सेवक की भोतिक हानि भी नही होने देता। इसलिए सुदर्शन की भोतिक रक्षा भी हुई ही लेकिन सुदर्शन ने तो उस समय भी शरीर रक्षा की कामना नही की थी।

तात्पर्य यह है कि इस प्रकार सुदर्शन मे वे सभी गुण विद्यमान थे, जिनकी गणना शील के उप भेदो मे है और जो आत्म–कल्याण मे सहायक हैं। इसलिये परदारागमन न करने के अर्थ मे भी सुदर्शन की कथा को शील का आदर्श बताने वाली कथा कहना ठीक है और शील का जो व्यापक अर्थ है, उस व्यापक अर्थ दृष्टि से भी सुदर्शन की कथा को शील का आदर्श बताने वाली कथा कहना ठीक ही है।

सुदर्शन गृहस्थ श्रावक था प्रतिमाधारी श्रावक न था। ऐसा होते हुए भी उसने शील का किस प्रकार पालन किया, किस प्रकार त्रिया–चरित्र मे फसकर भी उसने शील की रक्षा की, उसने कैसे–कैसे कष्ट सहकर भी शील नष्ट नही होने दिया और शील के सन्मुख सासारिक मान–सम्मान, स्त्री–पुरुष का स्नेह सुख वैभव तथा जीवन या मृत्यु की भी किसी प्रकार अपेक्षा नही की यह इस कथा मे बताया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि शील पालन के लिए सुदर्शन की तरह की दृढता आने के वास्ते किस प्रकार की भूमिका की आवश्यकता है। कैसी भूमिका के होने पर ही इस प्रकार की दृढता के साथ शील का पालन किया जा सकता है। यह बताने के लिये ही इस कथा मे सुदर्शन का बाल्यकाल, उसकी शिक्षा, उसके विचार और उसकी धार्मिकता का वर्णन किया गया है।

वैसे तो शील के द्वारा अनन्त जीव कल्याण कर गये हैं, फिर भी शील का आदर्श बताने के लिए सुदर्शन की ही कथा रखी जाने का कारण यह है कि एक तो सुदर्शन गृहस्थ था। कोई बडा आदमी यदि बडा काम करे तो उसमे उसकी प्रशसा नही होती जैसी प्रशसा किसी छोटे आदमी द्वारा बडा काम होने पर उस छोटे आदमी की होती है। जैसे महाभारत के युद्ध मे दूसरे भी बडे–बडे वीर थे और उनने भी वीरता दिखाई थी फिर भी अभिमन्यु की प्रशसा इसलिये हुई कि वह युद्ध मे उपस्थित वीरो से अवस्था मे छोटा होने पर भी उसने सबसे अधिक पराक्रम दिखाया था। इसी प्रकार शील पालन द्वारा आत्मकल्याण करने वालो मे सुदर्शन भी पहली अवस्था का गृहस्थ था। दूसरे अनुकूल परिस्थिति मे शील की रक्षा करना वैसी विशेषता की बात नही है जैसी विशेषता की बात प्रतिकूल परिस्थिति मे शील का पालन करना है।

सुदर्शन के सामने अनेक प्रतिकूल परिस्थितिया आई। उसके सन्मुख एक ओर तो राज्यप्राप्ति का प्रलोभन था और दूसरी ओर प्राण जाने का भय। शील भग करने पर राज्य प्राप्त होता था, अन्यथा प्राण जाने का भय था। साधारणतया ऐसी स्थिति मे शील की रक्षा करना बहुत ही कठिन है, लेकिन सुदर्शन ने ऐसी परिस्थिति मे भी शील की रक्षा की। इसी कारण शील का आदर्श बताने के लिये उसकी कथा रखी गई है।

सुदर्शन की यह कथा बालक, युवा वृद्ध, स्त्री, पुरुष गृहस्थ और गृहत्यागी सभी के लिये समान हितकारी है। बालको को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है उनको अपने गुरुजनो के प्रति कैसा व्यवहार रखना चाहिये? तथा उनके प्रति गुरुजनो का क्या कर्त्तव्य है यह बात सुभग एव सुदर्शन के बाल्यकालीन वर्णन से मालूम होगी। युवावस्था प्राप्त होने पर भी मर्यादा का किस प्रकार पालन करना चाहिए? युवावस्था के आवेश मे किस तरह मर्यादा भग न होने देनी चाहिए धन–सम्पत्ति और पद–प्रतिष्ठा पाकर किस प्रकार निरभिमानी रहना चाहिए? यह बात सुदर्शन के यौवनकालीन वर्णन से प्रकट है। वृद्धावस्था आने पर और ससार व्यवहार के योग्य सन्तान हो जाने पर क्या करना चाहिये, यह बात जिनदास तथा अर्हद्दासी के चरित्र से विदित है। इन दोनो के चरित्र से यह भी प्रकट है कि सन्तान प्राप्ति के लिए धर्म–विरुद्ध कोई कार्य न करना चाहिए। सन्तान अथवा गृह मे रहने वाले नोकर आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, उन्हे केसी शिक्षा देनी चाहिए आदि बाते भी जिनदास ओर अर्हद्दासी के चरित्र से जानी जाती हैं।

अर्हद्दासी ओर मनोरमा का चरित्र स्त्रियो को बहुत उच्च आदर्श सिखाता है। दोनो ही के कार्य स्त्रियो को गृहिणी धर्म की शिक्षा देते हैं। अर्हद्दासी को सन्तान की आवश्यकता थी फिर भी उसने पति के कथन पर विश्वास रखकर पति द्वारा बताया गया मार्ग ही अपनाया। इसी प्रकार मनोरमा से लोगो ने बहुत कुछ कहा सुना परन्तु उसने अपने पति के चरित्र पर सन्देह तक नहीं किया। वह विधवा बनना अनुचित नहीं मानती थी लकिन दुराचारी पति की पत्नी रहना अच्छा नही समझती थी। उसने पति का हितकारी मार्ग कभी नही रोका न वह कभी पति के कल्याण म बाधक ही बनी।

इस प्रकार इस कथा द्वारा गृहस्थो को यह दृढता बधाई गई है कि सुदर्शन तुम्हारी ही तरह का गृहस्थ था। वह भी स्त्री–पुत्र धन–पत्नी वाला और प्रतिष्ठा प्राप्त था। वह सुन्दर भी था तथा युवक भी था और उसे ऐसी–ऐसी सुन्दर युवतिया सम्भोग के लिये प्राप्त हो रही थी, जो उस समय की सुन्दरियो मे पसिद्ध थी। साथ ही उन सुन्दरियो का तिरस्कार करने से मृत्यु और उन्हे स्वीकार करने से सासारिक सम्पदा प्राप्त होती थी। ऐसा होते हुए भी उसने शील की रक्षा की तो तुम शील की रक्षा क्यो नहीं कर सकते? दृढता रखने पर अवश्य ही शील का पालन कर सकते हो।

गृहस्थो को यह दृढता बधाने के साथ ही इस कथा द्वारा गृह–त्यागियो को यह शिक्षा दी गई है कि जब गृहस्थावस्था मे रहते हुए और किस–प्रकार की विषम स्थिति होने पर भी सुदर्शन ने शीलव्रत का पालन किया तो तुम तो गृहत्यागी हो। तुमने तो शील पालन के लिये ही दीक्षा ली है। फिर भी यदि तुम अपना शील नष्ट कर दो ब्रह्मचर्य से पतित हो जाओ तो यह बात तुम्हारे लिए कितनी लज्जास्पद होगी।

शील पालन के लिए किस प्रकार की दृढता की आवश्यकता है यह तो इस कथा मे प्रधान रूप से बताया ही गया है। लेकिन इस कथा से यह भी शिक्षा मिलती है कि शील–रक्षा करने के लिए त्रियाचरित्र, स्त्रियो के छलपूर्ण व्यवहार और उनके प्रपच से किस प्रकार बचते रहना चाहिए। साथ ही इस कथा से यह भी शिक्षा मिलती है कि मनुष्य कुसग के कारण किस प्रकार नष्ट हो जाता है। अभया को कपिला की कुसगति ने ही सुदर्शन को शील नष्ट करने के लिए प्रोत्साहित किया था। यदि कपिला से उसकी सगति न होती तो सम्भवत वह ऐसा दुष्कृत्य करने के लिए तैयार न होती न उसे आत्महत्या ही करनी पडती। इसी प्रकार हरिणी वेश्या ने भी पडिता के कुसग के कारण ही मुनिव्रतधारी सुदर्शन को पतित करने का प्रयत्न किया था। वह वेश्या तो अवश्य थी लेकिन उसका उद्देश्य वेश्यावृत्ति द्वारा धनोपार्जन करके आजीविका चलाना था किसी शीलवान का शील व्यर्थ ही नष्ट करना उसका ध्येय न था। सुदर्शन मुनि से उसे द्रव्य नहीं मिल सकता था इसलिए वह उन्हे पतित करने का प्रयत्न न करती। परन्तु पडिता के कुसग से उसने ऐसा प्रयत्न किया। इस प्रकार यह कथा कुसग का परिणाम भी बताती है।

शील पालन की यह कथा आदर्श रूप है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इस आदर्श तक पहुचकर आत्मा का कल्याण करे। यद्यपि एकदम से आदर्श तक नहीं पहुचा जा सकता, परन्तु आदर्श को दृष्टि मे रखकर बढाते रहने से आदर्श तक पहुचना असम्भव भी नहीं है। उदाहरण के लिए पढने वाले बालक के सामने आदर्श रूप जो अक्षर रहता है लडका एकदम से उस आदर्श अक्षर की तरह का अक्षर नही बना सकता, परन्तु उस एक अक्षर को देखकर अक्षर बनाते रहने पर और प्रयत्न करते रहने पर वैसा ही अक्षर बनाने भी लगता है। इसी के अनुसार शील पालन का जो आदर्श इस कथा मे है, उस आदर्श तक एक साथ न पहुच सकने पर भी प्रयत्न करने पर पहुचना असम्भव नही है। इस दशा मे जो भी प्रयत्न करेगा, वही आदर्श तक पहुचकर आत्म–कल्याण कर सकता है।

